श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्य



— डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

श्री द्वारकाधीश महाकाव्यम्



लेखक :

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

सा० रत्न, सप्ताचार्य, एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत), पी० एच० डी०,
डी० लिट्० रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
प्राच्य दर्शन महाविद्यालय
वृन्दावन (मथुरा)



संवत् २०३७

प्रकाशक :

सहदेवकृष्ण चतुर्वेदी

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन

गतश्रम टीला, मथुरा

★

लेखक :

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

★

प्रथम संस्करण : १००० प्रति

★

संवत् २०३७ सन् १९८०

★

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रदत्त ६०% आर्थिक सहायता से प्रकाशित

★

मूल्य : Rs 16 P 00

★

मुद्रक :

भारतीय प्रेस,

चौकी बाग बहादुर, मथुरा

भूमिका

भगवान् श्री द्वारकाधीशजी का मन्दिर उत्तर प्रदेश के विश्वविख्यात मथुरा नगर के मध्य विश्रामघाट से उत्तर असकुण्डा बाजार में स्थित है। पूर्व दिशा की ओर मुखवाले पक्के पाषाण निर्मित मन्दिर की स्थिति एकदम बाजार से लगी हुई है। मन्दिर में प्रवेश के लिये चार द्वार हैं। मुख्यद्वार से प्रवेश करने पर विशाल चौक स्थित है उसके बामभाग में मन्दिर कार्यालय आदि स्थित है तथा दक्षिण भाग में श्री द्वारकेश संस्कृत महाविद्यालय ऊपरी मंजिल पर अवस्थित है। इस महाविद्यालय से मेरा सम्बन्ध पूज्य पिताजी पं० श्रीवरजी शास्त्री (जो कि इस महाविद्यालय के ४० वर्ष लगभग प्राचार्य रहे) के कारण से है। बाल्यावस्था में अध्ययन भूमि के साथ भगवान् के सान्निध्य में इसी पाठशाला से अध्ययन कार्य कर अपने जीवन को प्रारम्भ किया तथा ५ वर्ष आचार्य पद पर रहने के पश्चात् सन् १९६४ ई० में वृन्दावनस्थ प्राच्यदर्शन महाविद्यालय में संस्कृत विभाग में नियुक्त हुआ और वहीं पर अध्यापन कार्य में रत हूँ।

एक बार भगवान् श्री द्वारकाधीश के दर्शन के समय बाल्यावस्था काल का स्मरण हुआ और मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न भगवान् श्री द्वारकाधीशजी के इतिहास को लेकर काव्य रचना करूँ, जिससे भगवान् के मन्दिर से ही प्राप्तअपने अध्ययन का साफल्य हो, और वह शीघ्र प्रभु कृपा से पूर्ण हुआ।

कालेज की सेवा के साथ जीवन अति ब्यस्त होगया अतः किसी कार्य को समय निकालना कठिन प्रतीत होता था। पर कालेज जाने के लिये मेरी और छात्रों की प्रार्थना पर उ० प्र० राज्य सरकार परिवहन निगम ने मथुरा से कालेज के लिये सीधी बस की ब्यवस्था करदी थी जिससे जाने-आने का मार्ग अति आरामदायक और सुगम होगया और काव्यसृजन का समय भी मिल गया जो आज पूर्ण होकर पाठकों के समक्ष है।

मन्दिर के प्रतिष्ठापक श्री गोकुलदास पारिखजी–

श्रीद्वारकाधीश मन्दिर के प्रतिष्ठापक श्री गोकुलदास पारिख बड़ौदा राज्यान्तर्गत 'सीनौर' नामक स्थान के निवासी थे। ये नागर वैश्य थे और काँकरौली

घर के सेवक थे। काँकरौली के इतिहासानुसार इनकी प्रथम भेंट "कौशलचन्द अम्बाईदास से हुई थी। उनके यहाँ सामान्य नौकरी में ही ये सेठ जी के प्रियजन बन गये और कालान्तर में स्वभाव सिद्ध व तीक्ष्ण बुद्धि के प्रभाव से ग्वालियर नरेश "दौलतराव सिन्धिया" के प्रीतिपात्र और विश्वसनीय वन गये। इतिहासानुसार ये दौलतराव सिन्धिया के कोषाध्यक्ष थे।

सिन्धिया सरकार ने उज्जैन तो अपने वश में कर लिया था लेकिन वहाँ के नागाओं ने उपद्रव कम नहीं किये थे। समय-समय पर उन उपद्रवों को शान्त करने के लिये सैन्य अधिकारी सेना के साथ भेजे गये।

षड्यन्त्र-

जिसकी प्रतिष्ठा वढ़ती है उसके अनेक शत्रु बढ़ जाते हैं, यही बात पारिखजी के साथ घटी, पारिखजी को नीचा दिखाने के उद्देश्य से उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया और पारिखजी को राजाज्ञा मिली कि वे उज्जैन के नागाओं को पराजित करने जायें।

महाराज का आदेश अपरिहार्य था अतः पारिखजी उज्जैन गये और वहाँ जाकर अपने बुद्धिवल से नागाओं को सर्बदा के लिये परास्त कर दिया और लगभग २०-२२ करोड़ रुपये की सम्पत्ति भी प्राप्त कर ग्वालियर लौटे और महाराज के सम्मुख रखदी। महाराज ने उस सम्पत्ति को लेना अस्वीकार कर दिया और कहा कि यह सम्पत्ति हमारे गंगाजली के काम की नहीं है। यही धन बाद में श्री द्वारकाधीश जी की सेवा में लगा।

राज सेवा से मुक्त होने के पश्चात् पारिखजी अपना जीवन भजन-पूजन में व्यतीत करते थे। वे ग्वालियर में जिस स्थान में रहते थे उसे पारिख बाड़ा के नाम से आजभी जाना जाता है। कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपने मकान को नये सिरे से वनवाना प्रारम्भ किया। एक दिन रात्रि में भगवान् द्वारकाधीशजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और विग्रहरूप में प्रकट होने के लिये भी कहा। प्रातःकाल जव 'नींव' की खुदाईचल रही थी नीचे से 'हौले-हौले' इस प्रकार की आवाज आयी, कार्य रुक गया पारिखजी ने रात्रि के स्वप्न को ध्यान कर प्रसन्न हो अपने हाथ से मिट्टी हटाई और एक शिवलिङ्ग प्राप्त किया तत्पश्चात् चतुर्भुजी स्वरूप के विग्रह के रूप में राजाधिराज श्री द्वारकाधीश जी को प्राप्त किया। हरिहर का विग्रह भी निकला जो ग्वालियर में ही विराजमान है। पारिखजी ने वहीं मन्दिर निर्माणकर कुछ समय व्यतीत किया और फिर प्रभु प्रेरणा से प्राप्त सम्पत्ति के साथ व्रज के लिये

प्रस्थान किया मथुरा में आकर कुछ समय रहे पीछे प्रभु प्रेरणा से ही वृन्दावन गये और फिर वहाँ से श्रीराधिका जी का विग्रह प्राप्त कर पुनः मथुरा लौटे और वर्तमान मन्दिर का निर्माण १८७२ विक्रम में कर उसमें भगवान् के विग्रह को प्रतिष्ठापित किया।

पारिख जी के कोई सन्तान नहीं थी। उनके दो मुनीम-मनीराम और चम्पाराम थे मनीराम पर पारिखजी का अत्यधिक प्रेम था, ये सरावगी वैश्य खण्डेलवाल जाति के थे और 'जयपुर' राज्यान्तर्गत मालपुरा ग्राम के निवासी थे। आगे चलकर ये ही पारिखजी के उत्तराधिकारी बने। इनके पश्चात् इनके बड़े पुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द्र बने।

पारिखजी की इच्छा इस मन्दिर को और उसकी सम्पत्ति को अपने गुरुघर काँकरौली के महाराज श्री को समर्पित करने की थी पर वह उनके सामने पूर्ण न हो सकी, मरते समय वे अपनी इच्छा प्रकट कर गये थे। सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी अफीम का व्यापार करते थे, एक दो बार उन्हें घाटा लगा, उस समय जामनगर के गोस्वामी १०८ श्री व्रजरायजी महाराज ने उन्हें पर्याप्त सहारा दिया था जिसकी कृतज्ञता में उन्होंने श्रीराजाधिराज का मन्दिर महाराज श्री व्रजरायजी को भेंट करने का निश्चय कर लियाऔर उन्हें मथुरा आमन्त्रित किया। महाराजश्री इसे लेने के लिये जामनगर से चले परन्तु रास्ते में जबलपुर के पास एक शेर के शिकार हो गये। और मन्दिर का वसीयत नामा उनके नाम न हो पाया।

श्री लक्ष्मीचन्द्र सेठ के भाई सेठ गोविन्ददास जी ने श्री लक्ष्मीचन्द्र जी के दिवंगत होने के पश्चात् अपने दोनों भतीजों से सलाह कर कांकरौली के तिलकायत श्री गिरधरलाल जी महाराज को मन्दिर भेंट करने का विचार किया और उन्हें आमन्त्रित किया।

सं० १९२९ माघ बदी ६ को महाराज श्री काँकरौली से मथुरा पधारे, १९३० वैशाख शुक्ल ७ के दिन दस्तावेज लिखकर महाराज श्री को भेंट किया। सं० १९३० जेष्ठ शुक्ल ११ के दिन से राजाधिराज श्री द्वारकाधीशजी की पुष्टिमार्गीय रीति से सेवा प्रारम्भ हुई तब से वर्तमान समय तक काँकरौली गद्दी के आचार्य श्री की देखरेख में मन्दिर का प्रवन्ध होता आ रहा है। इसी कथावृत्त का आधार मैंने महाकाव्य मैं लिया है। गो. श्री गिरधरलाल जी के पश्चात् गो० बालकृष्णलाल जी, गो० व्रजभूषणलालजी और वर्तमान में अव गो० ब्रजेश कुमार जी महाराज का संरक्षण मन्दिर की व्यवस्था हेतु प्राप्त है।

गो० ब्रजभूषणलालजी जो महाराज (जो कि गत वर्ष गोलोक वासी हो गये) को जब महाकाव्य के कुछ श्लोक सुनाये तो वे बड़े प्रसन्न हुए और इसके प्रकाशन की सहायता करने का भी वचन दिया परन्तु वह प्राप्त नहीं हुई। उनके पश्चात् उनके उत्तराधिकारी गो. श्री ब्रजेशकुमार जी महाराज से भी प्रार्थना प्रकाशन के सम्बन्ध में फोटो-इतिहास आदि प्राप्ति के लिये की पर वह पूर्ण न हो सकी।

परम ब्रह्मण्य सेठ जुगलकिशोर जी विड़ला जब मथुरा पधारते थे तो उनके दर्शन का अवसर सहजही प्राप्त होता था, उनकी भी इच्छा थी कि मैं भगवान् द्वारकाधीशजी के इतिहास के सम्बन्ध में साहित्य लिखूं उन्होंने सहायता का भी आश्वासन दिया परन्तु वह उस समय सभव न हो सका।

जब महाकाव्य लिखकर पूर्ण हो चुका तो मैंने पूज्य बाबूजी के उत्तराधिकारियों से प्रकाशनार्थ सहायता का निवेदन किया परन्तु कोई सन्तोष जनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ केवल श्री एल एन. विरला महोदय के निजी सचिव महोदय का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने लिखा कि इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् श्री विरलाजी इसकी ५० प्रति क्रय कर लेंगे।

इसी मध्य श्री जयदयालजी डालमिया से भेंट हुई उन्होंने पहले प्रकाशन का कार्य करने की स्वीकृति दी कुछ आशा बंधी परन्तु जब स्पष्ट रूप से पत्राचार हुआ तो श्री डालमियाजी ने इसका सर्वाधिकार संस्थान के लिये मांगा जो संभव नहीं था। अतः बात वहीं समाप्त हो गई।

मैंने एक पत्र ग्वालियर की श्रीमन्त राजामाता व्रिजियाराजेसिन्धियाजी को भी लिखा क्योंकि ग्वालियर से ही भगवान् का आगमन मथुरा हुआ है, राजमाता का पत्र भी मुझे प्राप्त हुआ जिसमें इन्होंने २३ मार्च ८० को दतिया में मिलने को कहा परन्तु अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रमों के कारण में दतिया न जा सका।

इसके पूर्वमें भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय जो कि संस्कृत साहित्य की पुस्तकों के प्रकाशन के लिये आर्थिक सहायता देता है आवेदन दिया और वहां से ६०% प्रतिशत सहायता की स्वीकृति प्राप्त हुई। इसके लिये वहाँ के शिक्षामंत्रालय और वहाँ के सहायक शिक्षा सलाहकार डॉ० सी० आर० स्वामीनाथन का हृदय से आभार प्रकट करता हूं। डा० स्वामीनाथनजी स्वयं संस्कृतज्ञ हैं और संस्कृत साहित्य के बिद्वान् हैं। वहाँ से स्वीकृति प्राप्त होते ही इसके प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया गया।

इसी मध्य मैंने पेटलाद के दातार सेठ राजरत्न चन्दूलाल केशवलाल जी से

भी महाकाव्य के प्रकाशन के सम्बन्ध में चर्चा की थी उन्होंने प्रकाशन में सहायता का वचन ही नहीं दिया अपितु अविलम्ब ड्राफ्ट द्वारा पैसा भी भेज दिया। सेठ चन्दूलाल गुजरात प्रान्त के दातार सेठ हैं और राजरत्न की उपाधि से विभूषित हैं। उनका थोड़ा सा परिचय अलग से दिया जा रहा है।) एतदर्थ मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

इस महाकाव्य को पूर्ण कराने में वृन्दावनस्थ श्रीकृष्ण स्वर्गाश्रम के आशुकवि श्री वनमालिदास जी का पूर्ण सहयोग रहा उन्होंने अपनी चक्षु पीड़ा होते हुए भी संशोधन तो करवाया ही साथ ही अपने नवीन विचार भी प्रकट किये। मैं उनकी इस कृपा के लिये हृदय से आभार प्रकट करता हूं। इसी प्रसंग में मैं पं० सबल किशोरजी पाठक सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य श्रीमाथुर चतुर्वेद सं. म. वि. मथुरा का भी आभार प्रकट करता हूँ उन्होंने भी प्रारम्भ में अनेक अमूल्य सुझाव प्रदान किये। उनकी अस्वस्थता के कारण अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर सका, महाकाव्य के अवलोकन के पश्चात् डाँ० बदरीनाथजी शुक्ल, कुलपति, वाराणसी, डाँ० विद्यानिवासजी मिश्र निदेशक क० मु० हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विद्यापीठ आगरा, डा० सत्यव्रत सिंह पू. कुलपति लखनऊ वि० वि०, श्री वनमालिदास शास्त्री वृन्दावन आदि ने अपनी सम्मति प्रदान की एतदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। मैं प्रेस पाँडुलिपि तैयार करने में कु० रंजना शर्मा M. A रिसर्च स्कालर चि० हरदेव कृष्ण चतुर्वेदी एम० ए० ने और प्रेस आदि के कार्य में चि० शा० सहदेवकृष्ण और नरदेवकृष्ण ने मुझे पर्याप्त सहयोग दिया है एतदर्थ मैं उन्हें शुभाशीष प्रदान करता हूं।

राष्ट्रीय प्रेस के संचालक श्री हर्षगुप्त को विशेषरूप से धन्यवाद देता हूं, श्री गुप्त अत्यन्त विनम्र व व्यवहार कुशल हैं अपने प्रेस में अतिव्यस्तता के कारण उन्होंने महाकाव्य का मुद्रण करने के लिये श्री देवीदयालजी अग्रवाल संचालक भारतीय प्रेस से वार्ता की और उन्हें सौंप दिया श्री अग्रवाल सा० ने बड़ी लगन के साथ सीमित साधनों के होते हुए भी कार्य द्रुत गति से कराया इसके लिये उन्हें भी धन्यवाद प्रदान करता हूं साथ ही मुद्रण कर्ता श्री मुरारी लाल उपाध्याय, कान्तीलाल शर्मा, तथा प्रेमकिशोर चतुर्वेदी एवं अन्य कर्मचारी वर्ग को भी धन्यवाद देता हूं।

इस कार्य में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जिनसे सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें धन्यवाद देता हूं।

कल्पना संचालित इस काव्य में सम्भव है अनेक त्रुटियाँ रही होंगी उनके

लिये मैं सभी से क्षमा प्रार्थी हूं । नीति वचन भी है "धावतः स्खलनं क्वापि भवत्येवप्रमादतः"

भगवान् श्री द्वारकाधीशजी का गुणगान लक्ष्य रहा है वह अवश्य इससे पूर्ण होरहा है इस सन्तोष के साथ यह सब सेवा लेने वाले प्रभु के चरणों में प्रणाम समर्पित करता हूं । सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं को ही है ।

शिवरात्री २०३७

विनीत
वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी



सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणामखिल-गुण-गणाऽलंकृतानामनन्त

श्रीविभूषितानांपूज्यस्वामिपादानां

श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजानां

शुभाशीर्वचनम्

माधुर्योद्रेकरम्यं विशदपदतया, लोकरम्यं बुधानां,
पेयंपीयूषकल्पं रसिकजनमनो, ध्येयमन्तःप्रसन्नम् ।
श्रेयःप्रेयोनिधानं, धृतनिखिलगुणं भूषणानां प्रधानं
जीव्यादाकल्पमेतन्नव-नवरसवद् द्वारकाधीशकाव्यम् ।

अखण्डानन्द सरस्वती

वृन्दावन

फा० शु० अष्टमी २०३७

उ० प्र० सरकार-लब्ध-कालिदास पुरस्काराणामाशु-कवि श्री वनमालिदास जी महाराजानां

सम्मतिः

श्रीकृष्णो वासुदेवः स जयति नितरां डाक्टरोपाधियुक्तः
सप्ताचार्याख्यया च प्रथित-शुभयशा भारते भारतेऽस्मिन् ।
सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरि चेतो मदीयं
काव्यं येन प्रणीतं तदपि विजयते द्वारकाधीश संज्ञम् ॥१॥

श्रीवासुदेवकृष्णः, कृतवान् यदिदं महाकाव्यम् ।
तेनाऽस्यापि सुगणन, स्यादेव द्राङ् महाकविषु ॥२॥

श्रीद्वारकाधीश-नवीन-काव्ये,बहूनि वृत्तानि पुरातनानि ।
दोहादि-वृत्तानि नवानि चात्र, शोभामनल्पां प्रतिपादयन्ति ॥३॥

काव्येऽस्मिन् रमणीये,भवन्ति यानि महाकाव्यचिह्नानि ॥
विलसन्ति तानि समानि, तेनेदं भो ! महाकाव्यम् ॥४॥

श्रीवासुदेवस्य सुशोभना कृतिः, कृता जनो यां सकलः प्रशंसति ।
सैषा सदा मोदवहा मनस्विनां, मनःसु भूयाद् हरिभक्तिमिच्छताम् ॥५॥

इति मयाऽप्यनुभूय विलिख्यते, कृतिरियं न मुधैव प्रशस्यते ।
इति विचार्य विचारचणा जना,अपि पठन्तु सुकृष्ण-सुभाषितम् । ६॥

श्रीद्वारकाधीश्वर-काव्यमेतद्, विलोकयामास समं समन्तात् ।
संशोधयामास च सर्वमेव, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥७॥

स्वर्गाश्रमः, वृन्दावनम्

श्रीवनमालिदासः

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य लखनऊ विश्वविद्यालयस्य च भू० पू० कुलपतीनां डा० सत्यव्रत सिंह महोदयानां

शुभ सम्मतिः

श्रीमद्भिः डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदिभिर्यद् रम्य विरचनं श्रीद्वारकाधीश महाकाव्यं विरचितम्, तेनाद्यतनीने भारत गणतन्त्रे निर्मीयमाणस्य संस्कृत काव्य-साहित्यस्य नवत्वं रम्यत्वञ्च प्रस्पष्टं प्रतिभासते ।

श्रीभगवति द्वारकाधीशे श्रीमतां चतुर्वेदि महाभागानामेतन्महाकाव्यकर्त्तृणां यद्भावसमाहित चेतस्त्वं यच्च नवयुग दृष्ट्या श्रीद्वारकाधीश चरित वर्णनायां तत्र तत्र नव्य कवित्वं तदवश्यमेवाभिनव संस्कृत काव्य साहित्य रसिकानां मनः प्रसादं जनयिष्यतीति विश्वासेन कविवर्येभ्यो धन्यवादाः तत्काव्यवर्याय च साधुवादाः भूयो-भूयः समर्प्यन्त इतिशम् ।

सत्यव्रतसिंहस्य

पण्डित-प्रवराणां सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य कुलपतीनां श्री बदरीनाथ शुक्ल महाभागानां

शुभ सम्मतिः

विद्वदुत्तमेन श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद महोदयेन रचितं श्री द्वारकाधीश काव्यं तन्मुखादेव बहुषु भागेषु श्रुतम् । काव्यमिदं काव्यत्व प्रयोजकतया काव्य-शास्त्रवर्णितैः गुण-गणैराश्लिष्टम् प्राचीनैर्नवीनैश्च बहु प्रकारैश्छन्दोभिःबद्धम् मथुरायां भगवतो द्वारकाधीशस्य प्रतिष्ठा प्राप्तेः समग्रमितिवृत्तं प्रस्तौति ।

अस्मिन् महाकाव्ये तत्कालिक्या माथुर-संस्कृतेः वर्णनं तथोपन्यस्तं यथैतद् कस्यापि विदुषश्चेतश्चमत्कर्तुं मीष्टे ।

घटनानां सजीवेन निर्वर्णनेन नितरामानन्दित मनस्कतया कविवर चतुर्वेदं धन्यवादैरभिनन्दन बचोभिश्च सभाजयामीति स प्रमोदमावेदयति ।

२४-१२-१९७९ ई०

बदरीनाथ शुक्लः



श्रीमाथुर चतुर्वेद संस्कृत महाविद्यालयस्य

पू० प्राचार्याणां शुद्धाद्वैत-लब्धवर्णानां, परमविदुषां

पं० सवलकिशोर पाठक महोदयानां

शुभसम्मतिः

मथुरास्थ श्रीद्वारकाधीशमन्दिरस्थ श्रीद्वारकाधीशविग्रह सम्बद्धमितिहासम्पुरस्कृत्यैकविंशसर्गात्मकं श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्यं विरचय्य कविवर श्री वासुदेवकृष्णचतुर्वेदिना नूनं प्रेक्षकाणां प्रमोद प्रकर्ष उपस्थापित इत्यहं निःसङ्कोचं कथयितुं शक्नोमि ।

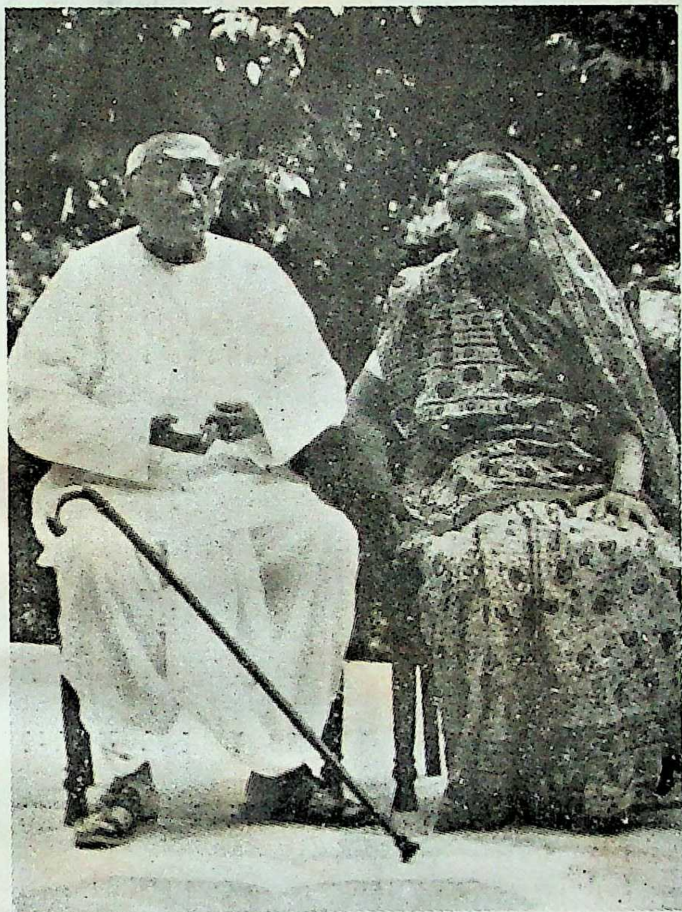
सवलकिशोर पाठकः

होलाष्टमी २०३७

दातार सेठ श्री चन्दुलाल केशवलाल पारिख पेटलाद

समस्त गुजरात प्रान्त में दातार सेठ के नाम से ही लोग चन्दुलाल केशव लाल, पेटलाद को पहचानते हैं। श्री चन्दुलाल जी परम भगवदीय वल्लभ कुल सम्प्रदाय के अनुगामी हैं। सन् १६२६ ई० में आपने नेत्रदान यज्ञ किया उसमें योग्य डाक्टरों की सहायता से २७०० आपरेशन सम्पन्न कराये। उस समय आँख के आपरेशनों के लिये लोग दूर-दूर तक जाते थे कारण कि वहाँ कोई समुचित व्यवस्था नहीं थीं। गरीव व्यक्ति बाहर जा नहीं सकता था अतः सेठ चन्दूलालजी ने वहीं नारायण-संस्कृत पाठशाला में नेत्र शिविर स्थापित किया और प्रसिद्ध नेत्र रोग विशेषज्ञ डा० रतीलाल शाह डा० लीलाधर तन्ना डा० पुजालाल नानालाल शाह, और सद्गन चन्दुलाल वैद्य आदि की सहायता प्राप्त की। मरीजों की देखभाल में स्वयं सेठ चन्दुलालजी लगे रहते थे उनकी पत्नी श्रीमती प्रभावती पारिख भी अपने पति से पीछे नहीं थीं, वे भी अपने पति के साथ प्रत्येक कार्य में हाथ बटाती थीं। उनके एसे दान और सेवा से प्रभावित होकर गायकवाड़ नरेश ने आपको "दातार" की उपाधि से विभूषित किया था। इसके अतिरिक्त सेठ चन्दुलाल जी ने अनेक गरीब परिवारों को सहारा दिया, शिक्षा की वृद्धि के उपाय किये पुस्तकालय आदि की स्थापनायें कीं उनके परोपकारादि के कार्यों से सारा गुजरात प्रान्त परिचित है। भगवान् श्री द्वारकाधीशजी के इस प्रकाशन यज्ञ में भी आर्थिक सहायता प्रदान कर आपने लेखक को उत्साहित किया है।

प्रभु से प्रार्थना है कि दातार सेठ उत्तरोत्तर शुभकार्यों में इसी प्रकार साहाय्य कर अपनी उपाधि के अनुरूप यश अर्जित करते हुए दीर्घायु होवें।

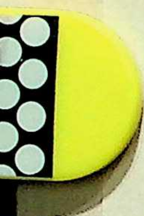


राजरत्न, दातार सेठ चन्दुलाल केशवलाल पारिख

एवं

श्रीमतीप्रभावती पारिख

पेटलाद



विषयानुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ संख्या

श्री द्वारकाधीशाष्टकम् — १
श्रीगुरु श्रीवर शास्त्रि वन्दनम् — ३

प्रथमः सर्गः

श्रीद्वारकाधीश-वन्दना — ५
अम्बरीषाय द्वारकाधीश प्राप्तिः — ५
यमुना वर्णनम् — ६
दुर्वाससः स्तुतिवर्णनम् — ८
कृत्यामृत्युः — ११
चक्रस्तुतिः — १२

द्वितीयः सर्गः

प्रभुध्यान वर्णनम् — १४
वरप्रदानम् — १६
वनगमन वर्णनम् — १७
वृद्धा संवादः — १८
राज्ञोगृहागमनम् — १९
श्रीद्वारकाधीश विग्रह वर्णनम् — २०
नारायण वादक गृहे कन्नोजे विग्रहपूजनम् — २०
दामोदराय द्वारकाधीश प्राप्ति वर्णनम् — २१
वल्लभाचार्याय द्वारकाधीश प्राप्तिः — २१
श्रीविट्ठलेश कर्तृकं पूजनम् — २१
काँकरौली गृहे द्वारकाधीश पूजनम् — २२
द्वारकाधीशस्य द्विधा प्रकाशः — २२
ग्वालियर स्थाने प्रादुर्भावः — २२

तृतीयः सर्गः

पारिख वर्णनम् — २३
पारिख परिचयः
दारिद्र्यवर्णनम् — २४
भ्रातृ जायाया व्यंग्यवर्णनम् — २८
गोकुलस्य वनगमनम् — २८
मुनिवन्दनम् — ३१
वरप्राप्तिः — ३२
नगरवास वर्णनम् — ३३

चतुर्थः सर्गः

पारिख व्यापार वर्णनम् — ३४
कौशल चन्द्र प्राप्तिः — ३७
ग्वालियरे आगमनम् — ३७
दिनचर्या वर्णनम् — ३८
लवणगंत्री प्रेषणम् — ४१

पंचमः सर्गः

गोपाचलवैभववर्णनम् — ४७
मुचुकुन्द कथा वर्णनम् — ४७
कालयवन वर्णनम् — ५२

षष्ठः सर्गः

सिंधिया नरेश वर्णनम् — ५४
इन्दोर वर्णनम् — ५४
उज्जयिनी वर्णनम् — ५५
नृप कोशल चन्द्रवर्णनम् — ५५
पारिखस्य नियुक्तिः — ५६

विषय	पृष्ठ संख्या
पारिखस्य सम्मानम्	५७
नागानां शमनाय यात्रा	५९
युद्ध वर्णनम्	६१
विजय वर्णनम्	६३
निधि प्राप्ति वर्णनम्	६३
राजसेवा त्याग वर्णनम्	६५
सिन्धिया द्वारा धन त्यागः	६६

सप्तमः सर्गः

विषय	पृष्ठ संख्या
पारिखस्य भजन वर्णनम्	६७
स्वप्ने द्वारकाधीश वर्णनम्	६९
हर्म्य निर्माण वर्णनम्	७०
शिवलिङ्ग प्राप्तिः	७२
द्वारकाधीश प्राप्ति वर्णनम्	७२
मनीराम वैश्य वर्णनम्	७४
गृहात् गमनम्	७५
पारिख समीपे गमनम्	७६
स्वप्ने व्रजभूमिगमनेच्छा	७६
मथुरा यात्रा	७७

अष्टमः सर्गः

विषय	पृष्ठ संख्या
यात्रा मङ्गलम्	७८
मथुरायामागमनम्	७९
विद्वद्भिः द्वारकाधीश लीला वर्णनम्	८१
प्रद्युम्न जन्म	८४
अनिरुद्धः	८४
नृगः	८५
पौण्ड्रकः	८५
काशी लीला	८६
द्वारका वैभवम्	८६
नृपोद्धारः	८६
शिशुपालवध	८६
शाल्ववधः	८७
दन्तवक्त्र वधः	८७
सुदाम चरितम्	८७
कुरुक्षेत्रोत्सवः	८८
मथुरायां निवासः	८९
स्वप्ने वृन्दावन गमनम्	८९

नवमः सर्गः

विषय	पृष्ठ संख्या
स्वप्ने पारिख द्वारकाधीश	९०
वृन्दावनगमनाज्ञा	९२
प्रस्थानमङ्गलम्	९३
नागरिकाणां विह्वलता	९५
वृन्दावन गमनम्	९६
तत्र दक्षिणा दानम्	९७
कथा व्यवस्था	९८
बाललीला	९८
रामचरित्र वर्णनम्	१०२
गोवर्धन महिमा	१०२
रासलीला	१०८
श्रीनाथजी दर्शनम्	१११
श्रीचैतन्य परिकर वर्णनम्	११२
भक्त वर्णनम्	११४

दशमः सर्गः

विषय	पृष्ठ संख्या
पारिखस्य वृन्दावने भ्रमणम्	११५
प्रकृति वर्णनम्	११६
जलचर-नाना जीवादिः	११६
नानौषधि-वनस्पति वर्णनम्	११७
पशुवर्णनम्	११८
वृन्दावन शोभा वर्णनम्	१२०
टटिया स्थानम्	१२२

विषय	पृष्ठ संख्या
सुवर्ण दक्षिणा दान घोषणा	१२६
स्वप्ने पारिखाय राधादर्शनम्	१२७
श्रीराधिका प्राप्ति:	१२८
एकादश: सर्ग:	
मथुरायां भूमि निर्णय:	१३०
भूमिक्रयणं, मुहूर्तञ्च	१३०
माथुर पुरोहित द्वारा साहाय्यम्	१३१
भूमि पूजनम्	१३१
मानचित्र दर्शनम्	१३२
वेदध्वनि वर्णनम्	१३४
शेष भूमि क्रय वर्णनम्	१३४
सुवर्ण पत्र द्वारा भूमि पूरणम्	१३८
द्वादश: सर्ग:	
माथुरस्य भूमिदानम्	१४०
चतुर्वेद विप्रदर्शनम्	१४८
श्रीचिन्तारामबिहारी	१४९
माथुर द्वारा अधिकार निषेध:	१५०
त्रयोदश: सर्ग:	
मथुरा यात्रा वर्णनम्	१५४
वाद्य मण्डल वर्णनम्	१५५
शोभायात्रा वर्णनम्	१५६
स्त्रीणां कौतुकम्	१५७
मल्लक्रीड़ा	१५८
शस्त्रक्रीडा	१५९
पट्टास्त्र, काष्ठदण्डादि चालनम्	१५९
'वनेटिका' चालनम्	१६०

विषय	पृष्ठ संख्या
'वाना' क्रीडा	१६२
कुन्तक्रीडा	१६३
खड्ग क्रीडा	१६४
चतुर्दश: सर्ग:	
श्री मथुरा वैभवम्	१६६
माथुरीणां वार्ता वर्णनम्	१६७
तासां दशा वर्णनम्	१६८
पञ्चदश: सर्ग:	
शोभायात्रा वर्णनम्	१७३
वाद्यवृन्द शोभा	१७४
माथुराणां प्रसन्नता	१७६
कीर्तन मण्डल शोभा	१७८
जूना मन्दिरे विश्राम:	१७८
पाटोत्सव वर्णनम्	१८१
षोडश: सर्ग:	
श्रीद्वारकाधीश मन्दिर वर्णनम्	१८३
नागरिककृता मथुरा दशा वर्णनम्	१८४
मन्दिरान्तर्वर्तिनी शोभा	१८६
श्रीद्वारकाधीश विग्रह शोभा	१८७
चित्रावली दर्शनम्	१९०
सप्तदश: सर्ग:	
नागरिक भावना	१९६
वाराह चरित्रम्	१९७
स्वर्गतोरावण द्वारा वाराह नयनम्	१९८
रामेण सह तद् विग्रहस्यायोध्या गमनम्	२००
माथुराणामयोध्या गमनम्	२००

विषय पृष्ठ संख्या

शत्रुघ्नेन सह पुनः मथुरागमनम् २०१

अष्टादशः सर्गः

द्वारकाधीश मन्दिरे वाराहः २०५

पारिखाय स्वप्नः २०७

स्वप्ने वरप्रदानम् २०८

एकोनविंशः सर्गः

गो०श्रीव्रजरायम०यात्रा वर्णनम् २१०

जबलपुर समीपे सिंह द्वारा आक्रमणम् २११

श्रेष्ठि श्री लक्ष्मीचन्द्रस्य वृत्तम् २१२

श्रेष्ठि श्री राधाकृष्णस्य वर्णनम् २१६

तस्य दीक्षा २१७

रङ्ग मन्दिर निर्माणम् २१८

वंशावली वर्णनम् २१९

विंशः सर्गः

मन्दिराधिकार प्रदानम् २२०

पुष्टिसेवाः विधि २२२

गो० बालकृष्ण म० वर्णनम् २२५

गो० व्रजभूषण लाल वर्णनम् २२७

विषय पृष्ठ संख्या

एकविंशः सर्गः

कविवंश वर्णनम् २२९

हथकांद ग्रामे गमनम् २२९

घनश्यामस्य वर्णनम् २३०

पं० बन्ना पौ० वर्णनम् २३०

मथुराऽऽगमनम् २३१

करौली यात्रा २३१

विवाहादि २३२

दण्डी विरजानन्द शिष्यत्वम् वर्णनम् २३३

परिवार निरूपणम् २३३

पितृ चरण वर्णनम् २३६

कवि स्थिति निरूपणम् २३७

शास्त्रार्थ वर्णनम् २३९

अध्यापन वर्णनम् २३९

श्री भक्ति हृदय वन महाराजा–मंत्रणेन वृन्दावन महाविद्यालये गमनम् २४०

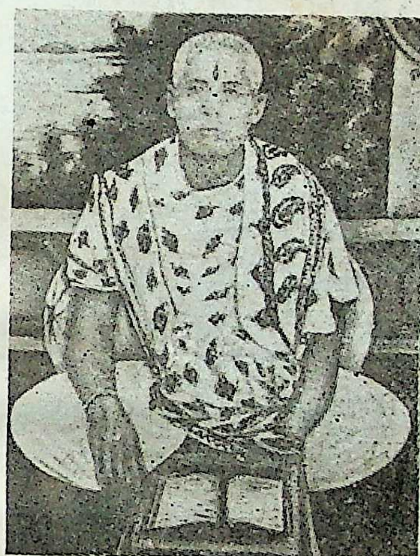
'बस' मन्त्रीमध्ये काव्य निर्माणम् २४०

श्री पारिखस्य 'पद' द्वयम् २४२



समर्पणम्

नित्यलीलास्थ प्रातः स्मरणीय १०८ श्रीपितृचरण गुरुवर
श्री श्रीवरजी चतुर्वेद चरण कमलेषु सादरम्



यस्यास्ये निगमागमादि विषयाः साङ्गा सदैव स्थिताः
मीमांसे खलु सेविकेइव सदाऽधीते च यस्य स्थिते।
न्याय व्याकरणादि शास्त्र-निचया यत्र मित्रभावंगता-
स्तस्य श्रीवर शास्त्रिणश्चरणयोर्ज्योतिस्तमो हन्तुमे ॥

— लेखकः

श्रीद्वारकाधीशाष्टकम्

यौ हि प्रसह्य हरतो भव-भीति-भारं
यौ च क्षणात् प्रणमतां कुशलं विधत्तः ।
संसेव्य मुक्तिमृषयो लघु तौ लभन्ते
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

संस्मृत्य यौ सफलतां दधते स्वकार्ये
भव्ये-प्रशस्त कृतिनः क्रतुषु प्रसक्ताः ।
यौ हि प्रवृद्ध-शतदुःख-विनाशकौ तौ
श्रीद्वारकेश चरणौ-शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

चंचत्-कला-कलित-काल-कराल-केली
प्रातर्नमज्जन—मनोरथ--पूर्ति-पूरौ ॥
ब्रह्मादि-देव-परिवन्दित-वन्द्य - कान्ती
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

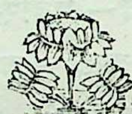
श्रीसेवितौ शरणदौ जगदेकनाथौ
विश्वम्भरौ सुरपतिस्मय-मर्दनौ च ।
गो-गोप-गोपन-परौ दनुजारि-सेव्यौ
श्रीद्वारकेश चरणौ-शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

याभ्यां विनिःसृतमिदं शिरसा पवित्रं
शम्भुः सदा परमम्बु सुखेन धृत्वा ।
गांगं च धन्यमतुलं मनुते स्वमेतौ
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

सृष्टि – स्थिति – प्रलय–कारण–हेतुभूतौ
त्रैलोक्य–विक्रमण–साधित–देवकार्यौ ।
सद्योगिवर्य–––हृदयाब्ज–––विराजमानौ
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

आश्रित्य यौ सुरवरा जगतामधीशाः
संप्राप्नुवन्ति जगतां प्रभुतामशेषाम् ।
दुर्बुद्धयोऽपि च भवन्ति विचक्षणास्तौ
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

गोस्वामिभिर्व्रज – विभूषण – भूषणाद्यै––
र्यौ स्थापितौ मधुपुरे यमुना – प्रतीरे ।
तावीप्सितार्थ – परिपूरण – पारिजातौ
श्रीद्वारकेश-चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥



श्री द्वारकेशो विजयते

श्रीगुरु-श्रीवरशास्त्रिवन्दनम्

यस्यास्ये निगमागमादि--विषया सांगाः सदैव स्थिता
मीमांसे खलु सेविके इव सदाऽधीतौ च यस्य स्थिते
न्यायव्याकरणादि-शास्त्रनिचया यन् मित्रभावं गता--
स्तस्य श्रीवरशास्त्रिणश्चरणयोर्ज्योतिस्तमो हन्तु मे ।। १ ।।

जिनके कंठ में निगम और आगम आदि विषय, अंग सहित उपस्थित थे, दोनों "मीमांसा मानो दो सेविका की तरह सेवा में ही उपस्थित थीं" और न्याय व्याकरण आदि शास्त्र जिनके मित्र थे, ऐसे पूज्य स्व० गुरुवर श्रीवर शास्त्री जी के चरणों की ज्योति मेरे हृदयान्धकार को दूर करे ।

न्यायव्याकृति - धर्मशास्त्रगहन - ज्ञान - प्रभावार्जित-
प्राज्यख्यातिबुभुत्सु बोधपटुता दीव्यन् मनीषाजुषाम्
श्रीमन् - माथुरविप्रवंशजलधेर्ग्लावां गुरुणां स्मृतौ
तातश्रीवरशास्त्रिणां तनुभुवा ग्रन्थो मुदा प्रार्प्यते ।। २ ।।

न्याय-व्याकरण-धर्मशास्त्र आदि शास्त्रों के गहन ज्ञान से जिन्होंने शिष्यों में प्रतिष्ठा प्राप्त की, विद्वानो को तृप्त किया, ऐसे माथुर चतुर्वेद कुल समुद्र के चन्द्र गुरुवर पितृचरण श्री श्रीवर शास्त्रि जी महाराज के कर कमलों में उनके ही पुत्र (वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद) द्वारा ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है ।

शास्त्र - तत्त्वबुभुत्सूनामिष्टार्थे कामधेनवः
जयन्ति श्रीवराचार्यपादपंकज - रेणवः ।। ३ ।।

शास्त्र तत्त्व के जिज्ञासुओं को मनोभीष्ट फल देने वाले कामधेनु तुल्य श्री श्रीवर शास्त्री जी की चरण रज की जय हो ।

यत्कृपा[illegible]शमात्रेण कुर्वे काव्यं यथामति
तेषां [illegible] तात - पादानां वन्दे पादौ मुहुर्मुहुः ।। ४ ।।

जिनकी कृपा के लेशमात्र से मैं काव्य करने में यथामति समर्थ हुआ हूं उन पूज्य पितृ चरणों को बारंबार प्रणाम करता हूं।

धौतं वस्त्रमथोत्तरीयममलं बिभ्रद् द्वयोः स्कन्धयो--
ग्रींवायां तुलसीस्रजञ्च निदधद् दक्षांगुलौ मुद्रिकाम् ॥
गोपीचन्दनमृत्स्नया च तिलकं बिभ्रच्छ्रियं श्रीवरं।
वन्दे भागवती--कथामनुपदं व्याख्यातवन्तं गुरुम् ॥ ५ ॥

कटि में धोती और दोनों कंधों पर दुपट्टा ओढ़ने वाले कंठ में तुलसी की माला, अंगुलि में मुद्रिका पहने, मस्तक पर गोपीचन्दन के तिलक की शोभा से शोभित, भागवत कथा में दत्तचित्त पूज्य गुरुचरणों की वन्दना करता हूं।



अथ महाकाव्यारम्भः

प्रथमः सर्गः

श्रीद्वारकाधीश-वन्दना

योऽद्यापि राजेश्वर - चक्रवर्ति-
प्रशस्त - सेवाऽनुभवं दधाति ।
विराजते यो मथुरानगर्यां
तं द्वारकाधीशमहं प्रपद्ये ।। १ ।।

जो आज भी राजेश्वर चक्रवर्तियों द्वारा पूजित हैं और सेवा अनुभव दाता हैं, जो मथुरा नगर में विराजमान हैं, उन श्री द्वारकाधीश जी की वन्दना करता हूं।

अम्बरीषाय द्वारकाधीशप्राप्तिः

सूर्य-वंशे नृपः कश्चिदम्बरीष इति श्रुतः ।
चक्रवर्ती च नीतिज्ञो द्विज - सेवा - परायणः ।। २ ।।

पूर्व युग में सूर्यवंश में एक अम्बरीष नामक चकवर्ती नृपति था, वह बड़ा ही नीतिज्ञ तथा द्विज सेवा में परायण था।

भक्तिमान् धैर्यवान्नित्यं विद्यावान् याजकाग्रणीः ।
श्रौतस्मार्त - क्रियानिष्ठो धेनुदान--रतः सदा ।। ३ ।।

भक्तिमान्-धैर्यवान्-विद्यावान् तथा यज्ञ में निष्ठा वाला तथा श्रौत-स्मार्त क्रियाओं में दत्तचित्त था और गोदानी था।

प्रातःस्नायी महाशूरः सत्यव्रत - प्रचारकः ।
स्वर्ण - भू - वस्त्रदायी च मृदुभाषी हरिप्रियः ।। ४ ।।

वह शूर प्रातः काल स्नान करने वाला था और सत्य का पालन करने वाला, स्वर्ण-भूमि-वस्त्र दान में प्रीति रखता था, मृदु भाषी तथा भक्त था।

कृष्णमन्दिर - सेवायां रात्रिन्दिवमथोत्सुकः
जातोऽयोध्यापतिः श्रीमाननन्तगुणभूषितः ॥ ५ ॥

श्री कृष्ण मन्दिर की सेवा में दिन रात लगने वाले अनन्त गुणों से भूषित नृपति की (अयोध्या) राजधानी थी ।

तस्य मथुरागमनम्–

स चैकदा महाभागो मथुरामागमत् सुधीः ।
कार्तिके मासि सम्प्राप्ते कृतवान् नियमान् यमान् ॥६॥

वह महाभाग्यशाली एक बार मथुरापुरी में आया और उसने कार्तिक मास के व्रत, नियम प्रारम्भ किये ।

श्रुत्वाऽऽगतं तं द्विजराजमुख्या
जग्मुः सशिष्या-मथुरा नगर्याम् ।
सत्संगलाभार्थमहो पृथिव्यां,
के नाम धीराः क्व च नैव यान्ति ॥ ७ ॥

राजा अम्बरीष को मथुरा में आया हुआ सुनकर विद्वान् ब्राह्मण, मथुरा नगर में आये। सत्सङ्गति लाभ के लिए पृथिवी में कहो कौन कहाँ नहीं जाते ?

यमुना-वर्णनम्–

नीलाम्बरा राजति यत्र नित्यं,
यमस्वसा श्याम रसे निमग्ना ।
यत्रातिथिर्धर्मनृपो बभूव,
निमन्त्रितः स्वानुजयेव प्रीत्या ॥ ८ ॥

वह मथुरा जहाँ यमुना श्री कृष्ण के रस में मग्न नित्य विराजमान है, तथा जहाँ यमराज भी अतिथि बन कर बहिन की प्रीति से आया था ।

यत्र भूतेश्वरो देवो दीर्घविष्णुस्तथैव च ।
तपःस्थली ध्रुवस्यास्ति सेवेयं मथुरापुरी ॥ ९ ॥

मथुरा के रक्षक भूतेश्वर शिव हैं, दीर्घ विष्णु विराजमान हैं तथा ध्रुव की तपः स्थली है ।

एकादश्यां निराहारो बभूव नृपनन्दनः ।
स्नातुं जगाम कालिन्द्यास्तटे विश्रान्तिसंज्ञके ॥ १० ॥

अम्बरीष एकादशी का व्रत करते थे, एक बार मथुरा के विश्रान्ति घाट पर स्नान करने गये ।

तत्र स्नात्वा सपत्नीको विधाय पितृतर्पणम् ।
अर्चनं च द्विजातीनां गृहं प्रतिजगाम सः ॥ ११ ॥

पत्नी सहित वहाँ स्नान किया और पितरों का तर्पण किया, विप्रों का पूजन कर घर लौटे ।

ब्रह्म-भोज-वर्णनम्-

आहूय विप्रान् वेदज्ञान् भोजयामास पार्थिवः ।
दक्षिणादिभिरभ्यर्च्य ननाम शिरसा तदा ॥ १२ ॥

वेद के ज्ञाता विप्रों को निमन्त्रण देकर भोजन कराया और दक्षिणा प्रदान कर प्रणाम किया ।

प्रोवाचैको द्विजः कश्चित् स्वल्पा वै द्वादशीतिथिः,
अतोऽत्र पारणा कार्या शास्त्रोक्तवचनैः सह ॥ १३ ॥

एक ब्राह्मण ने कहा—राजन् द्वादशी तिथि अब थोड़ी शेष है अतः शास्त्र नियमानुसार पारण करें ।

द्विजा यदा गता भुक्त्वा गृहीत्वा धेनुदक्षिणाम् ।
भोजनार्थं सुसन्नद्धोऽभून्नृपः सान्वग्रस्तदा ॥ १४ ॥

जब ब्राह्मण गाय तथा दक्षिणा लेकर चले गये तब राजा ने भोजन की तैयारी की ।

दुर्वासोमुनिवर्णनम्-

नमः शिवायेति वचो ब्रुवाणो
दण्डं च हस्ते परिवर्त्यमानः ।
रुद्राक्ष - मालां च गले दधान-
स्तत्रात्रि - पुत्रश्च समाजगाम ॥ १५ ॥

उसी समय 'नमः शिवाय' बोलते तथा दण्ड को हाथ में हिलाते, रुद्राक्ष माला धारण किये अत्रि पुत्र दुर्वासा आये।

दृष्ट्वा शिवं शान्ततनुं तपोधनं
दुर्वाससं तीव्रगतिं जटाधरम्।
उत्थाय शीघ्रं न्यगदच्च भूपतिः
प्रभो! वयं धन्यतमा न संशयः ॥ १६ ॥

राजा ने देखा कि, शान्ततनु तपस्वी तीव्रगति वाले जटाधारी दुर्वासा मुनि आये हैं तो शीघ्र उठकर कहा आहा, आज हम धन्य हैं इसमें संशय नहीं है।

प्रणम्य शिरसा भूयो मुनिं दुर्वाससं नृपः।
उपवेश्याऽऽसने विज्ञस्तुष्टावाष्टक-पद्यकैः ॥ १७ ॥

राजा ने यह कहकर उन्हें प्रणाम किया और बैठने को आसन दिया तथा आठ श्लोकों से स्तुति करने लगा।

स्तुति-वर्णनम्-

नमामि ते पदाम्बुजं, कृपाकरं सुशीतलम्।
भवाब्धि - पोतरूपिणं सुदेव-वृन्द - पूजितम् ॥ १८ ॥

हे मुने! आपके कृपा करने वाले सुशीतल तथा भव सागर के लिये नौका स्वरूप एव देव वृन्द पूज्य पदाम्वुज को नमस्कार करता हूँ।

श्रुतिस्मृति-प्रचारकं, गुरुं मुनिं गुणाकरम्।
जटाधरं यशस्विनं, भजामि चन्द्र - सोदरम् ॥ १९ ॥

श्रुति-स्मृतियों के प्रचारक, गुरु, मुनि, गुणों की खान, जटाधर, यशस्वी चन्द्र के सहोदर का भजन करता हूँ।

त्रिदेववर्य- पूजितं, त्रिवेद-विज्ञ-वन्दितम्।
समस्तशास्त्रपारगं, नमामि दत्त-सोदरम् ॥ २० ॥

त्रिदेवों के भी पूज्य, त्रिवेदविज्ञों से वन्दित, समस्त शास्त्रों में पारङ्गत, दत्तात्रेय के भ्राता को नमस्कार करता हूँ।

समस्तपाप - नाशनं, यदीयमर्चनं नृणाम्।
त्रिताप-ताप हारकं, नमामि दत्त-सोदरम् ॥ २१ ॥

जिनका पूजन समस्त पापों का नाशक है, दैविक दैहिक भौतिक तापों को दूर करने वाला है ऐसे दत्तात्रेय के भ्राता दुर्वासा को नमस्कार करता हूँ।

कलिन्दकन्यका--तटे, विराजितं महत्प्रभम् ।
यशः शरीरधारिणं नमामि दत्त--सोदरम् ।।२२।।

यमुना तट पर विराजमान, अत्यन्त तेजस्वी यशः शरीरधारी, दत्तात्रेय के बन्धु को नमस्कार करता हूँ।

सुरेन्द्र-वृन्द-संस्तुतं, गजानन-प्रमोदकम् ।
विशाल-लोल-लोचनं, नमामि दत्त-सोदरम् ।।२३।।

सुरेन्द्र वृन्द द्वारा संस्तुत, गजानन को प्रसन्न करने वाले, विशाल चंचल नेत्रधारी, दत्तात्रेय के भ्राता को नमस्कार करता हूँ।

सुपत्र-पुष्प-भाजन-प्रभालसत्कराब्जकम् ।
सुदर्भ-मुद्रिकाकरं, नमामि दत्त सोदरम् ।।२४।।

पत्र-पुष्प कमण्डलु की प्रभा से सुशोभित हस्तकमल वाले तथा कुश की पवित्री धारण किये दत्तात्रेय के बन्धु को नमस्कार करता हूँ।

त्रिपुण्ड्र-शोभि-भालकं त्रिचन्द्रकं व राजितम् ।
सुवल्कलाम्बरावृतं, नमामि दत्त-सोदरम् ।।२५।।

तीन चन्द्रिका की भाँति त्रिपुण्ड्र सुशोभित ललाट वाले वल्कल वस्त्र धारी, दत्तात्रेय के बन्धु को नमस्कार करता हूँ।

अम्बरीष नृप प्रोक्तं श्रुत्वास्तोत्रं महामुनिः ।
तेन प्रीत्या जगादाशु प्रियं किं करवाणि ते ।।२६।।

राजा अम्बरीष के स्तोत्र को सुनकर मुनि दुर्वासा ने सन्तुष्ट होकर कहा— मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ।

मुनि प्रार्थनम्–

प्राहेत्थं वै पृष्टो राजा, भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं चोष्यम् ।
पक्वं चान्नं दुग्धं चाज्यं, स्वीकर्त्तव्यं दत्तं नूनम् ।।२७।।

राजा ने कहा—भक्ष्य-भोज्य-लेह्य चोष्य, पक्व अन्न दुग्ध-घृत जो कुछ भेंट करूँ स्वीकार करें।

श्रुत्वा सर्वं वृत्तं विप्रः प्रोवाचेत्थं विद्यामूर्तिः ।
त्यक्त्वा सन्ध्यां पूजां धीमन् भोक्तव्यं ते गेहे केन ॥२८॥

राजा के वचन सुनकर विद्यामूर्ति दुर्वासा ने कहा—सन्ध्यावन्दन त्यागकर कौन भोजन चाहेगा।

नो गन्तव्यं दूरे किञ्चिद् स्नातव्यं भो शीघ्रं पार्श्वे ।
प्रोचे राजा द्वादश्यां वै स्वल्पः कालो मा विस्मार्यः ॥२९॥

तब राजा ने कहा आप दूर न जाइये पास में ही स्नानादि कर पधारें क्योंकि द्वादशी तिथि स्वल्प ही शेष है।

दुर्वाससो यमुना तीरे गमनम्-

एवं निमन्त्रणं प्राप्य दुर्वासास्तु महामतिः ।
स्नातुं ययौ सुकालिन्द्यास्तटे शिष्य समन्वितः ॥३०॥

इस प्रकार निमंत्रण प्राप्तकर शिष्यों के साथ महामति दुर्वासा यमुना तट पर गये।

अम्बरीषनृपस्तत्र ज्ञात्वा चोपोषणक्षयम् ।
पप्रच्छ संस्थितान् विप्रान् किं कर्तव्यं मयात्र हा ॥३१॥

राजा ने द्वादशी व्यतीत होते देख उपस्थित ब्राह्मणों से पूछा कि अब मैं क्या करूँ ?

[यदि द्वादशी में पारणा न किया जाय तो पुण्य क्षीण होता है]

प्रोचुर्विप्राः जलं पेयं ह्यशितं नाशितं च तत् ।
शास्त्ररक्षा च कर्तव्या कर्तव्यं विप्रतोषणम् ॥३२॥

ब्राह्मणों ने कहा -- आप जल ग्रहण करें वह भोजन में है और नहीं भी है शास्त्र वचन भी पूर्ण करें तथा ब्राह्मण की तुष्टि भी करें।

राज्ञो जलपानम्-

जलपानं कृतं तेन विप्राणां चाज्ञया यदा ।
तदा समागतो धावन् दुर्वासा भोजनाय च ॥३३॥

राजा ने जैसे ही जलपान किया दौड़ते हुए दुर्वासा भोजनार्थ आगये।

दृष्ट्वा स्वास्थ्यं नृपस्याऽच्छं विचिन्त्य मनसा मुनिः ।
कृतं स्याद्भोजनं नूनं येनायं बलवत्तरः ॥३४॥

राजा की वाणी में परिवर्तन देखकर मुनि ने मन में विचार किया कि अवश्य ही इसने भोजन किया है ।

मुनेः कोपवर्णनम्–

ततोऽब्रवीदहो पापिन् स्वयंभुक्तं निमन्त्र्य माम् ।
मारयिष्ये ध्रुवं भूप ! शापेन ब्रह्म तेजसा ॥३५॥

मुनि बोले—पापी राजा ! मुझे निमंत्रण देकर स्वयं ने भोजन किया है अतः मैं तुझे अभी ब्रह्म शाप से भस्म करता हूँ ।

कृत्याजन्म–

जटामुत्कृत्य कोपेन कालानलसमप्रभाम् ।
तया विनिर्ममे कृत्यां खड्गहस्तां भयप्रदाम् ॥३६॥

क्रोध से जटा उखाड़ दी और कालाग्नि तुल्य खड्ग हस्ता, भयदायिनी कृत्या उत्पन्न कर दी ।

अम्बरीषो नृपः किञ्चिन्न चचाल पदात्पदम् ।
हन्तुं समागतां वीक्ष्य ज्वलन्तग्निमिवाद्भुताम् ॥३७॥

परन्तु राजा ने अग्नि के समान जलती और दग्ध करने आती कृत्या को देखकर भी एक पैर आगे नहीं बढ़ाया ।

कृत्यामृत्युः

सुदर्शनेन चक्रेण नष्टा कृत्या क्षणान्तरे ।
विष्णुदेव नियुक्तेन जलेनेव हुताशनः ॥३८॥

वहाँ विष्णु भगवान् के आदेश से सुदर्शन चक्र बैठे थे, उन्होंने क्षणभर में कृत्या अग्नि शान्त कर दी जैसे जल से साधारण अग्नि शान्त हो जाती है ।

मुनेः पलायनम्–

विलोक्य निष्फलं यत्नं दिक्षु प्राणपरीप्सया ।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतः सप्तलोकेषु वेगतः ॥३९॥

जब दुर्वासा जी ने अपना समग्र प्रयास विफल हुआ देखा तो प्राण रक्षार्थ भयभीत होकर सातों लोकों में भागने लगे।

पुनः मथुरा गमनम्–

वैकुण्ठाद्विष्णुदेवेनप्रेषितो भक्त सन्निधौ।
दुर्वासाः खिन्नभावेन राज्ञः पार्श्वमुपागमत् ॥४०॥

वैकुण्ठ भी गये तो वहाँ भगवान् ने कहा कि आप भक्तवर अम्बरीष के पास ही जावें। तब बड़े खिन्नभाव से वे राजा के समीप आये।

चक्र स्तुति––

राजाऽपि दुःखितं दृष्ट्वा मुनिं दुर्वाससं प्रभुम्।
चक्रं सुदर्शनं ध्यायन् स्तुतिमेवं चकार ह ॥४१॥

राजा ने देखा कि श्री दुर्वासा मुनि सुदर्शन के कारण घबड़ा रहे हैं तो उन्होंने ध्यान किया और सुदर्शन की स्तुति करने लगे।

हे विष्णुभक्त ! मेधाविन् ! हे भास्कर समद्युते !
रक्ष दुर्वाससं विप्रं विद्यावन्तं तपोधनम् ॥४२॥

हे विष्णुभक्त, मेधावी, हे सूर्य सम द्युतिवाले, सुदर्शन ! आप विद्वान् तपस्वी श्री दुर्वासाजी की रक्षा करें।

त्वं सूर्यस्त्वंक्षितिर्व्योम चन्द्रस्त्वं ज्योतिषांपतिः।
त्वमग्निर्भगवान्वायुस्त्वं सदाभक्तरक्षकः ॥४३॥

आप सूर्य हो, पृथ्वी, गगन, चन्द्रमा हो, अग्नि, वायु आप ही हो, रक्षा कीजिये।

त्वं सत्यममृतं यज्ञस्त्वं धर्मः पौरुषं परम्।
दैत्यानां धूमकेतुस्त्वं सुदर्शन ! नमोस्तुते ॥४४॥

आप सत्य हो, अमृत हो, यज्ञ हो, धर्म हो, परं पौरुष हो, दैत्यों के विनाश को धूम्रकेतु हो, आपको नमस्कार।

भद्रं विधेहि विप्रस्य कुलपूज्यस्य सर्वथा।
हे लोकपाल ! सर्वात्मन् ! भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥४५॥

कुल पूज्य ब्राह्मण का मंगल करो। हे लोकपाल ! हे सर्वात्मन् ! मैं आपको वारंबार नमस्कार करता हूँ।

चक्रं सुदर्शनं शान्तिं गतं विज्ञाय भूपतिः।
भोजयामास विप्रेन्द्रं प्रसाद्य वचसा मुनिम् ॥४६॥

जब सुदर्शन शान्त होगये तब राजा ने मुनि को अमृत बचनों से सन्तुष्ट कर भोजन कराया।

मुनौ गते नृपस्तत्र दयालुत्वं स्मरन् विभोः।
पूजयामास देवर्षीन् कृष्ण दर्शन लालसः ॥४७॥

मुनि के चले जाने पर प्रभु की दयालुता को विचारते हुए अम्बरीष ने देव ऋषियों की पूजा प्रभु के साक्षात् दर्शन हेतु की।

इति श्री पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचिते श्री द्वारकाधीश महाकाव्ये अम्बरीष नृप वृत्त वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः

पं० श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में प्रथम सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ द्वितीयः सर्गः

प्रभु ध्यान वर्णनम्-

अप्रार्थयन्महाराजो भगवन्तमधोक्षजम् ।
मूर्तिरूपेण स्वेगेहे निवासार्थं सदा प्रभुम् ॥ १ ॥

राजा अम्बरीष ने इच्छा व्यक्त की कि भगवान् 'अधोक्षज' विग्रह रूप में भी मेरे भवन में विराजमान होवें ।

हे कृष्ण ! गोविन्द ! रथाङ्गपाणे !,
नारायणाधोक्षज ! रावणारे !!
गायन्ति नामानि जनाः प्रभाते
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! गोविन्द ! चक्रपाणि, नारायण, अधोक्षज, रावणारि तथा गोविन्द ! दामोदर ! माधव नाम प्रातः अनेक मनुष्य गाते हैं जपते हैं ।

वेदैर्विहीना मनुजेषु हीनाः
शास्त्रेषु नष्टा गुरुभक्ति पुष्टा ।
जपन्ति नित्यं निजलाभ हेतो-,
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३ ॥

वेदों से हीन, मनुजों में भी अधम, शास्त्र भ्रष्ट भी केवल गुरु की भक्ति से पुष्ट होकर अपने लाभ के लिये गोविन्द-दामोदर माधव नाम जपते हैं ।

ब्रह्मास्त्र - पुष्टा व्यभिचारिणश्च
क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ।
तेऽप्येवमुक्ता भुवि मोक्षमीयु-,
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ४ ॥

ब्रह्मधन से पुष्ट, व्यभिचार रत, क्रूर तथा पिशाचों की भाँति निर्दय भी गोविन्द-दामोदर-माधव नाम जपकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

कायेन वाचा मनसाऽपि दुष्टाः
दुराशयाः पातकपुञ्ज-तुष्टाः ।
उच्चारयन्तश्च व्रजन्ति मोक्षं
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।। ५ ।।

शरीर-वाणी-मन तीनों से भी दुष्ट, बुरे विचार वाले अनेक पातकों से ही तुष्ट जन भी गोविन्द-दामोदर-माधव को जपकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

बालो ध्रुवो नारद-दीक्षितः सन्
जगाम धीमान् यमुना निकुञ्जे ।
उच्चस्वरेणाशु जगौ सुगीतं
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।।६ ।।

बालक भक्त ध्रुव, नारद के आदेश को पाकर यमुना तट पर बैठकर गोविन्द दामोदर-माधव को ही जोर से गाते थे।

गन्धर्व - यक्षासुर - किन्नराश्च
प्रेताश्च रक्षोगण - पन्नगाश्च ।
द्रवन्ति गातुर्मनुजात् सुभीता,
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।। ७ ।।

गन्धर्व-यक्ष-असुर-किन्नर-प्रेत राक्षस और सर्प भी गोविन्द-दामोदर माधव गाने वाले के सामने से हट जाते हैं उससे भय मानते हैं।

ये मानवाः पापकृतस्तु लोके
दुराशयाः सज्जन - सङ्गहीना ।
पुनन्ति यत्कीर्तनवन्दनैस्वदन्
गोविन्द - दामोदर - माधवेति ।। ८ ।।

जो पापी हैं, दुराशय हैं सज्जनों की संगति से रहित हैं वे भी उन गोविन्द दामोदर माधव नाम से पवित्र हो जाते हैं।

प्रह्लाददैत्योऽसुरवंशदीपो-
ब्रह्मात्मजा नारद उद्धवाद्याः ।
भक्तास्तथाऽन्ये प्रजपन्ति नित्यं
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।। ६ ।।

दैत्य कुलदीप भक्त प्रल्हाद, ब्रह्मा के पुत्र सनकादि, नारद, उद्धव आदि भक्त गोविन्द-दामोदर-माधव नाम ही जपते हैं ।

भक्तिः सदा पुत्रयुता पृथिव्यां
हसत्यहो नृत्यति प्रेमपुष्टा ।
प्रमोदतेऽहर्निशमेव गाने
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।।१०।।

श्रीमती भक्ति अपने पुत्रों के साथ प्रेम से पुष्ट होकर प्रसन्न चित्त गोविन्द-दामोदर-माधव गान में रत रहती हैं ।

प्राहाऽम्बरीषोऽपि नृपः सभायां
श्रृण्वन्तु सभ्या वचनं मदीयम् ।
ब्रवन्तु सर्वे मधुर - स्वरेण
गोविन्द – दामोदर – माधवेति ।।११।।

राजा अम्बरीष सभा में बैठकर भी सब लोगों से गोविन्द-दामोदर-माधव नाम का कीर्तन कराते ।

वरप्रदानम्–

सुप्रसन्नेन देवेन वरोदत्तो महाद्भुतः ।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यसि विग्रहं मम ।।१२।।

जब प्रभु प्रसन्न हुए तो वरदान दिया कि शीघ्र ही मैं तुम्हें मिलूँगा ।

मदीयं दर्शनं नोके दुर्लभं सर्वदैव हि ।
दास्यामि पूजनार्थं मे विग्रहं द्वारकापतेः ।।१३।।

यद्यपि मेरा दर्शन लोक में दुर्लभ है तथापि अपना द्वारकाधीश का विग्रह प्रतिदिन पूजा के लिये मैं दूँगा ।

चिन्तावर्णनम्-

इत्याकाश वचः श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपतिः ।
क्व भवेन्मिलनं तस्य इति चिन्तापरोऽभवत् ।।१४।।

इस प्रकार आकाश वचन सुनकर राजा विस्मय युक्त हुआ और विग्रह प्राप्ति की चिन्ता में रत रहने लगा ।

वनगमन वर्णनम्-

कालान्तरे भक्तवरोमहीपोः
ददर्श स्वप्ने भगवत्प्रकाशम् ।
विहाय शय्यामथ - शून्य - देशे-
जगाम देवेश - कृपेरितः सन् । १५।।

एकबार राजा ने स्वप्न में भगवान् का दर्शन किया और दर्शन करते ही शय्या को त्यागकर वन में चल दिया ।

गच्छन् वने दुर्गम - पर्वतेऽपि
नदीं समुल्लंघ्य सुदुस्तराञ्च ।
व्याघ्रांश्च मातङ्ग मृगांश्च पश्यन्
तत्प्राप्तिकामश्चलितोऽश्रमः सन् ।।१६।।

बड़े दुर्गम पर्वतों को लांघकर नदी तैरकर, जंगली बाघ-गज-मृगों को देखता भगवान् की प्राप्ति के लिये श्रमरहित होकर चल दिया ।

अवाप्य देशं त्वथ रम्य - हर्म्यं
स चिन्तयामास नृपोऽतिधीरः ।
कुत्रास्ति मे देववरः कृपालुः
पृच्छामि कं वा निज भक्तवश्यम् ।।१७।।

राजा एक रमणीक स्थल पर जा पहुँचा और वहाँ विचारने लगा कि जो विग्रह मुझे दिखलाई दिया था जिस स्थल पर वह तो ऐसा ही था अब मेरे आराध्य कहाँ मिलेंगे ? किससे पूछूँ ?

वृद्धा संवादः-

ददर्श राजा जरयावृताङ्गीं
वृद्धां स्वहस्तेन समाह्वयन्तीं ।
पार्श्वं गतस्तत्र जवेन नम्रः
प्रणम्य भूमौ निषषाद देवः ॥१८॥

इतने ही में एक शिथिलाङ्गी वृद्धा ने राजा को हाथ के संकेत से बुलाया और राजा उसको प्रणामकर समीप में बैठा।

उवाच वृद्धा श्रणु भक्तवर्यं
त्वं चक्रवर्तीति विनिश्चितोऽसि ।
ददामि मे श्रीपति - सौम्यमूर्तिं-
या पूजिता मे कुलबान्धवैश्च ॥१९॥

वृद्धा ने कहा भक्त तुम अम्बरीष राजा हो मैं जानती हूँ तुम्हें भगवान् की सौम्य मूर्ति देना चाहती हूँ।

यत्पादपद्मं कपिलस्य - माता,
श्री देवहूतिर्मुदिताऽर्चयच्च ।
यद्वन्दनं - यत्स्मरणं च दास्यं-
तनोति लोके सुख - वैभवादीन् ॥२०॥

यह वही विग्रह है जिसका पूजन श्री कपिलदेव की माता देवहूति ने किया है जिनकी अर्चना जिनका स्मरण दास्य लोक में समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

देवहूति पूजित विग्रहस्य दानम्-

श्रुत्वा सुधोपमां वाचं हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।
जग्राहाऽऽशु नृपो मूर्तिं प्रणमन् हृष्टमानसः ॥२१॥

अमृत के समान वृद्धा के वचनों को सुनकर राजा की आँख हर्ष से खिल उठीं और आनन्द दायिनी उस मूर्ति को प्रणाम करता हुआ उससे ले लिया।

श्री देववंशे कपिलस्य प्रेम्णा
विराजितोऽभूद्विबुधेश्वरो यः ।
राज्ञोऽम्बरीषस्य च दैव - वृद्धौ
समर्पितस्तत्कुलवृद्धया सः ॥२२॥

कपिल के प्रेम से जो विग्रह देववंश में विराजमान था राजा अम्वरीष की भाग्य वृद्धि से कुल की वृद्धा द्वारा उसे समर्पित कर दिया गया ।

राज्ञो गृहागमम्-

जगाम देवेश्वरवन्दिताङ्घ्रि
श्रीद्वारकानाथ - विभुं वरेण्यं ।
नीत्वा स्वकीये भवने प्रसन्नो
निधिं गृहीत्वेव यथा दरिद्रः ॥२३॥

राजा, शीघ्र ही देववन्द्य विग्रह को लेकर उसी प्रकार चला जैसे दरिद्री निधि को प्राप्तकर प्रसन्न हो चलता है ।

हर्ष प्रकर्षः-

चतुर्भुजं श्यामविभुं विलोक्य
ननर्त गेहे सुतदारयुक्तः ।
बालास्त्रियो - वृद्ध - जनास्तथैव
परस्परं सक्तकरा अनृत्यन् ॥२४॥

चार भुजा वाले विग्रह को देखकर राजा स्त्री-पुत्र सहित घर में नृत्य करने लगा अपार भीड़ भी हाथ से हाथ पकड़ कर नाचने में मस्त हो गयी ।

धन्या वयं धन्यतमोऽद्य राजा
धन्याः प्रजा देशवरोऽथ धन्यः ।
पश्यन्ति ये देवपतेर्महान्तं
महोत्सवं मङ्गलदायकञ्च ॥२५॥

प्रजा कहने लगी हम धन्य हैं और यह राजा भी धन्य है यह देश भी धन्य है जो इस महान् मंगलदायक प्रभु के महोत्सव को देख रहा है।

श्री द्वारकानाथ वरस्वरूपं
पश्यन्ति ये भक्तजनाः कलौ वै।
गच्छन्ति ते विष्णुपदं नृदैव-
योगोश्वराणामपि दुर्लभं तत् ॥२६॥

श्री द्वारकानाथ के श्रेष्ठ स्वरूप का जो दर्शन करते हैं वे योगीश्वरों को दुर्लभी विष्णुपद को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीद्वारकाधीशविग्रह वर्णनम्-

चक्रं - गदां - शङ्खमथाम्बुजं च
श्रीमद्हृषीकेशप्रभुर्बिभर्ति।
आचार्यगर्गो निजसंहितायां
श्रीद्वारकाख्ये विलिलेख खण्डे ॥२७॥

द्वारकाधीश के विग्रह में चक्र-गदा-शख और कमल चार हस्तों में सुशोभित हैं। गर्ग संहिता में भी द्वारका खण्ड में गर्गाचार्य ने लिखा है।

द्वापरे सोम शर्मा द्वारा पूजनवर्णनम्-

गतेऽम्बरीषे दिवि विष्णुदासे
कालान्तरे द्वापर नामके वै।
युगेऽर्बुदाख्यायुतशैलमध्ये
श्रीसौरशर्मा समपूजयच्च ॥२८॥

भगवान् के प्रिय दास अम्बरीष के विष्णुधाम चले जाने पर कालान्तर में द्वापर युग के अन्त में अर्बुद पर्वत पर सौरशर्मा, भगवान् श्री द्वारकाधीश की पूजा करता था।

नारायणवायक गृहे कन्नोजे विग्रह पूजनम्-

शैलार्बुदं विहायाशु कन्नोजाख्येऽथ मण्डले।
नारायणवायकस्य गेहं प्राप्तः सुराधिपः ॥२९॥

अर्बुद पर्वत को छोड़कर भगवान् का विग्रह 'कन्नोज' मण्डल में नारायण नामक दर्जी को प्राप्त हुआ।

श्रीदामोदराय द्वारकाधीश प्राप्तिवर्णनम्-

भूताक्षि - वाण - चन्द्राढ्ये विक्रमे वत्सरे शुभे।
दासो दामोदरोऽगृह्णात् द्वारकाधीश - विग्रहम् ॥३०॥

१५२५ विक्रम में श्री द्वारकाधीश का विग्रह दामोदर नामक व्यक्ति को मिल गया।

दामोदरेण ताम्रस्य पत्रस्य च विलेखनम्।
दर्शितं वल्लभार्याय व्याख्यानं सोऽकरोन्मुदा ॥३१॥

कुछ समय बाद श्री दामोदर भक्त ने श्री वल्लभाचार्य को वह विग्रह और ताम्रपत्र की लिपि का दर्शन कराया और उन्होंने उसका सुस्पष्ट अर्थ समझा दिया।

श्री वल्लभाचार्याय द्वारकाधीश प्राप्तिः -

हृष्टो दामोदरः प्राह गृह्यतां विग्रहो विभोः।
तद्दिनात्वल्लभार्येण पूजितोऽभून्महीतले ॥३२॥

श्री दामोदर ने प्रसन्न होकर वह विग्रह श्री वल्लभाचार्य जी को दिया और वे वल्लभ पूज्य बने।

अडेलाख्ये सुसंस्थाने वल्लभार्यस्य सन्निधौ।
प्रेषयामास वित्तं स्वं विग्रहं च नरोत्तमः ॥३३॥

अडैल नामक स्थान में बहुत सा धन भी उसने भेज दिया था।

श्रीविट्ठलेशकर्तृकं पूजनम्-

श्री वल्लभार्य - पुत्रेण विट्ठलेशेन धीमता।
पूजितो द्वारकाधीशो गोकुले प्रेमपूर्वकम् ॥३४॥

श्री वल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी ने कुछ समय द्वारकाधीश की पूजा व्रज गोकुल में भी की थी।

5350

गो० श्रीबालकृष्णाय प्राप्तिः –

तत्पुत्र - बालकृष्णेन तृतीयेन सुधीमता ।
सेवितो द्वारकाधीशः पुष्टि - सेवापथेन च ॥३५॥

श्री विट्ठलनाथ जी के तृतीय पुत्र श्री बाल कृष्णजी ने पुष्टि सेवा पद्धति से द्वारकाधीश जी की सेवा की ।

सम्प्रति काँकरौली गृहे द्वारकाधीशपूजनम्–

अम्बरीष - प्रदत्तेन विग्रहेण विराजते ।
अधुना काँकरौलीति-नगरे द्वारकापतिः ॥३६॥

आजकल वह विग्रह तृतीय पीठ के अधिपति कांकरौली नरेश के भवन में विद्यमान है ।

श्रीद्वारिकाधीशस्यद्विधा प्रकाशः –

द्विधा प्रकाशः संजातः व्रजलोभेन तत्र ह ।
गतो ह्येकेन पाताले सर्वैरपरिलक्षितः ॥३७॥

यहाँ एक घटना घट गयी कि भगवान् का प्रकाश दो रूपों में विभक्त हो गया । व्रजवास के लोभ से एक तो पाताल में प्रविष्ट हो गया, जिसे किसी ने न देखा और एक काँकरौली ही रहा ।

लश्कर (ग्वालियर) स्थाने प्रादुर्भाव:

कालान्तरे लश्करे वै पारीखेण महात्मना ।
उपलब्धः स देवस्य पातालस्थः सुविग्रहः ॥३८॥

कालान्तर में लश्कर ग्वालियर में पातालस्थ विग्रह खुदाई में प्राप्त हुआ और ब्रज में पुनः आगया है जो मथुरा में द्वारकाधीशजी के मन्दिर में विद्यमान है ।

इति श्री पं० श्रीवर शास्त्रिचतुर्वेद सूनु श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचिते श्रीद्वारकाधीश महाकाव्ये श्रीद्वारकाधीशवृत्त वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः

श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्रीद्वारकाधीश महाकाव्य में द्वितीय सर्ग पूर्ण हुआ ।

अथ तृतीयः सर्गः

पारिख वर्णनम्-

वैक्रम्यामूनविंश्यां हि शताब्द्यां पुनरेव च ।
प्रकाशं चापरं यस्मै दर्शयामास माधवः ॥ १ ॥

तस्य गोकुलदासस्य पारीखस्य महामतेः ।
चरितं वर्ण्यते पापापहारि पुण्यवर्धनम् ॥ २ ॥

विक्रम सम्वत् की उन्नीसवीं शती में जो द्वितीय विग्रह माधव ने गोकुलदास पारीख को दिखलाया उसका पापापहारी पुण्यवर्धन चरित्र वर्णित किया जाता है—

मथुरामागतो देवः स्थापितो यमुना तटे ।
पारिखेणाप्तकामेन गोकुलेन सुधीमता ॥ ३ ॥

किस प्रकार भगवान् द्वारकाधीश मथुरा में आकर यमुना तट पर विराजमान हुए और क्यों ? यह भी वर्णन किया जाता है ।

गोकुलदासपारिखस्यपरिचयः -

भारते पश्चिमे प्रान्ते विद्यते वटपत्तनम् ।
तत्समीपे सुविख्याते ग्रामे "सीनौर" संज्ञके ॥ ४ ॥

भारतवर्ष में पश्चिम की ओर एक बड़ौदा नामक नगर है उसके अन्तर्गत "सीनौर" नामक ग्राम है ।

नागर - वैश्य - सीनौरा - गृहे जातः स गोकुलः ।
पारीख इति नाम्नात्रप्राप ख्यातिमनुत्तमाम् ॥ ५ ॥

सीनौर ग्राम में नागर वैश्य के घर में गोकुल का जन्म हुआ जो पारीख के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

दरिद्रस्तत्पिता चासीत् दरिद्रश्च पितामहः ।
मातामहस्तथैवासीत् तेन गोकुल दुःखितः ।। ६ ।।

गोकुल के पिता-पितामह तो दरिद्र थे नाना भी दरिद्र थे अतः वे बड़े दुःखी थे ।

दारिद्र्य वर्णनम्-

दरिद्रता मान विमर्दिनी वै, गीता सुधीभिर्विविधैः प्रकारैः ।
तस्या हि हेतोर्गुणिनो रुदन्ति, कृतावमाना धनिनां समाजे ।।७।।

दरिद्रता मान का नाश करती है विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से इसका वर्णन किया है, दरिद्रता के कारण गुणी लोग रोते हैं धनिकों के समाज में अपमान सहते हैं ।

दरिद्रापमान वर्णनम्-

देशे विदेशे निजवंश-मध्ये, स्वबान्धवानां सुहृदां समाजे ।
दृष्ट्वा दरिद्रं धनिकाः सगर्वा, गर्हां प्रकुर्वन्ति सदैव लोके ।।८।।

देश-विदेश तथा परिवार में समाज में धनी लोग दरिद्र को अपमानित करते हैं ।

गच्छन्ति गेहे न कदापि तस्य, विवाह-चूड़ादिषु मङ्गलेषु ।
नाश्नन्ति तद्दत्तमहो सुभोज्यं,तिष्ठन्ति नो सार्धमनेन किंचित् ।६।

उत्सवों में दरिद्र के घर भी नहीं जाते, न उसके घर के वैवाहिक संस्कार आदि में जाते हैं न उसके घर भोजन करते हैं और तो क्या उसके साथ दो घड़ी रुककर बात भी ढंग से नहीं करते ।

सम्मील्य नेत्रे निगदन्ति सभ्या, दरिद्रमालोक्य गृहे च मार्गे ।
चौरोऽयमस्यास्ति च जीविकापि,पापात्मिका गौरवनाशिका च ।१०।

अपने को सभ्य कहे जाने वाले लोग दरिद्र को जहाँ भी देखते हैं नेत्र बन्द कर उसे चोर बतलाते हैं और उसकी जीविका को भी पाप पूर्ण गौरव नाशिनी बतलाते हैं ।

श्री गोकुलोऽपि प्रभुताविहीनो–
विलज्जितोऽभून्नगरे स्वकीये ।
दृष्ट्वा परीभावमथ स्व मातु–
र्विचिन्तयामास दिवाऽपि रात्रौ ॥११॥

श्री गोकुल अपने स्थान में इस दरिद्रता से बड़े दुःखित थे अपनी माता की दशा देखकर दिन रात सोच किया करते थे ।

हा दैव ! हा दीन - जनानुकम्पिन् !
हा सर्व - सौख्यप्रद ! गर्व - भक्षिन् ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्य - लोके
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१२॥

हा दैव ! हा दीन जनों पर कृपाकारी ! हा समस्त सौख्यदायी ! हा गर्वापहारी ! दरिद्र तो मनुष्य लोक में जीवित ही मरे हुए मनुष्य रूप में पशु ही हैं ।

ये दानशीला, न च धर्म - निष्ठा
विद्या - विहीनास्तपसापि शून्याः
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्य - लोके
मनुष्यरूपा पशवः प्रगीताः ॥१३॥

वास्तव में जो न तो दान करने में समर्थ हैं न धार्मिक ही हैं विद्या विहीन तथा तपस्या शून्य हैं वे जीवित ही मृत हैं तथा पशु तुल्य हैं ।

येषां गृहे नोऽतिथयो वसन्ति,
भोज्यान्नपानादिक - वस्त्वभावात् ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्यलोके
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१४॥

अभाव के कारण जिनके घर कभी अतिथि प्रसाद नहीं पाते वे जीवित ही मृत पशु तुल्य हैं ।

ये पुण्यतीर्थाटन - धर्म - शून्या -
गो - विप्र - पादोदक - भाव - हीनाः ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्य - लोके,
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१५॥

जो कभी पुण्य तीर्थों का दर्शन नहीं कर पाते, धर्म शून्य हैं, गो-विप्र चरणोदक महत्व को भी नहीं जानते वे जीवित मृत हैं, पशु तुल्य हैं।

ये वञ्चयन्ति प्रभु वंश्यबालान्
दाराननाथानथ बन्धुवर्गान् ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्यलोके
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१६॥

जो अपने ही स्वामी की संतानों को ठगते हैं, स्त्री-अनाथ बन्धुवर्ग को ठगते हैं, वे जीवित ही मृत हैं, पशु तुल्य हैं।

ये स्वोदरार्थं वितथं वदन्ति,
द्रुह्यन्ति ये गौरवशीलितेभ्यः ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्यंलोके,
मनुष्यारूपापशवः प्रगीताः ॥१७॥

जो अपने उदर हेतु मिथ्या भाषण करते हैं, गौरव योग्यों से द्रोह करते हैं वे जीवित ही मृत हैं, पशु तुल्य हैं।

खादन्ति दुग्धाज्यमयान् पदार्थान्
दारान्सुतानात्मजनान्विहाय ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्यलोके,
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१८॥

जो अपने आश्रित स्त्री-पुत्र तथा आत्मीय जनों का परित्याग कर स्वयं दुग्ध, अन्न, मोदक आदि खाते हैं, वे जीवित मृत हैं पशु तुल्य ही हैं।

पश्यन्ति ये दग्ध - मुखा गुरूणां,
बुभुक्षया क्षीण - तनुं तथाऽऽस्यम् ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्यलोके,
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥१९॥

जो अपने माता-पिता के भूख से व्याकुल वदन को देखते हैं, वे दग्ध मुख जीवित ही मृत हैं, पशु तुल्य हैं।

ये वात्मजानन्न - पदार्थकामान्-
संवीक्ष्य नो यान्ति हि दुःखमीषत् ।
जीवन्मृतास्ते ननु मर्त्य - लोके
मनुष्यरूपापशवः प्रगीताः ॥२०॥

जो अपने भूख से तड़पते हुए शिशुओं को देखकर भी थोड़ा दुःख नहीं लाते, वे जीवित मृत हैं, पशु तुल्य हैं।

स्वर्गो दरिद्रस्य हि वित्तलाभः,
पुण्यं दरिद्रस्य हि वित्तलाभः ।
हर्षो दरिद्रस्य हि वित्तलाभः,
ऐश्वर्यवत्वं ननु वित्तलाभः ॥२१॥

दरिद्र को धन प्राप्ति ही स्वर्ग लाभ है, वही पुण्य है, वही हर्ष है, वही ऐश्वर्य है।

धनहीनस्य दुर्दशा-

दैन्यं च शोकश्च भयञ्च रोगा -
वैरं च कोपश्च तिरस्क्रिया च ।
गर्वश्च मानश्च कुतूहलञ्च
दलन्ति नित्यं धनहीन - जीवम् ॥२२॥

धनहीन प्राणी को—दैन्य-शोक-भय-रोग-वैर-क्रोध-अपमान, गर्व-मान कुतूहल पीड़ित करते रहते हैं।

श्री गोकुलार्यस्य दशां विचित्रां-
विलोक्य दारिद्र्यमहो रुरोद ।
कदापि शाकेन विनापि नूनं-
भोज्यं बिनाऽह्नानि गतानि तस्य ।।२३।।

श्री गोकुल की दशा को देखकर दरिद्रता भी रोने लगी थी। कभी शाक से ही दिन निकलते, कभी बिना भोजन के दिन व्यतीत होते थे।

गोकुलस्यपाकशालाप्रवेश: –

दिनेषु गच्छत्सु च वैष्णवोऽयं,
सायंतने यातृक सन्निधाने ।
जगाम भोक्तुं त्वथपाकशालां-
मास्वाद्य भोज्यं लवणं ययाचे ।।२४।।

कुछ दिवस पश्चात् वैष्णव "गोकुल" भौजाई के पास चौका में भोजन करने गये और वहाँ थोड़ा नमक मांगा।

भ्रातृजायाया: व्यङ्ग्यवर्णनम्--

तद्भ्रातृजाया च विहस्य चित्ते
वक्रं निजास्यं भृकुटिं विधाय ।
गन्त्री त्वया लावणिकीह दत्ता
याचस्व मा लक्षपते ! बभाषे ।।२५।।

तब भौजाई [भाई की पत्नी] ने हंसकर और थोड़ी भृकुटि टेढ़ी कर टेढ़े मुख से कहा कि "नमक की गाड़ी तूने रख दी है क्या ? जो नमक-नमक मांगता है" लखपति ! अब न मांगना, नमक क्या यहां रखा है।

गोकुलस्य वनगमन वर्णनम् –

स वाक्प्रहारैरतिदारुणैश्च-
भिन्नो भृशं वाष्प विरुद्ध - कण्ठ: ।

स्खलद्वचस्तप्तमुखो बभाषे
ह्यादाय गन्त्रीं लवणस्य भोक्ष्ये ।।२६।।

दारुण वाक्वज्र के प्रहार से भिद गया, गलाभर आया, वाणी कांपने लगी लाल मुख हो गया और भोजन छोड़कर बोला कि भाभी ! अब तो नमक की गाड़ी लाऊँगा तभी भोजन करूँगा ।

अन्नं नमस्कृत्य च पाकशाला-
द्वारं समुद्घाट्य जवेन खिन्नः ।
बुभुक्षितोऽपि प्रभुपादसेवी,
गतेऽस्तमर्के विपिने विवेश ।।२७।।

अन्न को प्रणाम करके, द्वार खोलकर, वड़े वेग से, भूखा ही चल दिया और सूर्यास्त तक एक घोर वन में पहुँच गया ।

वनेपशुदर्शनम्-

अत्युत्कटान्नाजगरानहींश्च-
श्वासानिलेनाशुविकर्षतस्तान् ।
गजेन्द्रवर्यानथभल्लुकादीन्
विनिःसृतानुद्गिरतो ददर्श ।।२८।।

वन में उसने बड़े-बड़े अजगर सर्पों को देखा जो अपनी श्वास से हाथी और भालुओं को भी मुख की ओर खींच रहे थे और मुख में से निकाल रहे थे ।

हुडुक् हुडुक् हू हुहु हूहु संज्ञान्,
रात्रिञ्चराणां च यथैव घोषान् ।
नीडान्तराले च तथैव घुग्घू,
शुश्राव घूकालिमुखोद्गतांस्तान् ।।२६।।

हुडुक् हुडुक् हू हू हू हू करने वाले रात्रिचर जीवों की आवाज सुनता और नीड में वैठे पक्षियों के घुग्घू घुग्घू ध्वनि को सुनता ।

सिंहांस्तरक्षू[1] निभ[2] - गण्डकांश्च[3]
गोमायुकान्[4]-कासर[5]-कोक[6]-रामान्[7] ।
गोधारकानुन्दुरू[8][9] कन्दकाँश्च[10]
विलोकयामास पशूनरण्ये ॥३०॥

कभी मार्ग में सिंह-चीता-हाथी गैंडे, शृगाल, वनभैंसे, वातचारी, मृग हरिण, विष खोपड़ा, मूषक, विडालों को देखता था ।

गोकुलस्य शयन वर्णनम्–

क्वचिद्वनान्ते तरुखण्डनोच्चै–
रम्भादलैरावृतमण्डपे वै ।
विधाय शय्यां भयवेपितोऽपि,
निनाय रात्रिं बहुकष्टपूर्वम् ॥३१॥

बड़े कष्ट से कभी वृक्षों की झुरकुट में, कदली खम्भों के नीचे पत्तों की शय्या सी बनाकर, भय से काँपता हुआ भी रात्रि व्यतीत कर देता था ।

प्रातः समुत्थाय निवर्त्य शौचं,
शैलं समारुह्य ददर्श धीरः ।
किञ्चिद्विदूरे बहुपक्षि संघं
सूड्डीयमानं गगने सहर्षम् ॥३२॥

एकबार प्रातःकाल शौचादि क्रिया से निवृत होकर पर्वत शिखर पर चढ़ गया । वहाँ से उसने सैकड़ों पक्षियों को आकाश में आनन्द से उड़ते देखा ।

बलाकां रथाङ्गाह्वयं पुष्कराह्वं,
सुशब्दायमानं तडागान्तिके वै,

---

१. चीता २. हाथी ३. गैंडा ४. शृगाल ५. वनभैंसा ६. वातचारी मृग ७. हरिण ८. विषखोपड़ा ९. मूषक १०. विडाल ।

विलोक्यातिहृष्टेन - चित्तेन भूयो,
जगामाशु द्रष्टुं महर्षेः प्रभावम् ।।३३।।

बगुली, चकवा, आदि पक्षी ध्वनि करते एक तड़ाग के पास स्थित हैं उन्हें देख कर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक महर्षि का आश्रम होना चाहिये सोचकर, शीघ्र चल दिया।

आश्रमे गमनम्–

मयूरीयुतं - बर्हिणं मेघमित्रं–
शिखां चालयन्तं रटन्तं च केकां।
वने लास्ययुक्तं सपिच्छं समोदं,
सुपश्यन् मुनेराश्रमं प्राप शीघ्रम् ।।३४।।

वन में मयूरी युत मयूर को नाचते देखकर, उनकी मधुर आवाज सुनता हुआ मुनि के आश्रम में पहुँच गया।

मुनिवन्दनम्–

ननाम शान्तं मुनिमप्रमेयं,
दण्डाग्रहस्तं जरठं महान्तम्।
व्याघ्राम्बराधिष्ठित विग्रहं तं–
रुद्राक्षमाला - विलसत्कराग्रम् ।।३५।।

व्याघ्र चर्म पर वहाँ विराजमान–रुद्राक्ष माला लिये दण्ड हाथ में लिये वृद्ध महात्मा के दर्शन किये और शान्त स्वरूप मुनि को प्रणाम किया।

देवाधिदेवैरपि वन्दितस्त्वं,
दैत्याधिपैः स्वीकृत - पुण्यकस्त्वं।
अतोऽसि मे दुष्कृतमेवहन्तुं,
स्वयं प्रभुः स्वीकुरु मां स्वदास्ये ।।३६।।

कहा····मुनिराज ! आप देवाधिदेवों से भी पूजनीय हो, दैत्यों द्वारा भी सम्मान्य हो, मेरे दुष्कृतों को दूर करने में समर्थ हो, मुझे अपना सेवक बनाइये।

वने जले पर्वत - कन्दरासु,
व्याघ्रोदरे नक्रमुखान्तराले,
प्राणान् निजाँस्त्यक्तुमिहागतोऽहं–
त्रायस्व मां दर्शय सौम्य ! मार्गम् ॥३७॥

प्रभो ! मैं वन में जल में पर्वत कन्दरा में व्याघ्र मुख में या मकर के मुख में प्राण त्यागने के विचार से आया हूँ मेरी रक्षा करो, मुझे मार्ग बतलाइये ।

श्रुत्वार्तिखिन्नस्य वचो मनस्वी–
प्रोवाच वाचं सुधया विमिश्राँ ।
भयं न भो ! मा च विमूढ़ - भावं,
कुरुष्व चित्ते विमले स्वकीये ॥३८॥

वह मुनि गोकुलदास के वचनों को सुनकर अमृत वाणी में बोले—भद्र ! भय मत करो और कुभाव में मत फंसो ।

मुनिद्वारावरप्राप्तिः –

प्रवर्तितेऽस्मिन् परिवत्सरे वै
व्यापार कार्ये धनिकेन सार्धम् ।
गमिष्यसि त्वं भवितासि राजा
रक्षिष्यसि त्वं निजबन्धुवर्गम् ॥३९॥

इसी वर्ष तुम्हारी भेंट एक धनी व्यापारी से होगी और उसके सहयोग के कारण राजा जैसे वैभव वाले हो जाओगे । अपने बान्धवों की भी रक्षा करोगे ।

निशम्य चेत्थं सु वर - प्रदानं
पपात हर्षेण मुनेः समक्षं ।
शनैरथोत्थाय प्रणम्य पादौ
जयेति वाचं विससर्ज भूयः ॥४०॥

अमृतवाणी को सुनकर मुनि के चरणों में गोकुल पारिख गिर गये और उठकर मुनि की जय हो बोलने लगे।

नगर वास वर्णनम्-

मुनिवर वचसा वै स्वात्म दैन्यं विमुञ्चन्
करिवर - गहनं तत् काननं त्यक्तुकामः।
गिरिवर - निकटस्थे - पत्तने सज्जनानां
धनिकवर - विभूनां प्रेष्ठबन्धुर्बभूव ॥४१॥

मुनि के वचनों से भय त्यागकर, दीनता त्यागकर, हाथियों से गहन वन को त्यागने की इच्छा से पर्वत के समीप नगर में आया और धनिकों से उसकी मित्रता होने लगी।

श्री १०८ श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचिते श्रीद्वारकाधीश महाकाव्ये पारिखवर प्राप्तिवर्णनंनाम तृतीयः सर्गः

श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्रीद्वारकाधीश महाकाव्य में तृतीय सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ चतुर्थः सर्गः

पारिख व्यापार वर्णनम्-

इतस्ततो भ्रमन् भक्तः पारिखोगोकुलाभिधः ।
कृपणस्य गृहं प्राप्य कंचित्कालमुवास सः ।। १ ।।

पारिख गोकुल इधर उधर भटकते एक कृपण के घर पहुँचे और कुछ दिन वहाँ रहे ।

(बड़ौदा) नगरे कृपणस्यसङ्गतिः -

बभूव कश्चिद् वट - पत्तनान्तिके -
धनाढ्य - वंशे कृपणः कुबुद्धिमान् ।
विनाशितं येन परम्परागतं
धनं स्वकीयञ्च चरित्र - कारणात् ।। २ ।।

बड़ौदा के समीप धनाढ्य वंश में एक भारी कृपण और बुरी बुद्धि वाला व्यक्ति था उसने अपने चरित्र के कारण समस्त धन नष्ट कर दिया था ।

ततोऽर्जितं धनं भूरि क्रय-विक्रय कर्मणा ।
कालान्तरे कुभावेन धान्यानां विक्रयेण च ।। ३ ।।

तब उसने क्रय-विक्रय द्वारा धान्य विक्रय करके पर्याप्त धन संग्रह कर लिया ।

धान्य मिश्रणम्-

एकदा भृत्यकान् सर्वान् समाहूय निकेतने ।
बोधयामास ब्रीहीणां मिश्रणोपायसद्विधिम् ।। ४ ।।

एक दिन उसने अपने सेवकों को बुलाया और उनको मिलावट करने की विधि समझाई ।

मुद्ग-कोद्रव-गोधूम-कुलत्थक-प्रियं गुकान् ।
धान्यादिकं च संगृह्य धनाढ्यस्तुततोऽभवत् ।। ५ ।।

वह मिलावट करके विभिन्न धान्यों से मूंग-जौ-गेंहूँ आदि से ही धनवान् हो गया।

दीर्घशूकेषु[1] तोक्यानां[2] कलायानां च कोद्रवे ।
वनमुद्गे मसूराणां मेलनञ्चाकरोद् भृशम् ।। ६ ।।

जौ में हरे जौ मिलाता, कोद्रव में कलाय मिलाता और वनमूंग में मसूर मिलवाता।

हरिमन्थक[3] चूर्णे तु कृत्वा कुलमाष-चूर्णकम् ।
विक्रयामास नित्यं हि धनलोभी महाजनः ।। ७ ।।

चना के चूर्ण में कुल्माष का चूर्ण मिलवाता और धनलोभी उनका विक्रय करता।

प्रियंगून्[1] तिल पिञ्जेषु[2] मातुलानो[3]मुमां[4] तथा ।
आसुरीं[5] शस्यशूकंञ्च[6] मेलयत्वाऽऽप वित्तकम् ।। ८ ।।

स्नेह रहित तिल में ककुनी मिलाता, सन की खेती में अलसी मिलाता, राई में ढूंड़ मिलाता।

कडङ्गरं[7] न तत्याज व्यर्थं धान्यत्वचं[8] तथा।
पलालेन[9] च मेधावी ममावास्तरणादिकम् ।। ९ ।।

वह भुस भी न छोड़ता भुसी भी काम में लेता, पयार से आसन (विछौने) बनवाता।

उलूखलमयोग्रं[10] च प्रस्फोटन[11]मथापि च।
तितउः[12] स्यूत[13]पिण्डंच[14]साधनानि कुकृत्यके ।।१०।।

---

१. जौ २. हरे जौ ३. चना।

१. ककुनी २. स्नेह रहित तिल ३. भांग [सन की खेती के भेद] ४. अलसी ५. राई ६. ढूंड़ ७. बुस ८. भुसी ९. पयार १०. मूसल ११. सूप १२. चालनी १३. थैला १४. डलिया।

इस कुकृत्य में मूसल-सूप-चालनी-थैला और डलिया साधन होते थे। इनसे वह सारा कार्य मिलावट का करता था।

अधर्मेण दुर्दशा-

कुकृत्यैश्च धनी जातो वाहनैश्च सुसज्जितः।
अपमानं परं प्राप्य काले जातः स निर्धनः ॥११॥

इस कुकृत्य से यद्यपि धन प्राप्त कर लिया था, वाहन हो गये थे, परन्तु अपमान मिला और कालान्तर में फिर निर्धन हो गया।

अन्यायेनार्जितं द्रव्यं मृगतृष्णेव शोभते।
कालान्तरे क्षयं याति सञ्चयश्च विनश्यति ॥१२॥

अन्याय से अर्जित द्रव्य मृग तृष्ण की भाँति आता है कालान्तर में वह क्षीण होता है और ऐसा संचय करने वाला नष्ट हो जाता है।

पारिखस्य वार्ता-

एकदा पर्यटन् हट्टेऽपश्यद् गोकुलपारिखम्।
वार्तालापेन विज्ञातः निर्धनोऽयं कुमारकः ॥१३॥

एक दिन उसकी दृष्टि बाजार में घूमते गोकुलदास पारिख पर पड़ गई और बातचीत करके जान लिया कि यह बालक निर्धन है।

तस्य व्यापारे नियुक्तिः -

समाहूय च तं बालं, स्वकीये वै निकेतने।
भोजयामास चान्नेन शाकेन पयसा तथा ॥१४॥

उसने बालक अपने घर बुलाया और घर में अन्न-शाक-दूध से भोजन कराया।

आत्मानं जरया क्लान्तं व्यापारं बहुविस्तृतम्।
विलोक्यात्मानमस्वस्थमरक्षत् पारिखं गृहे ॥१५॥

अपने शरीर में वृद्धत्व के लक्षण देखकर, अपनी अस्वस्थता देखकर व्यापार को देखकर, पारिख को घर में ही रख लिया ।

पारिखोऽपि महाबुद्धिर्यावद् बुद्धिबलोदयम् ।
रात्रिन्दिवं च व्यापारे कृतवान् कौशलं महत् ।।१६।।

श्री पारिख में जितनी शक्ति थी काम में जुट गये और व्यापार में दिन रात अपनी कुशलता से वृद्धि की ।

पुनः कृपणस्य वृद्धिः –

स्वल्पेनैव च कालेन व्यवहारेण धीमता ।
सञ्चितं सर्वतो वित्तमीश्वराराधनेन च ।।१७।।

थोड़े ही समय में उन्होंने अपने व्यवहार से ईश्वर की आराधना पूर्वक चारों तरफ से धन का संग्रह कर लिया ।

व्यवहारेण विक्षुब्धो गोकुलो दुःखितोऽभवत् ।
त्यक्त्वा तं क्रूरकर्माणम् चकार गमने मतिम् ।।१८।।

परन्तु धनी के व्यवहार से गोकुल क्षुब्ध रहते और एक दिन क्रूर कर्म करने वाले का परित्याग कर अन्यत्र जाने का मन किया ।

कौशलचन्द्र वणिजा समागमः –

कौशलचन्द्र नामैको वणिक् तत्रागतः क्वचित् ।
प्राह सम्वीक्ष्य पारीखं स्वकीयं मनसः प्रियम् ।।१९।।

वहाँ एक कौशल चन्द्र नामक वैश्य आया और पारिख से अपनी बात कही ।

बड़ौदा नगरतो ग्वालियर नगरागमनम्–

गन्तव्यं भो मया सार्धं गोपाचल सुपत्तने ।
सुखितो वस तत्रैव व्यापारार्थं महामते ! ।।२०।।

उसने पारिख से कहा कि मेरे साथ ग्वालियर चलो और वहीं रहो ।

पारिखोऽपि विनिश्चित्य वणिजः क्रूर कर्म च ।
जगाम सहसा तेम साकं गोपाचलं पुनः ॥२१॥

पारिख जी ने व्यापारी के कुकृत्य से ग्वालियर जाना ही उचित समझा ।

मार्गे बहुविधं तस्य पारिखस्य परीक्षणं ।
कृतं कौशलचन्द्रेण वणिजा स्वात्मतुष्टये ॥२२॥

कौशल चन्द्र ने मार्ग में पारिख की बुद्धि की परीक्षा अनेक प्रकार से ली और अत्यन्त सन्तुष्ट हो गया ।

ततः कौशल चन्द्रेण सार्धं ग्वालियरं गतः ।
तत्राप्य नृपतेः प्रीतिं भाग्यवान् भूतलेऽभवत् ॥२३॥

ग्वालियर आकर उसका सम्बन्ध वहाँ के राजा सिन्धिया से हुआ और फिर तो परम भाग्यशाली ही पृथ्वी में हो गया ।

गोपाचले समागत्य कोशलस्य गृहे पुनः ।
स्वकीयां प्रतिभां स्वच्छां वितताम दृढ़व्रतः ॥२४॥

ग्वालियर में कौशलचन्द्र के घर पारिख ने लगन से कार्य किया और अपनी धाक जमाली थी ।

आसूर्योदयमारभ्य प्रत्यहं सविचक्षणः ।
व्यापारमानसस्तुष्टः कृतवान् वित्त-सञ्चयम् ॥२५॥

श्री पारिख सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त व्यापार में लगते और कार्य सम्पन्न करते ।

पारिखस्य दिनचर्या-

प्रातः स्नानादिकं कृत्वा सन्ध्यावन्दनतर्पणम् ।
चकार तिलकं रक्तं कुंकुमेन सुशोभितम् ॥२६॥

प्रातः सन्ध्यावन्दन भी करते, तर्पण करते और रोली का तिलक मस्तक पर लगाते थे । [यह वल्लभ कुल का तिलक था]

उत्तरीयं तथा स्वच्छं धौतवस्त्रं च कञ्चुकम् ।
धारयामास वेत्रं च स्वहस्ते दक्षिणे तथा ।।२७।।

वे धोती दुपट्टा पहिनते कभी कमीज या बगलबन्दी पहिनते हाथ में एक बेंत भी रखते थे ।

ख्यातिवर्णनम्-

शनैः शनैश्च सर्वत्र प्रदेशे प्रज्ञया पुनः ।
विस्तारिता निजा ख्यातिरतो तुष्टोऽभवत् वणिक् ।।२८।।

धीरे-धीरे उनके व्यवहार से सभी प्रसन्न हो गये, कौशल चन्द्र भी प्रसन्न हुए ।

तेन विज्ञापितं लोके पारिखं गोकुलं प्रति ।
सत्यवादी विरक्तश्च धार्मिकोऽयं ममानुजः ।।२९।।

उन्होंने पारिख को अपना ही भाई वतलाना प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि पारिख बड़े सत्य वक्ता-विरक्त और धार्मिक थे ।

वृत्तान्तेन च सर्वत्र प्रतिष्ठा विस्तृताऽभवत् ।
राज्याधिकारिणश्चापि मानं चक्रुः सगौरवम् ।।३०।।

इस प्रसिद्धि से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और राज अधिकारी भी उनका मान करने लगे ।

गृहस्मरणम्-

एकदा गोकुलो भक्तः स्वचित्तेऽचिन्तयत् गृहं ।
पितरं मातरं भ्रातृ-जायायाश्च दरिद्रताम् ।।३१।।

एक दिन श्री गोकुलदास को अपने दरिद्र माता-पिता और भावज की याद आई ।

दरिद्रत्वं धनाढ्यत्वं द्वयोर्मध्ये यदन्तरम् ।
प्रत्यक्षीकृतमेवात्र पारिखेण महात्मना ।।३२।।

दरिद्र में और धनी में जो अन्तर होता है वह श्री पारिख ने प्रत्यक्ष ही किया था ।

नृपदत्त वैभव वर्णनम्-

भृत्यवर्गं तथा बन्धुवर्गं वीक्ष्य महामतिः ।
नाना विधां समृद्धिञ्च प्रतिष्ठां च विलक्षणाम् ॥३३॥

यहाँ वे नौकर चाकरों से घिरे रहते अनेक समृद्धियों और विलक्षण प्रतिष्ठा से युक्त थे ।

अश्वयानं च गोयानं - नरयानं तथैव च ।
गन्त्रीयानं सुसम्पन्नं वाष्पयानं सकौतुकम् ॥३४॥

उनके पास क्या नहीं था—इक्का, तांगे, बैलगाड़ी, पालकी और अन्य वग्गियाँ मोटरें भी आगईं थीं ।

दीपावलिरनेकत्र दृश्यते काच - भाजनैः ।
भ्राजमानं निकेतं वै स्वर्ण-निर्मित-कोष्ठकैः ॥३५॥

घर में इतना प्रकाश काँच के पात्रों में लटकाये जाने पर होता मानों दीपावली हो, स्वर्ण से सारा कक्ष भरा रहता था क्योंकि सभी वस्तुओं में सोंना लगा रहता था ।

कांचन-निर्मितां स्थालीं पान पात्रं च राजतम् ।
दृष्ट्वा खिन्नोऽभवत्पूर्वां दशां स्मृत्वा पुनः पुनः ॥३६॥

सोने की थाली, चाँदी की पीकदानी आदि को देखकर और अपने घर की दशा को देखकर पारिख खिन्न हो गये ।

स्वकीयोपार्जितं द्रव्यं स्वजनेषु विभज्य च ।
उपयुंक्ते नरोधन्यः स्वयंभुक् न कदाचन ॥३७॥

वे विचारने लगे कि जो व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित धन से स्वजनों का भी भरण-पोषण करताहै वह धन्य है, जो स्वयं ही उपभोग करता है वह अधम है ।

यदा गृही स्वयं भुङ्क्ते तिरस्कृत्य स्वबान्धवान् ।
पतति नरके घोरे प्रमाणं वचनं मनोः ॥३८॥

जब गृहपति समस्त बान्धवों को अपमानित कर स्वयं ही सब वस्तुओं का उपभोग करता है तो घोर नरक में पड़ता है, यह मनु का कथन है।

एवमेव दरिद्रोऽपि धनाढ्यो जायते यदा ।
तदा कर्तव्यमेवं हि स्वीयानां पोषणं सदा ॥३९॥

जब दरिद्री धनवान् होता है तो उसे अपनों का पोषण ही करना चाहिये।

स्वकीय दशा चिन्तनम्–

पूर्वं मम गृहे नित्यं दुःखिताश्च सुहृज्जनाः ।
आसन् सर्वेऽपि दीनार्ताः पार्श्ववर्ति जना अपि ॥४०॥

मेरे घर के सभी लोग दुःखित रहते, पार-पड़ौसी भी दरिद्र थे।

शाकेन लवणेनापि भोजनं च कृतं गृहे ।
अधुना विस्मृतं सर्वं सुखं प्राप्य मयाऽत्र वै ॥४१॥

कभी घर में शाक से, कभी केवल नमक से भोजन होते थे अब यहाँ सुख प्राप्त कर मैं सबको भूल गया हूं ।

विस्मृतं मुनिवर्यस्य वरदातुः सुमेधसः ।
वन्दनं चरणानां च तातानां चैव नित्यशः ॥४२॥

मैंने वरदान देने वाले मुनि को भी भुला दिया है, जिनकी कृपा से आज राजसी वैभव में हूँ, पूज्य पितृ चरण भी भुला दिये।

लवण गन्त्री प्रेषणचिन्ता–

अतोऽहं प्रथमं गेहे यातुरेव हि सन्निधौ ।
लवणं प्रेषयिष्यामि यया दत्ता धनाढ्यता ॥४३॥

पहले अपनी भौजाई के लिये नमक की गाड़ी भरकर भेजूँगा जिसके वचनों से यह धनाढ्यता मुझे मिली है।

भृत्यानाहूय तत्रैव ज्ञापयामास पारिखः ।
सैन्धवस्य च सज्जन्तां शकटीश्च सहस्रशः ।।४४।।

श्री गोकुल ने सैकड़ों सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी कि नमक की गाड़ी तैयार करो।

लवण प्रेषणम्-

कौतूहलावृतास्तत्र शतशश्चागमन्नराः ।
ज्ञातं वृत्तं न केनापि लवण प्रेषणात्मकम् ।।४५।।

सहस्रों जन एकत्रित हो गये, गाड़ी भरी गई पर ये क्यों किया जा रहा है किसी को ज्ञात नहीं था।

सैन्धवापूरितहट्टं कृतं तत्र सुसेवकैः ।
शकटीभिश्च तत्सर्वं प्रेषितं स्वनिकेतने ।।४६।।

समस्त वाजार नमक की गाड़ियों से भर गया था, फिर उसको अपने घर भिजवाया।

पारिखेनाऽऽप्तकामेन सम्प्रेषिता
सैन्धवी गन्त्रिका प्रत्यहं कौतुकात् ।
भ्रातृगेहे ततो ग्राममध्ये पुन-
र्नावकाशोऽभवद्वस्तु संस्थापने ।।४७।।

इतना ही नहीं नमक की गाड़ी प्रतिदिन इसी प्रकार भेजी गईं जिनसे समस्त गाँव ही भर गया।

भ्रातृजाया च पप्रच्छ तान् सेवकान्
कुत्र नो गोकुलाख्योधनी देवरः ।
सैन्धवस्यास्य राशेश्च वाणिज्यकं
सोऽत्र नूनं करिष्यत्यहो सद्वरः ।।४८।।

श्री गोकुल की भौजाई ने अपने देवर के विषय में पूछा क्या यहाँ वह नमक का व्यापार करेगा।

ऊचुरन्ये जना नैव विज्ञायते,
हेतुरस्त्यत्र को नैव विद्मो वयम्।
सन्ति गोपाचले दान-धर्मे रता-
विप्रदेवादि - पूजा - परा निर्भयम् ।।४६।।

अन्य मनुष्यों ने कहा कि हमें भी पता नहीं इस नमक का यहाँ क्या किया जायगा । श्रीपारिख जी तो ग्वालियर में दान, धर्म में रत, विप्र पूजा में निर्भय होकर रम रहे हैं।

सो हि जातो नृपो यः प्रजा पोषको-
यस्य राज्ये 'न' दुर्भिक्ष-दारिद्र्यकम्।
पूज्य-दाराः शिशु - प्रौढ़ - विज्ञा जनाः
संवसन्ति प्रसन्नाः बिनाशोककम् ।।५०।।

राजा तो वही जो प्रजा को सुखी रखे जिसके राज्य में दुर्भिक्ष न होवे, न दरिद्रता होवे, बिना किसी शोक-कष्ट के स्त्री-वालक और प्रौढ़ जन सुख से रहें।

तेन जातेन किं यः सदा किल्बिषी
तस्य पुण्येन किं यः परद्विट् सदा।
तस्य दानेन किं पीडयेत् यो जनान्
तस्य शीलेन किं कामशीलो यदा ।।५१।।

पापी के जन्म का लाभ क्या? परद्रोही के पुण्य का प्रयोजन भी क्या? दूसरों को दुःख देने वाले के दान का क्या? कामी के शील का क्या? अर्थात् व्यर्थ हैं।

यस्य गेहे सुता - पुत्र - भार्याः पिता
बान्धवाश्चापि कर्तव्यनिष्ठापराः।

तस्य धर्मार्थ-कामाश्च भृत्या: स्वयं
संभवन्ति प्रसन्ना जगद्रक्षका: ।।५२।।

जिसके घर में पुत्री-पुत्र-पत्नी-पिता और बान्धव अपने-अपने कर्तव्य में रत रहते हैं, उसके धन-अर्थ-काम वश होते हैं और जगत् रक्षक भी प्रसन्न होते हैं ।

यस्य तेज: - प्रभावादरिश्चिन्तितो
जायते प्रत्यहं बान्धवै: संयुत: ।
यस्य मित्राणि विश्वासपूर्णान्यहो
तस्य जीवस्य पुण्यं सुरै: संस्तुतम् ।।५३।।

जिसके प्रताप शौर्य के कारण शत्रु भयभीत रहता है, जिसके विश्वासी मित्र हैं, उसके पुण्य की देवगण भी सराहना करते हैं ।

यो गुरो: सेवको यो बुधै: संयुतो–
यो गुणज्ञैर्वृतो ह्यास्तिको सन्मति: ।
यस्य पुत्रो वशी यस्य भार्या प्रिया
अर्थदात्री च विद्या स्वयं सत्पति: ।।५४।।

जो बड़ों की सेवा करता है, विद्वानों की संगति करता है, धर्म बुद्धि वाला है और जिसका पुत्र आज्ञाकारी, प्रिया भार्या है और अर्थदात्री विद्या है, वहीं सुखी है ।

तां प्रणम्य च ते सर्वे प्रोचुरञ्जलिमस्तका: ।
आगमिष्यति न: स्वामी कथयिष्यति कारणम् ।।५५।।

भावज को प्रणाम करके हाथ जोड़कर सेवकों ने कहा कि हमारे स्वामी आवेंगे वे इसका कारण समझावेंगे ।

ग्रामे कोलाहलो जातो मण्डले च भृशं तत: ।
विस्मिताश्चाभवन् सर्वे दृष्ट्वा सैन्धव-पर्वतम् ।।५६।।

ग्राम में फिर नगर में कोलाहल मच गया और नमक के पहाड़ को देखकर लोग विस्मय में पड़ गये ।

गोकुलस्यगृहत्यागकारणम्–

वृद्धोऽवदत् विशालाक्षः श्रृणुध्वं ग्रामवासिनः ।
अस्त्यत्रकारणं स्पष्टं कथयामि सुखावहम् ।।५७।।

एक विशाल लोचन ग्रामवासी वृद्ध कहने लगा—सुनो इस नमक का कारण मैं कहता हूँ ।

एकदा पाकशालायां भोजनार्थं समागतः ।
पारिखः सैन्धवाकांक्षी भर्त्सितो भ्रातृजायया ।।५८।।

एकबार पारिख गोकुल भोजन कर रहे थे, उन्होंने भावज से नमक मांगा, भाभी ने उसको डांट लगा दी थी ।

न त्वया लवणानां च शकटीः स्थापिता इह ।
'लवणं' लवणं येन प्रत्यहं याच्यते मुदा ।।५९।।

यह भी कहा – कि तूने यहाँ नमक की गाड़ी रख दी हैं क्या ? जो प्रतिदिन नमक मांगता हैं ।

भोज्यान्नं च नमस्कृत्य परित्यज्य स्वकं गृहम् ।
पारिखो निर्गतो गेहात् वाक्शरैर्भिन्न मानसः ।।६०।।

श्रीपारिख अन्न को नमस्कार करके, भाभी के वाक्वज्र से पीड़ित होकर घर छोड़कर चला गया ।

पञ्चत्वं च गतौ मातापितरौ तस्य चिन्तया ।
सोऽपि नाद्यावधिर्देश आगतो दैन्यकारणात् ।।६१।।

बूढ़े माता-पिता परलोक चले गये परन्तु दैन्य के कारण पारिख अभी तक लौटकर नहीं आया ।

मन्ये कालान्तरे जाते पारिखेण सुमेधसा ।
धनार्जनं कृतं क्वापि सत्यमेव न संशयः ।।६२।।

ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धिमान् श्रीपारिख ने अवश्य धनार्जन किया है ।

यातुरुक्तेन वाक्येन खिन्न चित्तेन धीमता ।
सैन्धवाऽऽपूरिता गन्त्री प्रेषिता ननु ज्ञायते ॥६३॥

और ऐसा मेरा निश्चय है कि भाभी के वाक्य से खिन्न चित्त वाले पारिख ने ही यह नमक भिजवाया है।

वृद्धस्य वचनं श्रुत्वा संशयच्छेद - हर्षिताः ।
सत्यं सत्यं वचः प्राहुः शिरश्चालनपूर्वकम् ॥६४॥

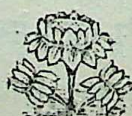
वृद्ध के वचन सुनकर उपस्थित सभी सज्जन—'सत्य है सत्य है' ऐसा कहने लगे ।

इति बहुविधिवाक्यैस्तुष्ट - चित्ता जना वै
प्रियवर-निजबन्धोर्भाग्य वृद्धौ प्रसन्नाः ।
कविवर - मुख - गीतैरप्यगम्या सदा या
विलसति भुवि-मध्ये वन्दिता सा विचित्रा ॥६५॥

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से लोग उस वृत्तान्त से संतुष्ट हुए और अपने ग्रामवासी के वैभव से प्रसन्न हुए । जिस नियति के माहात्म्य को बड़े-बड़े कवि भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं संसार में विद्यमान वह अवश्य ही विलक्षण है ।

इति पं० श्री श्रीवर जो शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचिते श्रीद्वारकाधीश महाकाव्ये गोकुलदास पारिख-दारिद्र्य पूर्वकं व्यापार वृद्धि वर्णनंनाम
चतुर्थः सर्गः

पं० श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्रीद्वारकाधीश महाकाव्य में चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ ।



अथ पंचमः सर्गः

गोपाचल-वैभव-वर्णनम्-

पारिखो धनिको यत्र न्यवसत् सुखपूर्वकम् ।
द्वारकाधिपतिर्यत्र मिलितो वर्ण्यतेऽधुना ।। १ ।।

जहाँ गोकुलदास पारिख रहते थे उसी ग्वालियर नगर में श्रीद्वारकाधीश जी प्राप्त हुए उसका वर्णन यहाँ किया जाता है ।

अस्त्यत्र खण्डे भरताख्य - देशो -
यद्वर्णनं सर्वजन - प्रसिद्धः ।
यो विश्रुतोऽभूदजनाभ नाम्ना
प्रमाणकं भागवतं पुराणम् ।। २ ।।

जम्बू द्वीप में भरत खण्ड नामक देश है, जिसका वर्णन सर्वत्र प्रसिद्ध है, जिसे पहले 'अजनाभ' नामक वर्ष कहते थे, भागवत में यह लिखा है ।

तद्देशमध्ये मणि - रत्न - पूर्णो
गोपाचलाख्यो गिरिरस्ति रम्यः ।
गोचारणं यत्र चकार कृष्णो-
विख्यातमेतज्जगतीतलेऽस्मिन् ।। ३ ।।

भारत देश में मध्य भाग में गोपाचल नामक पर्वत बड़ा ही रमणीय है कभी कृष्ण द्वारा यहाँ गोचारण किया गया था इससे इसका यह नामकरण हुआ ।

धौलपुरनगरेमुचुकुन्दकथावर्णनम्-

तस्यैव पार्श्वे विलसत्यहो वै
विशाल-शैलो धवलश्च नाम्ना ।
यः स्मारकः श्रीमुचुकुन्दकीर्त्ते-
स्तथा मुकुन्दस्यपुरागतस्य ।। ४ ।।

इसी के समीप धवल गिरि (धौलपुर) नामक पर्वत है जो मुचुकुन्द राजा की कीर्ति को स्मरण कराता है क्योंकि श्रीकृष्ण इस कन्दरा में भी आये थे।

पावनी तत्कथा लोके गीयतेऽद्यापि सज्जनैः।
प्रसङ्गात्कीर्तनंतस्याः पुण्यदं तेन वर्ण्यते ॥ ५ ॥

लोक द्वारा वह पावनी कथा आज भी गायी जाती है अतः उसका वर्णन भी यहाँ थोड़ा करना आवश्यक है।

त्रेतारम्भे कृतान्ते च बलिष्ठैर्दितिजैः पुरा।
पीडिता देव यक्षाद्या दिवं त्यक्त्वा पलायिताः ॥ ६ ॥

सत्ययुग के अन्त और त्रेतायुग के आरम्भ में दैत्यों ने देवों को पीड़ित किया, जिससे वे पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

तत्रैकदा देववरश्च दृष्टो-
ह्यनन्त - वीर्यामितकाय - पुष्टः।
स्वरूपशाली वदनेन हृष्टो-
गोत्राभिमानी दितिजेषु रुष्टः ॥ ७ ॥

एकबार उन देवों ने बड़े पराक्रमी हृष्टपुष्ट शरीर वाले गोत्राभिमानी और दैत्यों पर क्रुद्ध मुचुकुन्द राजा को देखा।

मुनिभिः प्रेरितादेवा अयोध्यां समुपागमन्।
रक्षार्थं देव संघस्य स्वकीर्तेर्विजयस्य च ॥ ८ ॥

मुनियों के द्वारा प्रेरित देवगण अयोध्या में राजा मुचुकुन्द के पास आये, और अपना वृत्तान्त सुनाया, तथा रक्षा के लिये निवेदन किया।

गुणानुरागी समर - प्रसक्त -
आजानुबाहुश्च विशालवक्षाः।
गजेन्द्रगामी श्रुतिशास्त्र - युक्तो -
गम्भीर भावः स्वजनानुरक्तः ॥ ९ ॥

राजा मुचुकुन्द गुणानुरागी, युद्धप्रिय आजानुबाहु, विशालवक्ष, गजेन्द्रगामी तथा श्रुति-शास्त्रों से युक्त था। गम्भीर स्वाभाववाला एवं स्वजनों से अनुरक्त था।

मान्धातृभूपस्य सुतः प्रसिद्धः
स्ववाक्य संस्थापक-पंक्तिबद्धः।
दिवानिशं विष्णुकथासुनद्धः
श्यामाशुभाऽपाङ्गवरैरविद्धः ॥ १०॥

उसके पिता राजा मान्धाता थे। वह अपने वचनों पर हठ रहने वाला, दिन-रात भगवान विष्णु कथा में संलग्न और कामिनियों के कटाक्ष से न विधने वाला था।

सुराणामागमनम्-

विलोक्य भूपं त्रिदशा अवोचन्
प्रियः सुराणां च कुरुष्व शीघ्रम्।
दैत्याः समे यद्यपि बान्धवा न-
स्तथापि हिंसन्ति सदास्मकांस्ते ॥ ११ ॥

राजा को देखकर देव बोले—आप देवों का प्रिय करें, यद्यपि दैत्य भी हमारे बान्धव हैं तथापि वे हमारा सर्वदा वध करते रहते हैं।

धनं गृहं वैभवमस्मदीयं,
कुलं जनं शीलमवर्णनीयम्।
विद्या चमत्कारमकल्पनीयं,
राजंस्त्वयैतन्ननु रक्षणीयम् ॥ १२ ॥

हमारा धन भवन-वैभव-कुल, अवर्णनीय शील-विद्याचमत्कार सब कुछ अब आपके द्वारा ही रक्षणीय है।

शृण्वन्ति ते नो मनुजस्य कादाः
कुर्वन्ति हिंसां भवनेष्यजादाः।
द्रवन्ति येभ्यो मधुसूदनाद्या,--
स्ते प्राण-चौराः शयने सुखादाः ॥ १३ ॥

वे मनुष्यों के भक्षक, मांसाहारी हैं जिनसे देवगण भयभीत रहते हैं वे प्राण हरणशील स्वप्न में भी सुख नष्ट करने वाले है ।

कलाऽरयस्ते च सदाऽविनीताः,
गुणोज्झिता रौरव-कर्मप्रोताः ।
विद्या विशेषज्ञ-जनैरगीताः,
वसन्ति देवाश्च यतः सुभीताः ॥ १४ ॥

वे दैत्य कलाओंके शत्रु, परम उद्धत, गुण शून्य, बुरे कर्म में प्रीति करने वाले, विद्या-विशेषज्ञों द्वारा वर्जित हैं, देवभी जिनसे भयभीत रहते हैं, ।

निशम्य वाचं स्वकुलाभिमानी,
नित्यं द्विजेभ्यश्च हिरण्यदानी ।
निराकुला यस्य च राजधानी,
उवाच राजा सुजनेष्वमानी ॥ १५ ॥

अपने कुल के अभिमान का रक्षक, देवों की वात सुन कर, ब्राह्मणों को सुवर्णदान करने वाला, सुखदायिनी राजधानी में रहने वाला बोला—

सभ्याग्रगण्यो ननुबद्धहस्तो,–
मनोऽस्मदीयं समरे सुरक्तम् ।
यथा प्रियोदार––जनेषु सक्तो,
यथा प्रभुर्भक्त––जनेषु रक्तः ॥ १६ ॥

मेरा मन युद्ध में तो सर्वदा रत रहता है, जैसे प्रिय अपनी स्त्री में अनुरक्त रहता है जैसे प्रभु अपने भक्तों में वैसे ही मैं भी युद्ध प्रिय हूं ।

धन्यो नृपो यस्तु परोपकारी,
मृतो नृपो मानव-तापकारी ।
हतो नृपो यस्तु कुपापकारी,
दीनो नृपो यः स्वयशोऽपहारी ॥ १७ ॥

वह राजा धन्य है जो परोपकारी है । वह राजा मृतक तुल्य हैं, जो मानवों को पीडित करता है, पापकारी राजा भी मृत है और अपने ही यश का नाशक राजा दीन तुल्य है ।

इत्थं विचिन्त्यात्मकुलं प्रमाणं,
सु सान्त्वयन्नागत-देव-वृन्दम् ।
करे गृहीत्वा च सुतीक्ष्ण-खड्गं,
जगाम सार्धं त्रिदशैश्च स्वर्गम् ।। १८ ।।

इस प्रकार अपने कुल के अनुरूप देवों को प्रसन्न कर हाथ में तलवार लेकर उनके साथ स्वर्ग में लड़ने गया ।

सम्बोध्य तानाह सुरर्षि तापान्,
धावन्तु सन्त्यज्य महर्घ-चापान् ।
समागतोऽहं दितिवंश यूथान्,
सन्नेतुकामो निर्ऋतेश्च देशान् ।। १९ ।।

दैत्यों को ललकार कर उसने कहा कि अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भाग जाओ, में दितिवंश को यमपुरी पहुँचाने के लिये आ गया हूं ।

उन्नीय खड्गं च शिरांसि तेषां,
उत्पाटयन्नक्षि- युगं च तेषाम् ।
उत्तापयन्प्राणहरान्परेषाम्,
उत्साहयन्देवगणान् समस्तान् ।। २० ।।

अपने खड्ग से दैत्यों के शिर काटने लगा, आँखें निकालने लगा और सबको दुःख देने वाले दैत्यों को प्राणों का हरण करने लगा । देवगणों को उत्साहित भी करने लगा ।

दैत्यवधवर्णनम्-

समारयामास ततोऽसुरांश्च,
यशः प्रगाढं हि समार्जयच्च ।
देवास्तमूचुस्त्वयकैव नष्टा,
श्रियोऽसुराणां हि वरं वृणीष्व ।। २१ ।।

उसने दैत्यों का विनाश कर प्रभूत यश अर्जित किया, देव प्रसन्न हुए और कहा कि-दैत्य लक्ष्मी को तुमने हरलिया, अब कोई वरदान मांगो ।

निद्रावरदानप्रार्थनम्-

श्रमापनोदाय स एव स्वस्य,
निर्बाध-निद्रामचलां च दीर्घाम् ।
स प्रार्थयामास तदा सुरेभ्यो,
मान्धातृसूनुर्विबुधाभिवन्द्यः ॥ २२ ॥

मान्धाता के पुत्र देव वन्द्य मुचुकुन्द राजा ने निर्बाधा निद्रा मांगी ।

योविघ्नकारी शयनेतव स्याद्,
यमस्य राज्ञो निज-सेवको वा, ।
गन्धर्व-यक्षाश्च, सुरोऽसुरोवा,
स तत्क्षणं कालमुखं प्रयातु ॥ २३ ॥

देवों ने कहा —जो तुम्हारी निद्रा में विघ्न करेगा मृत्यु मुख में जायगा, भले ही वह गन्धर्व यक्ष सुर या असुर ही क्यों न हो ।

शेतेऽत्रभूपो मुचुकुन्द नामा,
जित्वाऽसुरान्निर्जर सैन्यसार्धम् ।
नोत्थापितः प्राणभयात् सुसभ्यै,—
र्विज्ञाय वार्तां वरदान सिद्धाम् ॥ २४ ॥

देव सेना के साथ असुरों को जीतकर वह राजा इसी कन्दरा में शयन करता है, उसे किसी ने वरदान के कारण उठाया भी नहीं है ।

कालयवनमृत्युवर्णनम्-

प्रसिद्ध शैलस्य च कन्दरायां,
निद्रागतौ द्वापर आगते च ।
तत्रैकदा "काल" इति प्रसिद्धः,
समागमत् कृष्णमनुप्रधावन् ॥ २५ ॥

म्लेच्छेन तेनैव कृतस्तदंके,
स्पर्शश्चपादेन हि दक्षिणेन ।
ततः समुत्थाय नृपः स दृष्ट्या,
भस्मावशेषं दनुजं चकार ।। २६ ।।

काल यवन ने विना सोचे दक्षिण पैर से राजा के शरीर का स्पर्श किया। राजा उठा और देखते ही वह यवन भस्म हो गया।

ततः समागतो द्रष्टुं भगवानपि तं नृपम् ।
कृष्णः परस्परं कृत्वा वार्तालापं जगाम ह ।। २७ ।।

तब श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्होंने समस्त वृत्तान्त सुनाया कि यह यवन मथुरा में हमसे लड़ने आया था हम इसे यहाँ लाये और तुम्हारे नेत्रों की ज्वाला से भस्म हुआ।

कृष्णोपदेशेन ततः स भूपो,
गतोविशालां नगरीं प्रसिद्धाम् ।
परंतदीयोच्चकथामपापां,
प्रसारयत्यद्य जनः कृतज्ञः ।। २८ ।।

कृष्ण के उपदेश से वह राजा बदरिकाश्रम में चला गया परन्तु कृतज्ञ जन आज भी उसकी पावन कथा गाते हैं।

पर्वतवर्णनम्—

अरावली पर्वत रम्य पंक्तिः
यत्पार्श्व भूमौ विदिताश्चलोके ।
घना द्रुमा वारिभृतस्तडागा,
अम्भोज वृन्दैर्विलसन्ति रम्याः ।। २९ ।।

इसी धौलागिरि के समीप अरावली की पर्वत शृंखला हैं जहाँ सघन वृक्ष व सुन्दर तालाव है जिनमें कमल खिले रहते हैं।

इति पं० श्रीवरजी शास्त्रि चतुर्वेदसूनु श्रीवासुदेव कृष्णचतुर्वेद विरचितेश्रीद्वारकाधीशमहाकाव्येगोपाचलवैभववर्णनं नामपचमःसर्गः

पं० श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र श्री वसुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में पंचमसर्ग पूर्ण हुआ।

अथ षष्ठः सर्गः

सिंधिया नरेश दोलतरावः वर्णनम्–

दौलतराव नामैको भूपतिः सिन्धियाभिधः ।
पुरोमुज्जयिनीं यावच्चकार निजशासनम् ।। १ ।।

ग्वालियर में एक दौलत राव सिन्धिया भूपाल शिरोमणि थे । उनका राज्य उस समय उज्जयिनी तक फैला हुआ था ।

इन्दौर राजधानी वर्णनम्--

यद्यपीन्दौर-संस्थाने न्यवसद्भूपतिः सदा ।
राजधानी कृता तेन "ग्वालीयर" इति श्रुता ।। २ ।।

मूलतः इन्दौर से उनका सम्बन्ध था किन्तु वे ग्वालियर में ही निवास करते थे ।

यथा कामोजितस्तेन शंकरेणाक्षिवन्हिना ।
एवं कामोजितस्तेन राज्ञा देश निवासिना ।। ३ ।।

जिस प्रकार शिवजी ने काम को वश में किया, उस प्रकार राजा ने भी काम को वश में कर लिया था ।

अप्रतिहतशक्तिश्च यथा स्कन्दोमहामतिः ।
तथैवासीन्नृपो नूनं जनतायाः प्रियः पतिः ।। ४ ।।

जिस प्रकार स्कन्द अप्रतिहत शक्ति सम्पन्न कहे गये हैं वह राजा भी वैसा था और जनता उन्हें प्यार करती थी ।

सूर्योपमश्चाद्भुतवीर्यकर्मा
बभूव राजा रणनीति धर्मा ।
जितः प्रदेशः सकलश्च तेन
स्वबाहुजेनैव पराक्रमेण ।। ५ ।।

श्री सिन्धिया अद्भुत वीर्य कर्मा थे, रणनीति के विशेषज्ञ थे, उन्होंने समस्त प्रदेश अपनी भुजा के पराक्रम से वश में किया था और विजय प्राप्त की थी।

उज्जयिनीवर्णनम्–

ख्याता महाकालपुरीह लोके,
अवन्तिका नाम सुशोभिता पूः ।
क्षिप्रानदी यत्र वहत्यमत्ता,
धत्ते सुकीर्ति नृपतेः समानाम् ।। ६ ।।

भूमि में महाकाल की अवन्तीपुरी प्रसिद्ध है। वहाँ क्षिप्रा नामक नदी बहती है जो राजा की कीर्ति की स्थापिका है।

नृप कौशल चन्द्रयो : संगम :–

एकदा नृपतेः पार्श्वे कौशलचन्द्र नामकः ।
समागतो वणिक् कार्यात् वार्तालापं चकार ह ।। ७ ।।

एक दिन राजा के पास कौशलचन्द्र व्यापारी आया और बातचीत की

वणिक् द्वारा पारिख महत्व वर्णनम्–

तत्र कौशलचन्द्रेण पारिखस्य विलक्षणा ।
बुद्धिर्गीता नृपस्याग्रे तेन तुष्टोऽभवन्नृपः ।। ८ ।।

वार्तालाप के प्रसंग में उसने अपने गोकुलदास पारिख की चर्चा की और उसकी बुद्धि की प्रशंसा की राजा उससे अत्यन्त प्रभावित हुआ।

श्रुत्वा स भूपो धिषणप्रभावं,
कुभाव शून्यं तमुदारभावम् ।
व्यापार लग्नं सहज स्वभावम्,
श्री गोकुलाख्यञ्च महानुभावम् ।। ६ ।।

राजा ने गोकुलदास की उदारता, बुद्धिमत्ता व्यापार की कुशलता सुनी।

श्री कौशलं प्राह नृपः प्रहृष्टः
स पारिखो मे बहुशश्च दृष्टः।
व्यापार वृत्ताव विचाऽस्त्यधृष्टः,
स्वयं विधात्रा विरलो विसृष्टः ॥ १० ॥

श्री कौशलचन्द्र से राजा ने कहा कि मैंने पारिख की प्रशंसा और भी सुनी है। वह व्यापार में भी न्याय प्रिय है, वस्तुतः विधाता ने वह विरला ही रचा है।

श्रीपारिखप्रदानम्–

वाञ्छामि तं पारिखकं वदान्यं
जनैः स्तुतं वीरवरं च धन्यम्।
कोषे च रक्षामि प्रभुत्व-मान्यं,
श्री गोकुलाख्यं धनिकं न चान्यम् ॥ ११ ॥

राजा ने अपने कोषागार में उसे नियुक्त किये जाने की इच्छा व्यक्त की क्यों कि वह धन्य है, वीर भी है।

कौशल चन्द्र द्वारा नृपायपारिख प्रदानम्–

न मे क्षतिः काऽपि जगाद वैश्यो,–
गृहाण स्वामिन्ननु कोऽत्रदोषः।
देव ! प्रसन्नो यदि मेऽसि नूनं
भाग्योदयेनाद्य गतः प्रमोषः ॥ १२ ॥

श्री कौशल चन्द्र ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और कहा यह बड़े सौभाग्य की बात है।

श्री पारिखं तं बलबुद्धि युक्तं,
समर्पयामास धनी नृवीरम्।
लब्ध्वा नृपस्तं परमोश– भक्तं,
नियोजयामास धने च धीरम् ॥ १३ ॥

एक बार द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण कालयवन दैत्य के साथ इस कन्दरा में आये।

बलबुद्धि युक्त पारिखजी को उसने राजा को सौंप दिया और राजाने ईश भक्त श्री पारिखजी को कोषागार में नियुक्त कर दिया।

राज्ये गोकुल पारिखस्य सम्मानम्–

शनैः शनैः पारिख-भक्त वर्यः
सर्वत्र राज्ये विदितस्तपस्वी।
जाताऽन्तरे तस्य वचः प्रतिष्ठा,
बभूव लोके गुणवान् मनस्वी ॥ १४ ॥

धीरे-धीरे तपस्वी पारिख की ख्याति सर्वत्र राज्य में छा गई, उनकी बात की धाक थी, वे गुणी एवं मनस्वी थे।

ये स्वामिनः क्षेम विचारयन्ति,
ये रक्षकं देव समं गदन्ति।
ये कर्म निष्ठाः सततं भवन्ति,
प्रभोः प्रसादाद् विपदं तरन्ति ॥ १५ ॥

जो अपने स्वामी की भलाई सोचते हैं, जो रक्षक को देव-तुल्य मानते हैं, जो निरन्तर कर्म में लगे रहते हैं, वे प्रभु की कृपा से विपदों को पार कर जाते हैं।

यश्चात्मना वा वचसा स्व-बुद्ध्या,
आकांक्षते स्वामिहितं सदैव।
महात्मनस्तस्य च जन्म दिव्यं,
वदन्ति विज्ञाः सफलं तथैव ॥ १६ ॥

जो आत्मा से, वाणी से, बुद्धि से, स्वामिहित चिंतन करते हैं, उसका जन्म दिव्य है, ऐसा विज्ञों का कथन है।

अथ प्रजानामनुरञ्जनेन
निनाय घस्रं सु महोदयः सः।
स्वकर्म निष्ठात्म-मनोबलेन
गर्वं स्वकीयं सहसा जहार ॥ १७ ॥

पारिखजी ने प्रजा के अनुरंजन में अपना समय लगाया, अपने कर्म में निष्ठा पूर्वक लगगये परन्तु उन्हें अभिमान नाममात्र को भी नहीं था ।

परं न सर्वत्र सम-स्वभावा
विनीत भावा मनुजा वसन्ति ।
विशेषतो राज्यमदान्धकारे
घूका इवान्धाः सततं लसन्ति ।।१८।।

परन्तु सर्वत्र समस्वभाव वाले विनीत मनुज नहीं रहते, विशेषकर राज्य के मद के अन्धकार में घूक की भांति अंधे बहुत विचरण करते हैं ।

पारिखस्यालोचना–

एकेन दग्धाननकेन पाप-
प्रियेण, कालुष्यहतात्मकेन ।
निरीक्ष्यराज्येऽप्रतिमप्रभावं-
तत्पातकामेन नराऽधमेन ।। १९ ।।

एक वार एक दग्धमुख पापी ने पारिख जी का चढ़ता प्रताप देख उन्हें गिराने की चेष्टा की ।

निवेदितं हार्दमहो स्वकीयं–
कक्षे निधायैक करं च कर्णे ।
राजन् ! महाकालवरस्य देशात्–
उट्टङ्कितं वृत्तमथास्ति पत्रे ।। २० ।।

उसने अपना हृदय का भाव राजाके कान के पास हाथ ले जाकर निवेदित किया । महाकाल शिव की (उज्जयिनी) देश से एक पत्र लिखा आया है ।

नागाख्य शूरा विविधास्त्र युक्ता–
धनोन्मदा वैभव-शालिनश्च ।
राज्यापमानैकधियः प्रमत्ता–
युध्यन्ति पापा नति वर्जिताश्च ।। २१ ।।

नागा नामक शूरवीर विविध अस्त्रों से युक्त हैं, धन मत्त हैं, और राज्य की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं । वे नम्र भी नहीं हैं ।

अतः प्रभो ! पारिख नाम शूरं
स सेनया प्रेष्य च तान् निहन्तुम् ।
विनष्ट चिन्तो भवितासि नूनं
योग्या न ते वीर ! कदापि क्षन्तुम् ॥ २२ ॥

अत आप उन्हें वश में करने के लिये पारिखजी को सेना के साथ भेजें उन्हें आप क्षमा न करें ।

गजान्-हयान्-स्यन्दन-पत्तियुक्तान-
मार्दङ्गिकान्-वाद्यविशारदांश्च ।
सम्प्रेष्य योधानसि-चालकांश्च
धनुः प्रहारान् गुटिका प्रहारान् ॥ २३ ॥

उन्हें आप गज-अश्व-रथ पैदल दें और विविध वाद्य विशारद दें धनुर्धर तथा गोली चलाने वाले भी देवें ।

असंशयं सैन्यबलेन धीरान्
विजित्य सर्वानरियूथपांश्च ।
धनंगृहीत्वाऽथ महाऽधमानां
भविष्यसि त्वं जनलोकमान्यः ॥ २४ ॥

आप सैन्यबल से सम्पूर्ण शत्रुओं को परास्त कर अधमों का समस्त धन हाथ में करें इस से आपकी लोक में प्रतिष्ठा बढ़ेगी ।

नृपद्वारापारिखाय नागाशमनायप्रेषणम्-

नृपस्तदाऽऽहूय च पारिखं तं
गच्छोज्जयिन्यामरिनाशनार्थम् ।
आज्ञापयच्चान्य-जनान् प्रबोध्य
गच्छन्तु शीघ्रं बलरक्षणार्थम् ॥ २५ ॥

राजा ने पारिख जी को बुलाकर कहा कि आप उज्जयिनी में शत्रुओं को परास्त करने जावें । अन्य व्यक्तियों को भी राजा ने युद्ध के लिये तैयार होने को कहा ।

यात्रा वर्णनम्--

प्रभुं नमस्कृत्य चतुर्भुजं तं
द्वारापतिं सिद्धिप्रदायकञ्च ।
गणाधिपं विघ्नविनायकादीन्
निधाय चित्ते गतवान् स्वगेहे ।। २६ ।।

श्रीपारिखजी चतुर्भुज भगवान् द्वारकाधीश का स्मरण कर नमस्कार कर विघ्नविनायक गणाधिप को हृदय में रखकर अपने घर गये।

पारिखः स्वगृहं गत्वा राजाज्ञां शिरसावहन् ।
सस्मार कुलदेवं स्वं रात्रौ प्रार्थन-पूर्वकम् ।। २७ ।।

पारिख ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने कुलदेव का स्मरण किया और शयन करते समय भगवान् की प्रार्थना की ।

श्रीपति पाद सरोरुह युग्मं
धारय जीव विशिष्ट-प्रभावम् ।
वैभव-दायकमिष्ट-निधानं
कीर्तिकरं सुखधाम रसालम् ।। २८ ।।

श्रीपति के चरण कमलों को जो विशिष्ट प्रभाव वाले हैं ! भजो वे चरण कमल वैभवदायक इष्टनिधान, कीर्तिकर और सुख के धाम हैं ।

यद्यपि युद्ध प्रियं न हि चित्तं
किन्तु निज प्रभु सेवक रूपम् ।
वीक्ष्य तवैव जयो नहि चिन्ता
पारिख भक्तवरस्तु बभाषे ।। २९ ।।

यद्यपि मेरा मन युद्ध रत नहीं है किन्तु स्वामी का सेवक हूं, अपनी ही जय होगी ऐसा पारिखजी ने कहा ।

शेष-महेश-गणेश-सुरेशा–
नारद-धौम्य-महर्षि समेताः ।
भान्ति सदा गुणगान विलग्ना
हे जगदीश ! ममेहि सुचित्ते ।। ३० ।।

शेष-महेश-गणेश-सुरेश-नारद-धौम्य महर्षि जिनके गुणगान में लगे रहते हैं ऐसे हे जगदीश मेरे चित्त में आकर विराजिये।

राज्ञः प्रसादकं प्राप्य पुष्पहारसमन्वितम्।
सम्पूज्य शिरसावीरो जयार्थं निर्ययौपुरात्॥ ३१॥

फिर राजा द्वारा प्रदत्त प्रसादी माला ग्रहण कर, शिर से उन्हें प्रणाम कर, जय के लिये नगर से निकल दिये।

सेनामुपादाय बली रयेण
अवन्तिका-क्षेत्र-मुखे जगाम।
तस्य प्रवेशान्ननु नागमुख्याः
शोके निमग्ना न बभुः समन्तात्॥ ३२॥

पर्याप्त सेना को साथ लेकर पारिख जी अवन्तिका के समीप पहुँचे, उनके आगमन के वृत्तान्त से नागा लोग शोक में मग्न हो गये।

ततस्तदालोकनतत्पराणां
ग्रामाधिपानां बलशालिनाञ्च।
बभ्राम बुद्धिश्च विलोक्य शीघ्रं
मार्गेषु साक्षादिव देवसेनाम्॥ ३३॥

पारिख जी की विशाल उस सेना को देखकर ग्राम वासी घबड़ा गये।

युद्धवर्णनम्-

एके गताः पर्वतकन्दरासु
चान्येगताः पार्थिवपादमूले।
गता महाकालप्रभोः प्रदेशे
देशाधिपा युद्ध-समुत्सुकाश्च॥ ३४॥

कुछ लोग तो मार्ग से हट गये, कुछ सामन्त राजा की शरण में आ गये, और कुछ युद्ध लड़ने की तैयारी करने लगे।

सराजलोकः पथि पारिखं तं
रुरोध नागाख्य जनाः प्रसन्नाः।
तुल्यारि-भूतेन च योद्धुमिच्छन्
प्रत्यग्रहीत् पारिखसैन्य वृन्दम्॥३५॥

कुछ राजाओं ने पारिख की यात्रा में बाधा पहुँचाई। जिससे नागा प्रसन्न हुए।

लोकश्च लोकं गजिनं गजेशः
हयाधिरूढञ्च हयाधिरूढम् ।
रथाधिरूढो रथिनं तथैव
रुरोध द्वन्द्वं प्रतिपद्यमानः ॥ ३६ ॥

सैनिक–सैनिक से, हाथी सवार, रथ सवार, घोड़ा सवार परस्पर भिड़ गये।

नागश्च खड्गेन हृतोत्तमाङ्गो-
नत्यत् स्वदेहं त्वरितं ददर्श ।
गन्धर्व-यक्षादिभिरर्चितश्च
सुयुद्ध हेतोर्दिवमापशीघ्रम् ॥ ३७ ॥

नागा के खड्ग से शिर कटने पर योद्धा धड़का नृत्य देखता है और गन्धर्व यक्ष अदि से सत्कृत होकर स्वर्ग जाता है।

अन्योऽन्य खड्गक्षतयोः प्रहर्त्रो-
रुद्दीप्तमन्य्वोः समकालमेव ।
अश्वाधिरूढा गजिकारथेशाः
विमानमारुह्य गता द्युलोके ॥ ३८ ॥

परस्पर खड्ग चलाने से बढ़े हुए क्रोध वाले योद्धा अश्व और रथों पर लड़कर विमानों में बैठकर परलोक गये।

सर्वैश्च गोपाचलवासि-वीरै–
र्भुशुण्डिभिस्तुम्फ प्रचालनैश्च ।
शस्त्रप्रहारैश्च निकृत्तकण्ठा
संप्रेषिता मृत्युमुखे च नागाः ॥ ३९ ॥

ग्वालियर निवासी सैनिकों ने बन्दूकों से व तोप से गोली-गोला छोड़ना आरम्भ कर दिया जिससे सैकड़ों की संख्या में नागा मृत्यु के मुख में जाने लगे।

विजयवर्णनम्-

मेर्यस्तथाशङ्खमृदङ्गवीणा
उच्चस्वना दुन्दुभयः कराग्रैः ।
सुवादिता पारिखराज भक्तै-
र्जयोऽस्तु ते इत्यभिधानपूर्वम् ॥ ४० ॥

भेरी-शंख-मृदंग-वीणा और दुन्दुभी की ध्वनि दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। पारिख के भक्त उनकी जय जयकार कर रहे थे ।

निधिप्राप्तिवर्णनम्-

कालेश्वरस्यानुपमं विशालं
नीत्वा निधिं सैन्यजनेन सार्धम् ।
प्रत्यागमद् वाद्यनिनाद पूर्वं
प्रख्यापयन् स्वीय-जयोत्सवञ्च ॥ ४१ ॥

कालेश्वर की प्रच्छन्न समस्त निधि जिसमें अधिकतर अमूल्य हीरा पन्ना-माणिक आदि रत्न थे लेकर गोकुलदास ग्वालियर लौटकर आये और महाराजा सिन्धिया को जय का वृत्तान्त सुनाया ।

रत्नानि सर्वाणि च मौक्तिकानि
संगृह्य माणिक्य सुहीरकादीन् ।
अनेक वाहै रथिभिः सहैव
सम्प्रस्थितो राजवशंवदः सः ॥ ४२ ॥

गोकुलदास रत्न-मोती माणिक आदि रत्नों को लेकर और अनेक रथों पर लाद कर लाये ।

प्रत्यागमनम्-

गोपाचलांके विलसत् प्रपातम्
ऋद्धापणं राजपथं च पश्यन् ।
जयोत्सवाकांक्षिभिरागतैश्च
प्रियो जनानांपुरमाजगाम ॥ ४३ ॥

मार्ग में बड़े बड़े झरनों से शोभित बाजारों को देखते हुए भारी जन समूह का भव्य अभिनन्दन लेते हुए वे नगर में प्रविष्ट हुए थे ।

निधिसमर्पणम्-

गत्वा सभायां नृपतेः समक्षं
समर्पयामास निधिं महान्तम् ।
निर्बन्ध-पृष्टः स जगाद सर्वं
युद्धस्य वृत्तं स्व गुरोः-प्रभावम् ।। ४४ ।।

राज सभा में जाकर उन्होंने वह सम्पूर्ण निधि समर्पित की और बातचीत की ।

नागान्निहन्तुं न च मे प्रतापो–
नवार्थकामान्नच कीर्ति-हेतोः ।
स्व स्वामि सेवाकरणैकनिष्ठा
मां प्रेरयामास बलान्निगृह्य ।। ४५ ।।

इन नागाओं को मारने में न तो मेरा प्रताप है, न कोई व्यक्तिगत स्वार्थ और न कीर्ति की अभिलाषा ही । मुझे तो स्वामी सेवा की निष्ठा ने केवल प्रेरित किया ।

प्राप्तो मया स्वामि कृपाप्रसादो
लब्धं मया पुण्यफलं विचित्रम् ।
जरा समागच्छति नाथ ! देहे
मां मोचयात्तं धनमान-संगात् ।। ४६ ।

मैंने स्वामी की कृपा का प्रसाद प्राप्त कर लिया है । पुण्यों का फल मुझे मिल गया है । अब मेरे शरीर में वृद्धावस्था वेगपूर्वक समाविष्ट हो रही है, अब आप मेरी राज कार्य से मुक्ति करें ।

वचोमदीयं करुणार्द्रचित्तै–
र्भवादृशैर्नो प्रतिषेधनीयम् ।
श्रीविष्णुदेवस्य च पूजनादौ
मनोमदीयं नितरां निमग्नम् ।। ४७ ।।

श्रीमन् ! मेरी प्रार्थना को न ठुकरावो मेरा मन भजन में लगा है।

इत्युक्त वन्तं निज भृत्य-मुख्यं
नितान्त रूक्षाभि निवेश पूर्णम् ।
न राज्यमान्येषु जनेषु सत्सु
निषेद्धुमासोदनुमोदितुं वा ॥ ४८ ॥

इस प्रकार पारिखजी के रूखे वचनों को सुनकर राजा न तो निषेध ही कर सके न अनुमोदन ही।

तन्निश्चयं ग्वालियरस्य राजा
विज्ञाय लोकत्रय-गीत-कीर्तिः ।
भक्तोऽसि धन्योऽसि च पण्डितोऽसि
मनोरथस्ते न निवारणीयः ॥ ४९ ॥

सिन्धिया ने जब जान लिया कि ये अपने मत में दृढ़ हैं, तो कहा कि-आप तो भक्त हैं धन्य हैं और विद्वान् हैं, मैं आपकी आशा का निरादर नहीं करूँगा।

राजसेवात्यागवर्णनम्–

अथ व्यवस्थापितवाक् कथंचित्
वणिक् जनोऽन्तर्गत बाष्पकण्ठैः ।
स्पृष्ट्वा तदीयौ चरणौ स्व हस्तात्
कृपाञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ५० ॥

राजा के वचन सुनकर पारिखजी ने बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण किया और उमड़ते आंसुओं की धाराको रोका तथा राजा के चरणों को प्रणामकर हाथ जोड़कर कहा।

न नाथ ! दोषाः परिचिन्तनीया–
न मेगुणाः क्वापि विचारणीयाः ।
विनिर्मिते मन्दिरके मदीये
कृपा-कटाक्षः कृपया विधेयः ॥ ५१ ॥

नाथ ! मेरे न तो दोष देखना और न मेरे गुण, किन्तु एक मन्दिर बनवाना चाहता हूं उस पर अवश्य कृपा करना।

कपर्दिका नो मम कोषमध्ये
धातुं सुयोग्या इतिसंविचार्यं ।
कोषो मदीयो ननु गांगमम्भः
रक्ष स्ववित्तं समरे गृहीतम् ॥ ५२ ॥

यह सुनकर सिन्धिया ने कहा पारिखजी ! यह कौड़ी हमारे गंगाजली के समान पवित्र कोष के योग्य नहीं है आपही इसकी व्यवस्था करें।

[रक्तपात के कारण आये धन को उन्होंने कौड़ी कहा था।]

सिन्धियाद्वारा धनत्यागः-

उवाच वीरो नृपतेः पुरस्तात्
प्रीति र्न मे शोणित-पुष्ट-वित्ते ।
देवादि-कार्ये यजनादि-मध्ये
सम्भाति योग्यं कृपणेषुदाने ॥ ५३ ॥

श्री पारिख ने कहा—मेरी भी प्रीति इस रक्त पात से प्राप्त धन में नहीं है। हाँ देवादि कार्यों में, यज्ञों में तथा निर्धनों की सहायता में लगाने का मन है।

इति नरपतिवाण्या चात्मशंकां विधूय
सुरवर गुरुपूज्याधोक्षज प्रीतिकामः ।
"लसकर" इतिवित्ते राजग्रामस्थ मध्ये
ललितशिखर युक्तं मन्दिरं संचकार ॥ ५४ ॥

इस प्रकार राजा का आशीर्वाद प्राप्त कर और अपनी शंका को दूरकर भगवान् विष्णु की सेवा में एक सुन्दर शिखर वाला मन्दिर बनवाना आरम्भ कर दिया।

इति पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये उज्जयिनी-विजयवर्णनं तथा निधिसमर्पण-वर्णनं नाम षष्ठः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद पुत्र श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में षष्ठ सर्ग पूर्ण हुआ।

अथ सप्तमः सर्गः

गोकुलपारिखस्यभजनविधिवर्णनम्–

दुर्जनानां मुखानित्थं मेधया पारिखो बणिक् ।
चूर्णयामास नीतिज्ञो "लश्करे" विष्णुमर्चयन् ।।१।।

श्री पारिखजी अपनी बुद्धि से शत्रुओं के मुखों का मर्दन करते हुए विष्णु पूजा में संलग्न हो गये ।

प्रभुदासत्ररो निजभृत्य-युतः
स्मरतिस्म सदाकमलावरकम् ।
भजतिस्म हरेरभिवन्द्यपदम्
यजतिस्म सुवैदिक विप्रयुतः ।। २ ।।

श्री पारिख अपने सेवकों सहित भगवान् कमला पति का संस्तवन करते और कभी-कभी वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ के आयोजन करते थे ।

वदतिस्म मुखेन हरिः शरणं
वचसापि कृतं न पराऽपकृतम् ।
पर-दुःखगते सततं करुण–
उपकार विधौ निपुणो गणितः ।। ३ ।।

वे सर्वदा मुख से हरिः शरणं कहते, वाणी से भी कभी किसी का अहित न करते, परकष्ट में दुःखी होते और उपकार में रत रहते थे ।

प्रातः समुत्थाय निजासनं त्यजन्
स्मरन् हरिं पङ्कज-नेत्र सुन्दरम्
गो-विप्र साधूनभिवादयन् मुदा
गजाननञ्चापि पुपूज सादरम् ।। ४ ।।

प्रातः शय्या त्यागते ही प्रभु के कमल नयन वदन का दर्शन करते, स्मरण करते, गो दर्शन के पश्चात् विप्र और सन्तोंका अभिवादन करते और श्रीगणेशजो की भी पूजा करते ।

सन्ध्यामुपास्थाय विधाय शोभनं,
ललाटदेशे तिलकं च मोहनम् ।
श्रोवल्लभाचार्य प्रणीतशोडश–
ग्रन्थानुसन्धानपरायणोऽभवत् ॥ ५ ॥

प्रातः सन्ध्या वन्दन करते, तथा ललाट पर सुन्दर तिलक लगाते, श्रीवल्लभाचार्य द्वारा विरचित षोडष ग्रन्थों का पाठ करते थे।

हस्तेन संमार्ज्य विशालमन्दिरं,
जलादिभिः प्रोक्ष्य च प्राङ्गणंततम् ।
श्रीराधिकानाथ सुरम्यविग्रहं
सुस्नापयामास च पञ्चकेन ॥ ६ ॥

अपने हाथों से मन्दिर को स्वच्छ करते जल से धोते और राधिकापति के सुन्दर विग्रह को पञ्चामृत से स्नान कराते थे।

वस्त्रेण सूक्ष्मेण विधाय प्रोञ्छनं,
गंधादिभिश्चाङ्गविलेपनं तथा ।
गोरोचनेनाशु सुगण्डमश्चितं
चकार गोविन्द-पदाब्ज-संश्रयः ॥ ७ ॥

सूक्ष्म वस्त्र से प्रभु के अंग को पोंछकर गंधादि द्वारा अलंकृत करते और गोरोचन आदि से चर्चित करते थे।

नानाविधाविष्कृत-सामजस्वरं,
श्रृणोतिनित्यंमधुसूदनाश्रयम् ।
क्वचित्सुखं प्राप्तुमनाः सु भक्तकैः
वाद्यानि भेजे हरि तोषणानि वै ॥ ८ ॥

सामवेद का पारायण सुनते और कभी नाना प्रकार के वाद्यों से प्रभु को प्रसन्न करने का उपक्रम करते थे।

गीतां पुराणं च सभासु संस्थितः
विचक्षणोच्चारितवृत्तमद्भुतं ।
शुश्राव सभ्यैः सह गर्वजिन्मुदा
करोतितद्वर्णितकर्मरक्त-धीः ॥ ९ ॥

वे पण्डितों द्वारा कभी गीता, कभी भागवत पुराण, श्रवण करते और उपदिष्ट मार्ग पर चलते थे।

माधवं भजति शुद्ध मानस
स्तस्य वै भवति ताप-वारणम् ।
प्रत्यहं जपतियो हि नामकं
पापकं सरति तस्य निश्चितम् ॥ १० ॥

जो भगवान् की सेवा करता है उसका ताप अवश्य दूर होता है, जो प्रतिदिन हरिनाम लेता है उसके पाप दूर होते ही हैं।

केशवंभज सरोजमालिनं
अच्युतं रट सुपद्मभूषितम् ।
श्रीधरं-जप महेश-वन्दितं
माधवं कुरु सदैवमानसे ॥ ११ ॥

किसी ने ठीक ही कहा है कि केशव का भजन करो जो कमलों की माला पहने हैं। अच्युत को रटो जो पद्मों से भूषित हैं। महेशवन्दित प्रभु को जपो और माधव को सदा अपने मनमें बसाओं।

गोकुलेच्छा निरूपणम्–

भवेन्मन्दिरं विग्रहस्यानुरूपं
भवेद्विग्रहो मन्दिरस्यानुरूपः ।
यथापूजयं स्वेष्ट-देवानुसारं
तथा पूजके नो भवेद्यत्र भारः ॥ १२ ॥

एक बार वे सोच रहे थे कि विग्रह के अनुरूप ही मन्दिर होना चाहिये और मन्दिर के योग्य विग्रह प्रतिष्ठित होना चाहिये, इष्टदेव के अनुसार पूजन हो और पूजक को कोई भार भी न होवे।

स्वप्ने द्वारकाधीश दर्शनम्–

विचिन्त्यैकदा पारिखश्चित्तमध्ये
गुरोः पादपद्मं नमस्कृत्य रात्रौ ।
गतः स्वच्छ पर्यङ्कके स्वप्न-काले
ददर्शाद्भुतं विग्रहं मन्दहासम् ॥ १३ ॥

एक बार जब चित्त में यही धुन लगाये पारिखजी सोये तब स्वप्न में एक अद्भुत प्रभु का विग्रह देखा।

समुत्थाय शीघ्रं स्वपर्यङ्क-पीठात्
गतो मे प्रियः क्वेति भूयो जगाद।
रमानाथ! युक्तं न ते दुःख-दानं
प्रसीद प्रभो दर्शनं देहि क्षिप्रम् ॥ १४ ॥

वे शीघ्र अपनी शय्यामे उठे और 'मेरे प्रिय प्रभु कहां गये" बारबार कहने लगे। हे रमा नाथ! आप दर्शन देकर कहाँ चले गये, प्रसन्न होवें और दर्शन दें

जागरण वर्णनम्-

न रात्रौ दिवा वापि गेहे वने वा
न भोज्ये च पाने न भोगे न वित्ते।
मनः सात्त्विकस्यापि पूजारतस्य
न रेमे स्वकीयेऽपि वर्गे न भृत्ये ॥ १५ ॥

पारिखजी का मन उस दिन से किसी काम में नहीं लगा। खान-पान, भोग-धन, नौकर-चाकर सभी से उदासीन से रहने लगे।

हर्म्यनिर्माण वर्णनम्-

प्रातस्तदोयेन नरेण सत्वरं
गृहागतेनेत्थमवादि पारिखः।
प्रासादनिर्माणरतैः खनित्रकं
वसुन्धरायां पतितं न गृह्यते ॥ १६ ॥

प्रातःकाल दौड़ता हुआ एक सेवक उनके समीप आया और बोला कि-जहाँ मन्दिर निर्माण हो रहा है वहाँ फावड़ा गिर गया है। और श्रमिकअलग खड़ा हो गया है।

ध्वनि (होले होले) वर्णनम्-

तै-र्विश्वकर्मान्वयपद्मभास्करै-
र्निवेदितं साञ्जलि नम मस्तकैः।
शनैः शनैरित्यमृतस्वरूपकं
वचोऽद्भुतं तत्रजनैश्च श्रूयते ॥ १७ ॥

और भी श्रमिक वहाँ आये और हाथ जोड़कर बोले कि–महाराज ! वहाँ भूमि के भीतर से "हो लें हो लें' होलें होलें" आवाज आ रही है कोई विचित्र बात है।

स्वाऽमिन्नितः शीघ्रमुदारमानसै–
र्भवद्भिरागत्य परोपकारकैः ।
दृष्ट्वा स्थलं गर्तमुखं च सध्वनिं
स्वयं विनिश्चित्य प्रदीयतां वचः ॥ १८ ॥

आप वहाँ पधारें जहाँ नीम खुद रही है और उस गढ़े को देखकर ध्वनि सुनकर स्वयं ही आज्ञा करनी है, हम क्या करें।

पारिखस्य तत्रगमनम्

स विस्मयोत्फुल्लविलोल लोचनं
विहाय कर्माणि तथोत्तरीयकम् ।
पदातिरेव त्वरितं स सम्भ्रमं
खनित्रभूमौ गतवान्निजैर्वृतः ॥ १९ ॥

श्री पारिखजी दुपट्टा छोड़कर अपने समस्त कार्यों को वैसा ही पड़ा छोड़कर पैदल ही दौड़कर चल दिये, जहाँ खुदाई हो रही थी। साथ में थोड़े सेवक भी चल दिये।

पारिखस्यखनिकर्म वर्णनम्–

स्वयं स्वहस्तेन विशालमृत्तिका–
चयं क्षिपन् पूर्ववदेव तं ध्वनिम् ।
शृण्वन् क्षणं विस्मितमानसस्तदा
गर्तान्तराद्भूरि चखान मृत्तिकाम् ॥ २० ॥

जब वहाँ से मिट्टी के ढेर को हाथों से हटाया तो पूर्ववत् होलें होलें की ध्वनि आई फिर तो पारिखजी ने बहुत सी मिट्टी निकाल दी।

गते सु गर्ते स्वयमेव पारिखे
विलक्षणा तत्र बभूव वैखरी ।
अहं प्रसन्नस्त्वयि भक्तवर्य !
मातोऽस्मि द्वारापतिरित्यभिश्रुतः ॥ २१ ॥

जब नीचे गढ़े में पारिख जी उतरे तो विचित्र आवाज सुनाई दी हे पारिख ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। मेरा यह द्वारकाधीश का विग्रह प्रकट हो रहा है।

शिवलिङ्गप्राप्ति वर्णनम्-

उत्थापिते मृण्मय-लोष्ठकद्वये
धनञ्जयाख्यःफणिराड्विनिर्गतः ।
ततश्च दीव्यद्युतिभिः परीवृतो-
विनिर्गतो लिङ्गमयोवृषध्वजः ॥ २२ ॥

जैसे ही दो बड़े मिट्टी के ढेल उठाकर फेंके एक भयंकर सर्प निकला और उसके हटते ही एक शिवलिंग प्रकट हुआ।

ततश्च पूर्वोक्त ध्वनौविनिर्गते
चकारभक्तः स्वकरेण पूर्ववत् ।
रजः प्रसारं च शनैः शनैस्ततः
विहाय दात्रं कुरुतेस्म प्रार्थनम् ॥ २३ ॥

फिर पूर्वोक्त ध्वनि निकली तो हाथ में से कुदाल हटाकर केवल हाथों से ही हटाने लगे और मन ही मन प्रार्थना भी करने लगे।

कोलाहल वर्णनम्--

सुलश्करे ग्वालियराभिधेद्रुतं
शिवस्य-प्राप्तेरितिवृत्त मुज्जगुः ।
जनाः स्वगेहेषु सुचत्वरेषु च
हट्टेषु वीथ्यादिषु विस्मता मुहुः ॥ २४ ॥

जैसे ही यह समाचार नगर में फैला लोग चौराहो पर जमा हो गये और विस्मय पूर्वक लिंग प्राप्ति की चर्चा करने लगे।

द्वारकाधीशप्राप्ति वर्णनम्-

चतुर्भुजं शङ्खगदायुदायुधं
विशाल वक्षःस्थल बाहु संयुतम् ।
विचित्र वृत्तान्त युतः समो जनो-
विलोकयामास सहर्षमादरात् ॥ २५ ॥

जैसे ही श्रीद्वारकाधीशजी का चतुर्भुजी विग्रह निकला सब लोग इस विचित्र घटना से हर्ष मग्न हो गये।

जय-स्वरेणाशु सुपूरिता दिशः
प्रसून-लाजादिभिरंकिताभूः ।
स्थानं च गीतादि-सुवाद्यकैस्तथा
सुवासिनीभिश्च सुशोभितं कृतम् ॥ २६ ॥

जय-जय कार से दिशाऐं भर गईं, पत्र-पुष्प लाजा की वृष्टि होने लगी अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और सौभाग्यवती मंगल गायन करने लगीं।

श्रीद्वारकाधीश ! जयेति वादिनः
प्रजा-जना नृत्यपराः सुमण्डलैः ।
हस्तौ चहस्तै र्विनिधाय सत्वरं
मुकुन्द-देवस्य यशो जगुर्भृशम् ॥ २७ ॥

भीड़का हर्ष बाँध तोड़ने लगा और सैकड़ों लोग हाथ पकड़कर नृत्य करने लगे। कोई उच्चस्वर से गान करने लगे।

विज्ञाय राजा शुभमङ्गलाप्तिं
सबान्धवस्तत्र पुरोहितैर्युतः ।
सुगन्धि-पुष्पग्रथितां च मालिकां
द्रुतंगृहीत्वाऽथ समाययौ हसन् ॥ २८ ॥

जैसे ही राजा ने सुना वह अपने बान्धव और पुरोहितों के साथ वहाँ आये साथ में लम्बी सुगन्ध पुष्प निर्मित माला भी लाये।

महर्षि-व्यासोल्लिखिते-पुराणके
सुलभ्यते यादृशमद्भुतं महः ।
महोत्सवोऽभून्नगरे तथैव च
जनार्दनस्योत्तमपूरुषस्य च ॥ २९ ॥

भागवत वर्णित प्रभु के उत्सव की भाँति नगर में बड़ा ही महोत्सव मनाया गया।

राजा पारिख-भक्तस्य वीक्ष्य भाग्यंप्रहर्षितः ।
युद्धे लब्धं-धनं सर्वं प्रासादार्थं व्यसर्जयत् ।। ३० ।।

राजा ने पारिख के भाग्य की सराहना की और युद्ध में लब्ध धन जो सुरक्षित रखा था उसे उन्हें दे दिया ।

नगरमन्दिरे द्वारकाधीशपूजनम्-

निर्मापितं पारिखेण मन्दिरं लश्करे पुनः ।
यस्मिन् संस्थापितोदेवो द्वारकाधिपतिः-प्रभुः ।। ३१ ।।

श्री पारिख ने द्वारकाधीश जी का मन्दिर बनवाकर उन्हें उसमें विराजमान किया ।

मनोरामवैश्य-वर्णनम्-

मनीरामाभिधो वैश्यः, पारिखस्य प्रियोऽभवत् ।
देवी तं "वायजावाई" कोषाध्यक्षपदेऽकरोत् । ३२।।

मनीराम वैश्य पारिखजी के बड़े प्रिय पुरुष थे, अतः वायजा बाई ने उन्हें पारिखजी के स्थान पर नियुक्त कर दिया ।

खण्डेलवालवंशे तस्य दुर्दशा-वर्णनम्-

खण्डेलवालाख्यमहोदधेश्च
चन्द्र-प्रभोऽभून्मनिराम-वैश्यः ।
रराज देशे वणिजां-समाज
स चोत्तमेनात्म-गुणेन नूनम् ।।३३।।

मनीराम-खण्डेलवाल वैश्य के समुद्र में चन्द्रमा के समान श्री मनीराम हुए थे । वे अपने गुणों से समाज में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे ।

मनीरामोऽभवत्पूर्वं निर्धने सज्जने-कुले ।
ग्रामे "मालपुरा"ख्याते नगरे जयपत्त ने ।।३४।।

मनीराम जयपुर के मालपुरा ग्राम के निर्धन खण्डेलवाल कुल में पैदा हुए थे ।

एकपात्रेण सह गृहात् गमनम्-

एकदा दुःखितो भूत्वा पात्रेणैकेन केवलम् ।
निःसृतो धन प्राप्त्यर्थं व्यापारे दत्त-मानसः ।।३५।।

एक दिन निर्धनता से खिन्न होकर एक पात्र लेकर धन प्रप्ति की अभिलाषा में वे घर से निकल दिये थे।

भ्राष्ट्रकर्मकरद्वारा-रूप्यक प्रदानम्-

यातायातं न मे भूयाद्धनाभावेविचिन्त्य सः ।
भ्राष्ट्रकर्म करस्याशु गत्वा गेहमुवाच ह ।। ३६ ।।

उन पर यात्रा के लिये पैसे नहीं थे अतः एक भड़भूजा की दुकान पर जाकर अपनी इच्छा व्यक्त की ।

गृह्यतां पात्रमेकं मे मुद्रां मे दीयतां ततः ।
कृत्वा व्यापारकं कर्म मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। ३७ ।।

वे बोले, यात्रा के लिये मेरे पास पैसे नहीं हैं, अतः आप इस लोटी को रखलें और मुझे पैसे दे दें, जब आपके पैसे दे दूँ आप मेरी लोटी दे देवें।

मनीराम वचः श्रुत्वा विहस्य पुनरेव सः ।
जगाद न हि मे पार्श्वे मुद्राः सन्ति महोदय ! ।। ३८ ।।

मनीराम की बात सुनकर भड़भूजे ने हँसकर मनाकर दिया और कहा कि मेरे पास इस समय पैसे नहीं है।

बुभुक्षा-म्लान-सर्वाङ्गोधनलुब्धोऽतिकंपितः ।
ननाम शिरसाभूयः धनार्थं तत्र हट्टके ।। ३९ ।।

भूख से ग्लान अंग वाले मनीराम धन के लोभ से बड़े दुखित हुए और बाजार में घूमकर फिर उसी भड़भूजे के समीप आये और उसे प्रसन्न किया।

ततोऽति कृपया सोऽपिमुद्रामेकां ददौ हसन् ।
उवाच बंधकं स्वीयं मुच्यतां शीघ्रमेव हि ।। ४० ।।

तब उसने एक मुद्रादी और कहा कि इसे शीघ्र ही छुड़ा लेना।

पारिखसमीपे गमनम्-

कष्टं प्राप्य मनीरामो बभूव गणकोत्तमः ।
पारिखसन्निधौ जातः काचात् कांचनरूपधृक् ।।४१।।

बड़े कष्ट से मनीराम ने कुछ समय निकाला गणित का अभ्यास कर मुनीम हुए और फिर पारिखजी से उनकी भेट हुई कांच से काँचन हो गये ।

अनुजत्वेनप्रसिद्धिः-

मनोरामोऽनुजत्वेन विश्रुतोऽभून्महीतले ।
चकार गृह-कर्माणि राज्यस्यापिमहामतिः ।। ४२ ।।

कालान्तर में वे पारिख के छोटे भाई के रूप में लश्कर में प्रसिद्ध हो गये वे गृह कार्य के साथ राजकार्य भी पारिखजी के साथ करते थे ।

स्वप्ने प्रभोः वनगमनेच्छा-

एकदा द्वारकाधीश स्वप्ने प्रोवाच पारिखम् ।
प्रापय जन्म भूमौ मां बस तत्रैव सान्वयः ।। ४३ ।।

एक बार श्री द्वारकाधीश ने स्वप्न में पारिखजी से कहा कि मुझे व्रजभूमि में ले चलो और तुम भी सपरिवार वहीं निवास करो ।

प्रपच्छ पारिखः प्रातः राजानं कृत-मङ्गलम् ।
व्रजभूमि-निवासाय द्वारकाधीश-संयुतः ।। ४४ ।।

श्री पारिखजी प्रातःकाल राजा के समीप गये और व्रजवास की इच्छा सुना दी ।

नृपक्रोध वर्णनम्-

बभूव नृपतिः क्रुद्धः श्रुत्वा वाचममङ्गलाम् ।
प्रपच्छ पारिखं हेतु-र्विद्यते कोऽत्र वर्ण्यताम् ।। ४५ ।।

राजा इस बात से क्रुद्ध हुए और कहा बतलाइये क्या कारण है जो आप यहाँ से जाना चाहते हैं ।

श्रीद्वारापतिरस्तिमे प्रियधनं राजाऽब्रवील्लश्करे ।
पौरास्तत्र सभां विधाय विपुलां निर्णीतवन्तो मुदा ।।
देशस्यास्य निधिः कथं मधुपुरे नो जीविते यास्यति ।
श्रुत्वा गोकुलदास-पारिखबुधः प्रोवाच नम्रं-वचः ।।४६।।

राजा ने कहा–श्रीद्वारकाधीश मेरे प्रिय धन हैं। पुरवासियोंने भी इसका अनुमोदन किया और कहा कि यह यहाँ की सम्पत्ति है हम लोगों के जीवित इसे मथुरा ले जाना सम्भव नहीं होगा इस बात को सुनकर गोकुलदास पारिख ने कहा—

सिंधिया वंश भूपाल ! मम किंचिन्न चेप्सितम् ।
द्वारकाधीश-देवेन गमने प्रेरितोऽस्म्यहम् ॥४७॥

हे सिंधिया वंश के मुकुटमणि ! मेरी कोई दुर्भावना नहीं है, मुझे तो प्रभु ने व्रज जाने की आज्ञा दी है।

मथुरायात्रा वर्णनम्-

श्रुत्वा पारिख-भक्तस्य वाचं राजा प्रसन्न-धीः।
वाहनैश्च धनं सर्वं शिविकाभिस्तथाप्रभुम् ॥ ४८ ॥

जब राजा ने पारिखजी से सब वृत्तान्त विधिवत सुना तो न केवल समग्र धन ही दिया अपितु राजाधिराज भी प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किये, अनुमति दी।

नगर-तिलक-भूतं लश्कराख्यं च
प्रकटित बहुशक्ति त्यक्तु कामो बभूव।
सुरवर गणपूज्यं श्रीवरं पूजयित्वा
समुदमलस-शून्यैर्माथुरं प्राप शीघ्रम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार प्रभु के निवास स्थल लश्कर को पारिखजी ने त्याग दिया और श्रीवर प्रभु की पूजा कर माथुर मण्डल की ओर प्रस्थान कर दिया।

इति पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये श्रीद्वारकाधीश प्राप्तिवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः

इति श्रीश्रीवरशास्त्रि चतुर्वेदीके पुत्र वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्रीद्वारकाधीश महाकाव्य में सप्तम सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ अष्टमः सर्गः

यात्रामङ्गल दर्शनम्-

यात्रा मङ्गलमाकर्ण्य विद्वांसस्तत्र सङ्गताः ।
एकभावेन ते प्रोचुर्द्वारकाधीश-वैभवम् ॥ १ ॥

भगवान्-द्वारकाधीशजी की मंगल यात्रा जानकर माथुर मण्डल के विद्वान् एकत्रित हुए और उनकी प्रार्थना विविध स्तोत्रों से करने लगे ।

आह कश्चिद्विशालाक्षोः द्वारकाधीश-संस्तवम् ।
ध्यान-मात्रेण यस्याद्य मानसीशान्तिराप्यते ॥ २ ॥

कोई श्री द्वारकाधीश जी की स्तुति करने लगा जिसके ध्यान मात्र से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है ।

कश्चिद्ध्यानं तथा कश्चिल्लीलां श्रीद्वारका-भवां
प्रोवाच विह्वलो भूत्वा संयोगे स्व-पुरे प्रभोः ॥ ३ ॥

कोई ध्यान, तो कोई लीला वर्णन द्वारकापुरी से सम्वद्ध करने लगा ।

मथुरा वैभवं कश्चिद् यमुनातीर-वासिनाम् ।
महत्त्वं व्रजभूमेश्च वर्णयन् प्राह सस्वरम् ॥ ४ ॥

कोई यमुना-तीर वासियों का वैभव, तो कोई व्रजभूमि का महत्व, सस्वर गाने लगा ।

चञ्चत् पीत दुकूलकं भुज युगे वक्षःस्थले कौस्तुभं
रत्नं कोटि-विभाकराभमतुलं दिव्ये हनौ धारयन् ।
मुक्ताविद्रुमहीरकैर्विरचितञ्चोष्णीषमङ्ग दधद्
भक्ता-भीष्टवर-प्रदः स जयतात् श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥५॥

ध्यान —

कन्धों पर दुपट्टा, वक्षः स्थल पर कौस्तुभ मणि, ठोढी पर कोटि सूर्य के नमान हीरा, मोती-मूँगा-हीरा से रचित पगड़ी सिर घर भक्तों को अभीष्ट वर दायक श्री द्वारकाधीशजी की जय हो ।

संसारार्णवतारणैक-चतुरो यो दीन-प्राण-प्रियो-
रागद्वेष-भयार्तिनाशन-करः सत्यस्वरूपो महान् ।
दैत्योच्छेदनकर्मणि-प्रमुदितो लोकस्य कल्याण-कृत्
भक्ताभीष्ट-वरप्रदः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥६॥

संसार समुद्र से उद्धार करने वाले दीनों को प्राणों से प्यारे, राग-द्वेष-भय पीड़ा के नाशक, सत्यस्वरूप, दैत्यों के नाश कर्म में प्रमुदित समस्त लोक के कल्याण कर्ता, भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री द्वारकाधीशजी की जय हो ।

कृष्णः काल धनञ्जयाहुतिनिभं कंसं सहामात्यकं-
कृत्वा द्वारवतीमगाद् यदुवरः सम्मन्त्र्य सन्माथुरैः ।
विप्रैराप्त-वरस्य मागधपतेरिच्छांप्रपूर्याऽशुभां
स्वीयं जन्मभुवं जहौ स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥७॥

मंत्रि सहित कंस को कालाग्नि में हवन करने वाले, यादवों के साथ मथुरों से परामर्श कर द्वारका जाने वाले, ब्राह्मण के वरदान से जरासन्ध की इच्छा पूर्ण करने के कारण अपनी प्रिय जन्म भूमि का परित्याग कर जाने वाले श्री द्वारकाधीश की जय हो ।

मथुराऽऽगमनम्-

कृत्वा ग्वालियराख्यनामकभुवं स्वर्गोपमां तत्क्षणं
श्रुत्वा पारिखगोकुलस्य च मतिं प्रासाद-निर्मापणे ।
आज्ञाप्यात्मविनिश्चियंनिजजनं स्वप्ने तथा जागरे
स्वायातो मथुरापुरीं स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥८॥

ग्वालियर प्रदेश को स्वर्ग तुल्य बनाकर श्रीपारिखजी की बुद्धि प्रसाद निर्माण में करने वाले स्वप्न तथा जाग्रतावस्था में अपनी व्रजभूमि आने का अभिप्राय बतला कर मथुरापुरी आने वाले श्रीद्वारकाधीश प्रभु की जय हो ।

क्रीडा भाण्डनिभं जगज्जनयितु नो चेष्टते यो मनाक्
यस्यापाङ्ग विलोकनेन गिरिशः संहारको-गीयते ।
यत्पादाम्बु-नदी पुनाति मनुजं पञ्चोग्रपापान्वितं
तद्गीतस्तुति पूजितः स जयतु श्रीद्वारकाधींश्वरः ॥९॥

क्रीडा मण्डल के समान ब्रह्माण्ड रचना में श्रमायास रहित अपांग विलोकन से गिरिश को संहार कार्य सौंपने वाले, जिसके चरणों का जल (गंगा) पञ्चोग्र पापों का नाश करने में समर्थ है उन गीत और श्रुतियों से पूजित प्रभु की जय हो।

यो धर्म-द्रुम-रक्षको यदुनृपस्तत्याज राज्यासनं
ताताज्ञामपहाय धर्म-विमुखां विष्णुं मुदा-संश्रितः।
तत्त्यागेन तपस्यया च मुदितो राजेव कान्ति दधद्-
लोके ख्यातिमतोगतः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥१०॥

धर्म वृक्षके रक्षक राजा यदु राज्यासन का परित्याग कर दिया था और अपने पिताजी की आज्ञा का पालन भी नहीं किया था क्योंकि वह धर्म शून्य आदेश था उस कारण जिसने (नाना जी द्वारा) दिये राज्यासन का परित्याग करके भी राज-तुल्य क्रान्ति धारणकी और लोकमें ख्याति प्राप्तकी उन श्रीद्वारकाधीश की जय हो।

भूतेशो-नगरस्य-रक्षण-विधौ संशोभतेऽहर्निशं
ब्रह्मा वत्स-विचारणेऽत्रविपिने दैन्यं गतो निश्चितम्।
इन्द्राद्या-विवुधा न सन्ति सबला-सच्छाशंका मे गृहे
निश्चित्येदमहो विराजत-इह श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥११॥

मथुरा के कोटपाल भूतेश्वर हैं वे इसके रक्षक वृन्दावन में ब्रह्मा ने वत्स चुराकर दीनता ग्रहण की थी और जिन्होंने सिद्ध कर दिया था कि इन्द्र आदि देव भी यहाँ शासक योग्य नहीं उन द्वारकाधीश जी की जय हो।

बाल्ये रूपवती बकस्य भगिनी लोकान्तरं प्रापिता
तद्भ्राता बकनामकोऽघसहितोवृन्दावने मर्दितः।
"श्रीद्वारा" नगरेऽपि शत्रुनिवहं संछिद्यचक्रादिभिः
शस्त्र त्यक्तुमनाः समागत-इह श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥१२॥

बाल्यावस्था में बक की भगिनी पूतना लोकान्तर में भेजी गई थी उसके भाई बक का भी वध किया गया था, द्वारकापुरी में सैकड़ों शत्रुओं का विनाश किया था और जिन्होंने इस पुरी में आकरही शस्त्र त्याग किया, उन प्रभु द्वारकाधीश की जय हो।

रुक्मिणीविवाहः –

गोलोकादवतीर्य भीष्मक गृहे जाता च या-रुक्मिणी
रूपौदार्य-प्रशस्त-लक्षणवती लावण्य-मञ्जूषिका ।
चेदी-भूपति-प्रार्थिताऽपि विमुखा या कृष्णपूजा-रता
नीता येन वशं मुदा स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१३।।

गोलोक से अवतीर्ण होकर जिन्होंने भीष्मक राजा के घर जन्म लिया था तथा जो रूप औदार्य में अनुपम थीं तथा जिन्होंने शिशुपाल की प्रार्थना भी ठुकरा दी थी ; जो कृष्ण की पूजा में रत थीं उन लक्ष्मीजी को जिन्होंने वश में किया उन श्रीद्वारकाधीश जी की जय हो ।

सत्येश्वरः –

श्रीसूर्यार्चन-लब्ध पुण्य-मणिमान् सत्राजितो-यादवः
कन्या यस्य विलक्षणा-गुणवती श्रीसत्यभामाभिधा ।
भीतेनाच्युत-विद्विषा च कुधिया दत्ता मुकुन्दाय या
नीता येन वशं मुदा स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१४।।

श्रीसूर्य के पूजन से सत्राजित मणि वाला हुआ । जिसकी कन्या विलक्षण गुणवती सत्यभामा हुई, भयभीत सत्राजित द्वारा प्रदत्त सत्यभामा कन्या जिन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार की, उन प्रभु की जय हो ।

जाम्बवतीश्वरः –

अज्ञातौ भुवने यदीय-पितरौ या रक्षिता-भालुना
नाम्ना जाम्बवती प्रिया सु विपिने चन्द्रानना शालिनी ।
भाषा शिष्टपरं परा-नुगवती नासीच्च ज्ञानाधिका
नीता येन वशं मुदा स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१५।।

जिस जाम्बवती के माता-पिता का पता नहीं था जिसका जाम्बवान् ने पालन किया उस चन्द्र मुखी को जो भाषा ज्ञान शून्य थी, प्रसन्न होकर ग्रहण किया, उन प्रभु की जय हो ।

कालिन्दीश्वरः –

दिल्यां मध्यम-पाण्डवेन-चरता सूर्यात्मजा-मानिनी
या दृष्टा मधुसूदनेन सुमुखी पद्मासने-संस्थिता ।
सम्प्रश्नेऽर्जुन सम्मुखं कृतवती श्रीकृष्णगानं मुदा
नीता या शरणं स्वयं स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१६।।

एक बार दिल्ली में अर्जुन के साथ यमुना तट पर श्रीकृष्ण गये, वहाँ सूर्य पुत्री कालिन्दी पद्मासन लगाये विराजमान थी, अर्जुन के पूछने पर जिसने अपना अभिप्राय कहा कि वह श्रीकृष्ण में रत है, उसे जिन्होंने अपनी शरण दी, उन प्रभु की जय हो ।

मित्रविन्देश्वरः –

आवन्त्यो-जयसेन-भूपतिवरः स्वस्याः-सुतायाः-प्रियं
प्रीतिं कर्त्तुमनाः स्वयंवरमहो व्यज्ञापयद् भूतले ।
यात्रा-व्याजमुपागतो यदुपतिः श्रुत्वा तदीयां-रतिं
मथ्नन्नारमुवाहविन्द-भगिनीं श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१७।।

अवन्तिपुरी में जयसेन राजा द्वारा पुत्री के स्वयंवर महोत्सव में यात्राव्याज से पहुंचकर और उसकी रति देखकर शत्रुओं का मर्दन कर जिन्होने मित्रविन्दा को पत्नी बनाया, उन प्रभु की जय हो ।

नाग्नजितीश्वरः –

सत्याख्यां तनयां जजान नृपतिःश्रीकोसलाधीश्वर–
उद्वाहावसरे चकार समयं जेतुं वृषान्-सप्तकान् ।
दुर्धर्षानवमथ्य सप्ततनुधृक् राजन्य-हर्षं-दधत्
सत्येच्छा-परिपूरकः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ।।१८।।

अयोध्या के नृपति नग्नजति ने अपनी पुत्री नाग्नजिती के विवाह के लिये वृषभ नाथने की प्रतिज्ञा की थी, जिन श्रीकृष्ण ने सात स्वरूप धारण कर मदोन्मत्त उन वृषभों को वश में कर 'सत्या' की इच्छा पूर्ण की, उन भगवान् श्रीद्वारकाधीश की जय हो ।

भद्रेश्वरः –

ज्ञात्वा दक्षिणदेश-भूप कुमतिं पैतृष्वसेयो भृशं
भद्राख्यां भगिनीं सुलक्षणवतीं शत्रूंश्च संपीडयन् ।
श्रीकृष्णाय समार्पयच्च मुदितो-जातश्च बन्धुप्रियः
सा नीता शरणं मुदा स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥१९॥

दक्षिण देश के राजा की कुमति देखकर वृषभ से वह भयभीत हुआ और उसने भद्रा भगवान् को प्रसन्नता पूर्वक दी और जिन्होंने अंगीकार किया उन भगवान् की जय हो ।

लक्ष्मणेश्वरः –

जाते नव्य-स्वयंवरेनृपतिभिर्लब्धासनैः-सान्वयैः
श्रीमद्राधिप-भूपतेः सुतनयां सल्लक्षणां-लक्ष्मणाम् ।
भव्यां मण्डपगां जहार बलवान् द्वारावतीं चानयन्
सर्वेच्छा-परिपूरकः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥२०॥

मद्रा स्वयंवर में राजा अपने-अपने आसन पर जब बैठे थे, तब मण्डपस्थ मद्रा का अपहरण कर द्वारका ले जाने वाले भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले भगवान् की जय हो ।

१६१०० पत्नीश्वरः –

भौमाख्योनृपतिर्बभूव भुवने ख्यातो महाशक्तिमान्
यो जग्राह सुरेन्द्रमातुरदितेः-कर्णद्वयोः-कुण्डले ।
प्रासादे च सहस्त्रषोडशमिता वन्दीकृताः-कन्यकाः
तस्यप्राण हरोऽभवत् स जयतु श्री द्वारकाधीश्वरः ॥२१॥

पृथ्वी में एक भौमासुर नामक राजा था जो पूर्ण शक्तिशाली था जिसने देवराज इन्द्र की माता अदिति के कुण्डल लूटे थे। महल में १६१०० कन्या बन्दी बनाई थी। उसके प्राणों का हरण करने वाले श्रीद्वारकाधीश की जय हो ।

नान्यः कोऽपि समाजरक्षण करः कन्यार्ति-वार्ताहरः
कर्ता चापि न विद्यते सुखकरश्चोद्वाहशोभा-परः ।
मत्वेदं नृपकन्यकाभि-रजितःसम्प्रार्थितश्चेश्वरः
सर्वाशा परिपूरकः स जयतु श्री द्वारकाधीश्वरः ॥२२॥

१६१०० कन्याओं को "समाज" पीड़ा देगा, विवाह योग्य न मानेगा, यद्यपि ये निर्दोष एवं शुद्ध हैं, उनके द्वारा प्रार्थना करने पर सबकी आशा पूर्ण करने वाले, भगवान् श्रीद्वारकाधीश की जय हो।

विवाह मङ्गलम्-

एकस्मिन्ननु सद्मनिप्रभुवरः-सूर्जेसिते-पक्षके
देवोत्थापन सत्तिथौ सुविदितेसूर्ये-समस्तं गते।
वैवाहीं विधिमातनोन्ननुमुदा रूपाननेकान्दधत्-
लीला-मानव-रूपधृक् स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥२३॥

एक ही सदन में कार्तिक शुक्ल एकादशी को गोधूलि में सबके साथ विवाह करने वाले लीला मानव रूपधारी, भगवान् द्वारकाधीश जी की जय हो।

प्रद्युम्नलीला-

शय्यायां महिषीवराङ्कलसितंप्रद्युम्न-संज्ञं सुतं
दैत्यः शम्बर नामकोयदुपतेः प्रासादमध्यंगतः।
चौर्येणाथजहार तं रतिपतिं तेनैव मृत्युं-गतः
सर्वाश्चर्यकरो विभुः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥२४॥

एक बार रुक्मिणी की शय्या पर लेटे हुए कामावतार प्रद्युम्न को शम्बर नामक असुर अपकरण कर ले गया था और उसी प्रद्युम्न के द्वारा जिसकी मृत्यु हुई। ऐसे अनेक आश्चर्यों को कराने वाले भगवान् श्रीद्वारकाधीश की जय हो।

अनिरुद्धलीला-

पौत्रस्याप्यनिरुद्धनामक महावीर्यस्य मेधाविनः
बाणाख्यस्य सुकन्यया सह यदा जातश्च प्रेमोत्सवः।
यस्मिन् शंकर-कृष्णयोः समभवत् युद्धं सरोमाञ्चकः
भिन्ना येन रिपोः कराः स जयतु श्री द्वारकाधीश्वरः ॥२५॥

पौत्र अनिरुद्ध का प्रेम बाणासुर कीपुत्री उषा के साथ हो गया और उसके कारण हरि-हर युद्ध हुआ जो बड़ा रोमांचकारी था, उस युद्ध में जिन्होंने बाणासुर के हाथ काट डाले उन भगवान् की जय हो।

जाते पौत्रविवाहमङ्गलमहे पौत्र्या-मुदा-रुक्मिणो-
रुक्मी कैतवमाश्रितोऽहसदहो द्यूते-महानर्थके ।
सञ्जाते विजये बलस्य च तिरस्कारे-कृते-रुक्मिणा
कालिङ्गस्य दतस्तुतोट हलिना श्री द्वारकाधीश्वरः ॥२६॥

अनिरुद्ध के ही विवाह में रुक्मणी ने कपटपूर्ण व्यवहार कर द्यूत का आयोजन किया था और जीतने पर भी बलदेव का तिरस्कार करने पर कलिंग राजा के दांत बल द्वारा तुड़वाने वाले द्वारकाधीश जी की जय हो ।

नृगोद्धारः -

गो दानेद्विज जन्मनो भ्रमवशादाकृष्यदत्ताऽन्यके
धेनोश्चिन्हसुदर्शनेन कलहे प्रारभ्यमाणे तदा ।
तच्छापात् कृकलासतामुपगतं भूपं नृगं कूपकात्
सूद्धार्य स्वपदं ददौ स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥२७॥

नृग राजा ने जिस ब्राह्मण को गाय दान दी थी वही गाय दूसरे ब्राह्मण की थी उनका कलह प्रारम्भ हो गया और शाप मिल जाने से मरकर जो कृकलास की योनि में पड़ गया था उसको कूप में से निकालकर उद्धार करने वाले प्रभु की जय हो ।

पौण्ड्रकोद्धारः -

कारूषाधिप-पौण्ड्रकः-कुनृपतिः कृष्णस्य रूपं-दधद्
दूतं तीव्रजवं यदोः पुरमहो सम्प्रेषयामास वै ।
सत्योऽहं त्वमथो न मुंच विशदां ख्यातिममानिष्टदा
मित्थं वादि-नृपं जघान जयतु श्री द्वारकाधीश्वरः ॥२८॥

करूष देश के राजा पौण्ड्रक ने कृष्ण का रूपही बना लिया था, इतना ही नहीं एक दूत भी द्वारका में भेजा कि मेरा नाम ही वासुदेव है तुम्हारा नहीं है ऐसा कहनेपर जिस मिथ्या वासुदेवका वध किया उन भगवान् श्रीद्वारकाधीशजी की जय हो।

काशीलीला-

तन्मित्रस्य-हरस्य विश्वविदित-प्रासादितायामहो
काश्यामेवनिपातितं भुवि शिरः क्षिप्तं-पुरश्चक्रिणा ।
तत्पुत्रेण सुदक्षिणेन विहितस्तन्त्रप्रयोगोयदा
नष्टो येन महात्मना स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥२९॥

उसका एक मित्र था जो काशी में रहता था उसके उत्पात करने पर नगर को ही ध्वस्त कर उसके शिर का छेदन किया और उसके पुत्र सुदक्षिण का तन्त्र अभिचार समाप्त कर दिया उन भगवान् की जय हो ।

द्वारकावैभवम्-

शिल्पाचार्यविनिर्मितैश्च भवनैः शालासभाऽऽरामकैः
संसिक्ताङ्गण-देहली-पथयुतैः संशोभिते-श्रीपुरे ।
एकेनैव सुविग्रहेण युगपत् सर्वास्त्रियस्तर्पिता
इत्थं योगिवराधिकः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३०॥

विश्वकर्मा द्वारा विनिर्मित भवनों में जिनमें आराम भवन, सभा सुशोभित थीं, एक साथ ही समस्त स्त्रियों को तृप्त करने वाले भगवान् की जय हो ।

नृपोद्धारलीला-

आराध्यो भगवान् मखेन-विधिना इत्येव प्रख्यापयन्
ज्येष्ठः पाण्डु सुतश्चकार यजनं श्री राजसूयाभिधम् ।
तद्व्याजेन जरासुतस्यमरणं भीमेन योऽकारयत्
राज्ञांबन्धनमोचनं स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३१॥

यज्ञ द्वारा प्रभु की सेवा करनी चाहिये इस उद्देश्य सेयुधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का शुभारम्भ किया था इसी व्याज में जिन्होंने जरासन्ध का वध भीमसेन से कराया और राजाओं का बन्धन काटा उन भगवान् श्रीद्वारकाधीशजी की जय हो ।

शिशुपालवधः -

पूज्यः कः प्रथमं मखे तु विधिना प्रश्ने कृते सर्वकैः
पूज्यः स्यात्परमेश्वरः स भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रः स्यम् ।
श्रुत्वेदं शिशुपाल आह परुषं-वाक्यं सुगालीमयं
रुष्टः शीर्षमपातयत् स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३२॥

यज्ञ में किसकी पूजा होनी चाहिये इस प्रश्न पर जब श्रीकृष्ण की पूजा की चर्चा हुई तो शिशुपाल ने विरोध किया और गाली देने लगा क्रुद्ध कृष्ण ने जिसका वध किया उन भगवान् की जय हो ।

शाल्ववधः –

शाल्वः पांसुव्रतं चकार सहसा संवत्सरान्तं यदा
प्राप्तुं भूतपतेः प्रसादजनितं सौभाख्य यानं तथा ।
तत्प्राप्याऽऽशु चकार दुष्टनृपतिर्द्वारावतीमर्दनं
नष्टो येन कटाक्ष-पातन-समं श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३३॥

एक शाल्व राजा था उसने धूलि भक्षण करके शिव को प्रसन्न कर एक सुन्दर सौभ नामक विमान प्राप्तकर लिया था, उसने द्वारकापुरी पर पत्थरों की वृष्टि की उसका शीघ्र ही जिन्होंने वध कर लोक आनन्द मग्न, किया उन भगवान् की जय हो ।

दन्तवक्र-वधः –

मायावी शिशुपालशाल्वदयितस्तत्सौहृदं ख्यापयन्
कृष्ण हन्तुर्मरि करस्थगदया यो दन्तवक्रोऽभ्यगात् ।
दैत्यं तं स विदूरथं निहितवान् श्री माथुरे-मण्डले
सिद्धैः संस्तुतसत्पदः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३४॥

शिशुपाल और शाल्व की प्रिय मृत्यु से खिन्न दन्तवक्र श्रीकृष्ण को मारने के लिये दौड़ा जिन्होंने उसे तथा विदूरथ को माथुर मण्डल में आकर मारा सिद्धों ने जिनकी स्तुति की उन भगवान्की जय हो ।

सुदामचरितम्–

मित्रं यस्य सुदाम-नाम विबुधो लोकेश-तुल्योऽभवत्
येनाऽवन्तिपुरी विलक्षण गुणैर्बाल्येऽपि संपूजिता ।
पुत्रं चानयतागुरोरपि मुदा-कीर्तिश्च यस्याद्भुता
एवंब्राह्मणमानकृत् स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३५॥

निर्धन मित्र सुदामा ब्राह्मण को लोकेशों के तुल्य जिन्होंने किया, जिन्होंने मृत ब्राह्मण पुत्र लाकर दिया और ब्राह्मण का मान किया उन भगवान् की जय हो ?

आसीद्यस्य गृहं बिनापटलकं भ्रष्टैः कपाटैर्युतं
मृत्स्ना निर्मित-भाण्डकैश्च लसितं जीर्णैश्च सच्चीवरैः ।
येनेत्थं स दरिद्रतोऽपि विबुधो देवेशतुल्यःकृतः
एवं ब्राह्मणमानकृत् स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३६॥

जिस सुदामा का घर बिना छत का, कपाट रहित था, मिट्टी से निर्मित पात्र वाला जीर्ण घर था। उसे भी जिन्होंने देवेश तुल्य कर दिया ऐसे ब्राह्मण मान करने वाले प्रभु की जय हो।

ज्ञात्वा दारमुखेनमित्रममलं कृष्णं च द्वारापतिं
दीव्यद्वैभवविश्रुतं सुरवरंसंराजमानं तथा ।
सम्प्राप्तं धनकामुकंद्विजवरं योऽपूजयत् प्रीतित-
एवं ब्राह्मणमानकृत् स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३७॥

अपनी स्त्री से यह जानकर कि कृष्ण मित्र हैं सुदामा ब्राह्मण आये उन्हें राजसी वैभव दान देने वाले भगवान् की जय हो।

वीर्येणाद्भुतवैभवेऽपि सततं शुद्धामतिः सात्विकी
यस्यासीद् यदुनन्दनस्य हृदये वान्छा न राज्यासने ।
प्रज्ञाऽऽसीद् न हि यस्यप्राक्तनमयी सत्संस्कृतिच्छेदने
एवं संस्कृति-पोषकः स जयतु श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३८॥

कुरुक्षेत्रोत्सवः –

अद्भुत वीर्य होने पर भी जिनकी सात्विकी मति थी और जिन यदुनन्दन की इच्छा राज्यासन में नहीं थी जो परम्परा का उच्छेदन नहीं करना चाहते थे, ऐसे संस्कृति पोषक भगवान् की जय हो।

जातश्चैकदिने सुविश्वविदितः सूर्योपरागो-महान्
नन्दादि-व्रजवासिनश्च मुदिताः प्राप्ताश्च सर्वे-जनाः ।
श्रुत्वा तानपि दर्शनोत्सुकमनाः कृष्णोऽपि भार्यायुतो–
गत्वा तत्र पुपूज बान्धवजनान् श्रीद्वारकाधीश्वरः ॥३९॥

सूर्योपराग के समय कुरुक्षेत्र में समस्त व्रजवासियों से मिलकर प्रसन्न होकर उनका सत्कार करने वाले भगवान् की जय हो।

मथुरायां निवासः –

यत्रासीद्वसुदेव-बन्धन-गृहं शूरस्य सन्मन्दिरं
कंसो यत्र हतः स्व मातुलवरः कंकादिभिः संयुतः ।
कुब्जाया-भवनं तथा बुधवराऽऽक्रूरस्य पूजागृहं
त्रैलोक्ये विदिता च या मधुपुरी तत्रागतः पारिखः ॥४०॥

जहाँ वसुदेव का बन्धन हुआ था जहाँ राजा शूर के बड़े बड़े प्रासाद थे, कुब्जा जहाँ रहती थी, अक्रूर जहाँ निवास करते थे, ऐसी तीनों लोक में विख्यात मधुपुरी में पारिख आये थे।

एवं सम्भाषणे सक्तं विदुषां मण्डलं मुदा
पूजयित्वा सुवर्णाद्यैः पारिखो न्यवसत्पुरीम् ॥४१॥

विद्वानों के इस प्रकार स्तवन करने पर सुवर्ण दक्षिणा से पुरस्कार देकर सन्तुष्टकर पारिखजी मथुरा में रहने लगे।

स्वप्ने वृन्दावन गमन प्रस्तावः –

पारिखः स्वप्नमेकं ददर्शाद्भुतं
द्वारकाधीश-उद्बोध्य आह स्वयम् ।
गम्यतां स्वल्पकालाय वृन्दावने
आगमिष्यामि भो राधिका-संयुतः ॥४२॥

पारिखजी ने एक स्वप्न देखा, श्रीद्वारकाधीशजी ने आज्ञा दी कि मुझे वृन्दावन पहुंचाइये मैं कुछ दिवस वहाँ निवास करूँगा और राधिका के साथ आऊँगा।

इति श्री पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये मथुरायां भगवतो वन्दनं नाम अष्टमः सर्गः

इति पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश-महाकाव्य में अष्टम सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ नवमः सर्गः

पारिखः स्वप्ने कृष्ण विलापं श्रुतवान्-

पारिखं भक्तवर्यं च सम्बोधयन्
स्वप्न-मध्ये ह्यवोचच्च द्वारापतिः ।
शीघ्रमेवात्मकृत्यं विधाय स्वयं
भृत्यवर्गं समाहूय विज्ञाप्यताम् ।।१।।

भक्त पारिख को स्वप्न में सम्बोधित करके श्रीद्वारकाधीश जी ने कहा कि आत्मकृत्य करके सेवकों को बुलाकर आज्ञा दे दो वे मुझे वहाँ ले चलें जहाँ मेरी प्रिया राधिका का धाम है।

सर्व-यूथेश्वरी मे च प्राणेश्वरी
राधिका विद्यते दिव्य-भूमौ यतः ।
या हि राज्ञी व्रजस्यास्ति चन्द्रानना
सन्ति दास्यो यदीया हि देवाङ्गनाः ।।२।।

श्रीद्वारकाधीश जी को अपनी व्रज लीलाओं का स्मरण हो आया वे कहने लगे—श्रीराधा मेरी प्राणेश्वरी हैं वृन्दावन में निवास कर रही हैं। देवाङ्गना जिनकी दासी हैं।

यद्दिनाद्गेहतो निःसृतः साग्रजः
कंस सम्मारणायागतो गोपकैः ।
तद्दिनाद् गोपिकाधेनुसन्मण्डलाद्
दूरतां संगतः खिन्नता मे ततः ।।३।।

जिस दिन व्रज को त्यागकर बलराम और गोप गण सहित कंस वध हेतु मथुरा गया उस दिन से गोपी-गाय सभी दूर हो गये हैं अतः मन खिन्न है।

गोपकन्याऽथवा मे सखायस्तथा
गोव्रते दत्तचित्ताश्च प्राणाधिकाः ।
गोकुलं पालयन्तो वसन्त्यत्र ते
गोरसैः-पूर्णकामाश्च मे पूजकाः ॥४॥

गोपकन्या, मेरे मित्र, गोपालन में दत्त-चित्त हैं, मेरे प्राणों से भी प्यारे हैं, गोकुल का पालन करते हैं गोरस परिपूर्ण हैं, मेरी पूजा में भी रत हैं।

यान् विहातुं समर्थोऽस्मि स्वप्नेपि नो
ये मदासक्तचित्ता मदीयात्मकाः ।
यैश्च नित्यं मनो-रञ्जितं मामकं
यत्स्वभावो जनानन्दकारी ध्रुवम् ॥५॥

मैं उन्हें स्वप्न में भी नहीं छोड़ सकता, क्योंकि वे मुझमें सदा आसक्त हैं, मेरा सदा मनोरंजन भी किया हैं उनका स्वभाव भी जनानन्दकारी है।

ये परेषां विषादे विषण्णाः स्वयं
ये प्रसन्नाः परोत्कर्षमालोक्य वै ।
यैश्च गर्वान्वितं भूतलं चातलं
येऽमराणां स्वरूपाः प्रमाणं श्रुतिः ॥६॥

जो पर दुःख सुख में दुखी, सुखी होते हैं, देव स्वरूप हैं और जिनसे भूतल भी गौरवान्वित है, श्रुति भी साक्षी हैं।

वाल्यकालेऽसुराणां विनाशो यदा
निश्चितो मे सहायार्थमत्रागताः ।
पूतना केशि-व्योमादिकानां मृतौ
येऽभवन्मोदमाना स्वदारैर्युताः ॥७॥

वाल्यावस्था में जब मैंने असुरों के नाश का निश्चय किया मेरे सहायक बने पूतना-केशि, व्योमासुर की मृत्यु पर जो प्रसन्न हुए थे।

वृन्दावन गमनाज्ञा वर्णनम्-

मुग्ध भावस्थितानां प्रियाणां पुन–
र्गोपिकानां च चेष्टामितो-वेदितुम् ।
मे प्रयाणं शुभं राधिकाया-वने
प्रापयार्याऽऽशुमां वित्त-युक्तं ततः ॥८॥

भोले ब्रजवासियों की दशा देखने जाना उचित ही है अतः मुझे वहाँ पहुँचा दो ।

गृह्यतां द्रव्य-भाण्डं तथा यानकः
प्राप्यतां सन्निधौ दिव्य-वृन्दावने ।
गम्यतां द्वारकाधीश-सेवात्मना
त्वर्यतामश्वयानादिभिः सादरम् ॥९॥

तब पारिखजी ने अपने सेवकों से कहा, समस्त पूजा के पात्र रख लो, सवारी तैयार करो और पालकी भगवान् की तैयार करो ।

पूजका ! दीयतां मे मनोभाषणे
दुग्धमानीयतां कापिलं-चाज्यकम् ।
शर्करा गव्यकं सारघं-सुन्दरं
शुद्धपंचामृतैः स्नाप्यतां श्रीवरः ॥१०॥

पूजको ! मेरे कथन में मन लगाओ, गो-दुग्ध एवं पंचामृत से श्री के वर (पति) को स्नान कराओ ।

मंगला शोकहा दर्शनीया पुरा
दिव्यश्रृंगारकं हीरकैः संयुतं ।
बाल-भोगस्य संदर्शनंवा तत–
राजभोगोऽपि वा दर्शनीयस्तथा ॥११॥

मंगला-श्रृंगार-ग्वाल-राजभोग के दर्शन यहीं होंगे ।

प्रस्थान मङ्गलम्–

राजभोगं प्रदर्श्यात्र वृन्दावने
विग्रहस्याद्य प्रस्थानकं विद्यते ।
सायमुत्थापनं तत्र कुर्मोवयं
वाक्यमस्माकमापाल्यतां मोदतः ॥१२॥

राजभोग के दर्शन कराकर प्रस्थान होगा और वहां उत्थापन के दर्शन होंगे ।

यद्यपि प्रार्थितं दर्शनं श्रीहरे–
र्माथुरैश्चापि सौविध्यवार्यैस्तथा ।
नैव वृन्दावनं मे मनो वाञ्छति
दास्यभावे न दोषोऽस्ति मे कश्चन ॥१३॥

यद्यपि माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार की सुविधायें दी हैं तथापि प्रभु की आज्ञा से वृन्दावन मन न होने पर भी जाना है ।

सावधाना भवन्तु प्रयाणाय भोः
दार-पुत्रैस्तथा भ्रातृवर्यैः समम् ।
अद्य यामो वयं कृष्ण प्राणप्रिये
दिव्य-वृन्दावने सर्व-सम्पूजिते ॥१४॥

आज समस्त परिवार सहित प्रभु की प्रेयसी श्रीराधा के धाम में चलेंगे ।

जनकौतूहल वर्णनम्–

ज्ञातवृत्ता जनाश्चागता मन्दिरे
बद्धहस्ताः समूचुः स्वयं पारिखम् ।
कारणं किं प्रयाणस्य विज्ञाप्यतां
द्वारकेशः कथं तत्र सन्नीयते ॥१५॥

मथुरा वासियों को, चतुर्वेदी ब्राह्मणों को ज्योंही समाचार मिला वे पारिख जी के पास आये और प्रस्थान का कारण पूछने लगे ।

व्यक्तिदोषोऽथ वा भूमिरल्पा प्रभो !
वस्तु-संगोपने वा भयं तेऽभवत् ।
दुष्ट वाक्यैरथो दुःखित किं मनः
स्वल्पकालेन यात्रा यतः कारिता ॥१६॥

क्या किसी व्यक्ति से आपका झगड़ा है, या पृथ्वी की स्वल्पता है या किसी वस्तु के छिपाने की बात है इतने शीघ्र यहाँ से प्रस्थान का कारण क्या है ?

पारिखः प्राह मान्या ! वचः श्रूयतां
द्वारकेशाज्ञया निश्चितं यानकम् ।
शासनेनाथवा स्वल्प-भूमेश्च वा
कारणेनात्र कष्टं हि मा चिन्त्यताम् ॥१७॥

श्रीपारिखजी बोले—किसी व्यक्ति या शासन का कष्ट नहीं, प्रभु की आज्ञा से ऐसा हो रहा है।

ईश-वार्त्तानभिज्ञाश्च मूढा भृशं
त्यज्यते मण्डलं नैव विद्मो वयम् ।
यश्च भर्ता जगन्मण्डलस्यास्य भोः
सैव जनाति किं तस्य चित्ते धृतम् ॥१८॥

मैं प्रभु की बात क्या जानूँ, जो जगत् के स्वामी हैं वे ही इसका रहस्य जानते हैं।

गम्यतेऽस्माभिरद्यैव वृन्दावनं
किं च चित्ते सुखस्यास्ति नो कल्पना ।
विद्यते भावना मे दृढ़ा मानसे
आगमिष्यत्यहो माथुरे वः प्रभुः ॥१९॥

यद्यपि आज वृन्दावन यात्रा निश्चित है, मुझे सुख नहीं है, परन्तु मेरा विश्वास है कि प्रभु पुनः मथुरा पधारेंगे।

एवमाभाष्य पौरैस्तथा बन्धुभिः
पूज्यमानो द्विजान् पूजयित्वा मुदा ।
स्यन्दनं वीक्ष्य देवेन सार्द्धं तदा
प्रस्थितो भक्त-वृन्दैश्च साकं मुदा ॥२०॥

इस प्रकार समस्त मथुरा वासियों से बात-चीत कर पूज्य ब्राह्मणों का सम्मान कर भगवान के भक्तों के साथ प्रस्थान कर दिया।

नगर निवासिनां विह्वलता वर्णनम्–

चत्वरे हट्ट मध्ये च सभ्याजना
अश्रुपूर्णास्तमालोकितुं संस्थिताः
ऊचुरुद्विग्न-चित्ताः भृशं विह्वला।
हा कथं याति संत्यज्य नः श्रीहरिः ॥२१॥

चौराहे-चौराहे पर बाजार में लोग अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रभु को देख रहे थे और कह रहे थे हां इतनी जल्दी प्रभु हमें छोड़कर चल दिये हैं।

आगरा-देहली विद्यमाने सति
म्लेच्छ राज्ञां वयं कोप-पात्राणि भोः
पुण्यतीर्थानि धर्मस्थलानि प्रभो–
र्मन्दिराणि प्रणष्टानि सर्वाणि नः ॥२२॥

आगरा-देहली के मध्य में निवास होने से म्लेच्छ राजाओं के हम सदा कोप भाजन रहे हैं पुण्यतीर्थ-धर्मशाला मन्दिर सभी तो हमारे नष्ट कर दिये गये।

केशवस्यापि चर्चा न पौराणिकी
"नादिराख्येन" म्लेच्छेन संचूर्णितम्।
ओड़छा-भूपतेर्यो हि कीर्ति-ध्वजं
मन्दिरं-चन्दिरं-नैकधानिर्मितम् ॥२३॥

केशवदेव के मन्दिर की चर्चा भी पुरानी नहीं पड़ी है-नादिरशाह ने नष्ट किया था और जो ओड़छा राजा की कीर्ति का ध्वज है तथा जो अनेकबार बन चुका है।

"अब्दली"-दस्युना कुप्रहारैर्यदा
माथुरं मण्डलं मर्दितं विश्रुतम्।
तद्दिनादद्य यावन्न निर्मापितं
वैभवोच्चं लसच्चोत्तमं मन्दिरम् ॥२४॥

अहमदशाह अब्दाली ने माथुर मण्डल पर कोप किया उस दिन से आज तक इसके निर्माण का अवसर ही नहीं आया।

आगतो गोकुलो भूरि-भाग्यादिह
प्रस्थितो वैभवैः संयुतः पुण्यवान्
भाग्यमस्तं गतं जन्म-भूमेः पुन--
र्येन राजाधिराजो न विश्राम्यति ।।२५।।

भाग्य ही अस्त हो गया तब तो द्वारकाधीशजी आज यहाँ नही रह रहे हैं ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया-वैश्य-शूद्रास्तथा
बाल-वृद्धाश्च तत्रस्थिता-दुःखिनः ।
हा किमेतत् कथं याति भूमिं त्यजन्
चिन्तितास्तत्र संमूर्च्छिता विह्वलाः ।।२६।।

श्री गोकुल हमारे भाग्य से आये और प्रस्थान कर चल दिये । जन्मभूमि का ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र बाल-वृद्ध सभी बड़े दुःखित थे ।

वृन्दावन प्राप्तिः –

भास्करे व्योममध्ये च संराजिते
द्वारकाधीश यानं गतं काननं ।
तत्र निर्मापिते सज्जिते मण्डपे
पूजितो देव सम्पूजितः पूजकैः ।।२७।।

जब सूर्य मध्य गगन में पहुँचे श्रीद्वारकाधीश का यान वृन्दावन पहुँच गया और वहाँ बने सुन्दर मण्डप में प्रभु की पूजा की गई ।

राधिकाया वने राधिकाऽऽराधितो
राधितो राध-माहात्म्य-संराधिकैः ।
राधिकाया अभावोऽपि राधापते–
रोचते नो कदाचित्समाराधने ।।२८।।

श्री राधा के वन में राधिका प्राणपति की आराधना की गई, राधिका के अभाव में राधापति को भी आराधन अच्छा नहीं लगा ।

गोपवृद्धान्समाहूय भक्तो मुहु-
र्गोरसे दत्तचित्तो मुदा ह्यब्रवीत् ।
गोकुले कानने दूरप्रान्तेऽपिनो-
गोधृतं दुग्धकं दीयतां प्रत्यहम् ॥२९॥

गोपालों को बुलाकर पारिख ने कहा कि जितना भी गोरस हो सब यहाँ लाइयेगा ।

मन्दिरस्यैक-भागे द्रुतं गोष्ठकं
स्थाप्यतां धेनुसंघस्तथैवाऽचिरम् ।
नित्यमाज्यं सुगव्यं च गृह्णन्नहो
देवको-सूनुरत्रस्थितो सुस्थिरम् ॥३०॥

मन्दिर के पार्श्व में ही गोशाला बनाइये, गोदुग्ध का ही घृत बनाइये, भगवान् यही सेवन करेंगे ।

स्नान-शिष्टं पयो दीयतां सद्व्रजे
गव्यकश्चापि भोगावसाने पुनः
भक्ष्य-भोज्यं समिष्ठान्नपानैः समं
मण्डलस्थोजनश्चैव सन्तर्प्यताम् ॥३१॥

स्नान से बचा दुग्ध व्रज में देदो, भक्ष्य-भोज्य-मिष्ठान्न सभी को वितरित करो ।

दक्षिणादानम्-

दक्षिणा-कांचनी विप्र-मोदावहा
भोजनान्ते च तेभ्यः सदा दीयताम् ।
वेद-वेदान्त-निष्णात विद्वद्गणः
प्रेमपूर्वं भवद्भिः समाहूयताम् ॥३२॥

भोजन के उपरान्त सुवर्ण की दक्षिणा दान में दी जायगी—वेद के विद्वानों को यहां बुलाइये ।

कथा व्यवस्था–

व्यास-वाणी समायोजिता मन्दिरे
सत्कथा चापि पौराणिकी-वैदिकी
भाग्यवद्भिर्नरै-रात्मश्रेयोऽर्थिभिः
सेवनीया सुधा कृष्ण-सम्बन्धिनी ।।३३।।

मन्दिर में कथा का आयोजन होगा श्रोता भी आवेंगे।

शास्त्रपारं-गतास्तत्त्व-संचिन्तका–
न्यायमूर्धन्य-विद्वद्वराः पण्डिताः ।
संस्थिताः धीरकण्ठेन प्रोचुर्हरिम्
खण्डने मण्डने चापि नित्यं रताः ।।३४।।

शास्त्र के पारंगत विद्वान् आने लगे और धीरकण्ठ से कथा वांचने लगे।

व्यासद्वारा–बाललीला कथा वर्णनम्–

कोऽपि कृष्णस्य राधायुतस्याप्यहो
संगमस्य प्रभा-पूरितां सत्कथाम् ।
गायति प्रत्यहं भिन्न-शास्त्रस्थितां
यत्प्रभावेण जीवो जहाति व्यथाम् ।।३५।।

कोई राधाकृष्ण की कथा वांचता था जिसे सुनकर जीव व्यथा छोड़ता है।

पूतनासोदरोऽप्यत्र नष्टः स्वयं
कृष्ण-हस्त-प्रहारेण रक्तं वमन् ।
अत्र रामानुजेनाहतो वत्सको
वासरूपं धरन् कृष्ण-विद्वेषकः ।।३६।।

एक ने कहा कि पूतना का भाई बक यहीं मारा गया था। यहीं वकासुर मारा गया जो कृष्ण का द्वेषी था।

नागरूपोऽघ-नामासुरः किल्बिषी
हन्तुकामः सुवृन्दावने ह्यागतः ।
वत्सपालान्सवत्सान् मुखे पीडयन्
कृष्ण-संचूर्णितस्तन्मयत्वं गतः ॥३७॥

यहीं अघासुर मारा गया जिसने वत्सों को मुख में रखा और बालकों को भी, परन्तु वह मरकर भी तन्मय हो गया।

स्वस्थ-चित्तो विषण्णः प्रभुं विस्मरन्
यद्गतिं प्रेक्ष्य धाता पुरा विस्मतः।
वत्स-बालान् जहाराऽऽगतान् कानने
कन्दरायां निधायाऽऽशु लोकं गतः ॥३८॥

ब्रह्मा भी जिसकी गतिको देखकर विस्मित हो गया था और कृष्ण के गोप-एवं वत्सों का अपहरण किया था।

ब्रह्मणः कौतुकस्यार्दने सन्मतिं
माधवोऽत्राऽकरोत् नैकधा-रूपधृक्।
वत्स-बालस्वरूपं दधच्चारयन्
वत्सरं यापयामास भक्तेच्छया ॥३९॥

ब्रह्मा के कौतुक के दिन माधव ने उसकी मति की शुद्धि अनेक रूप धारण कर की थी और स्वयं ही बालक व वत्स बन गये थे।

चोरयित्वा धृतान् बालकान् वत्सकान्
कन्दरायां तथा पर्वते वीक्ष्य कः।
प्रापचित्तंभृशं निश्चयेऽप्यक्षमः
कृष्णपादेषु लुण्ठन्नुवाच व्रती ॥४०॥

जब श्री कृष्ण के साथ बालकों को देखा तो कन्दरा के बालकों से उन्हें मिलाया जब एक से ही दिखलाई दिये तो कृष्ण के चरणों में यहीं गिरकर क्षमा प्रार्थना की थी।

गुञ्ज-मालाधरं नीलमेघ-द्युतिं
पोत-सौदामिनी-कान्ति-वस्त्रावृतम्
बर्ह-पिच्छेन कान्तं मुखे सस्मितं ।
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ।।४१।।

गुञ्ज माला को धारण करने वाले, नीलमेघ के समान कान्तिवाले, मयूर पंख का मुकुट धारण किये वंशी के वादक गोपाल को नमस्कार करता हूं ।

कुन्द-हारं गले मस्तके बर्हजं
सत्किरीटं नवं कुण्डले कर्णयोः ।
मौक्तिकं-कंकणं हस्तयोर्धारिणम्
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ।।४२।।

गले में कुन्द काहार, मस्तक पर मोरपंख, सुन्दर किरीट, कानों में कुण्डल, मोती के कंकण, धारण करने वाले वशीवाले को नमस्कार ।

कांचनीं हीरकै-रञ्चितां मुद्रिका--
मङ्गदं दक्षिणे रत्न-सम्पूरितम् ।
धारितं पादयोर्भूषणं नूपुरं
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ।।४३।।

हीरा जड़ित स्वर्ण की मुद्रिका, वाजूबन्द, पैर के भूषणों से शोभित वंशीवाले गोपाल को नमस्कार ।

नासिका-मौक्तिकं प्रोज्वलं कान्तिभि-
र्हारकं चम्पकं कांचनैस्तन्तुभिः
गुम्फितं धारितं वन्यपुष्पैः समं
वंशिका वादकं गोपबालं भजे ।।४४।।

मुक्ता से शोभित नासिका, सुवर्ण धागे में चमक का सुशोभित उज्वलहार धारण किये वंशीधर गोपाल को नमस्कार ।

रत्नदाम-स्फुरत्-किङ्कणो-संयुतं
शोभितं पीत वस्त्रेण हृन्मोहनम् ।
शृंगवेत्रे च कक्षे दधानं मुदा
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ।।४५।।

रत्न जटित करधनी, हृदय को मोहित करने वाला पीताम्बर धारे, कक्ष में शृंग और वेत्र धारण किये हुए वंशी वाले को नमस्कार।

सव्य-पाणौ दुकूलान्तकं सन्दधद्
वन्दितं दैवकैर्नन्दितं बान्धवैः।
बिभ्रतं चन्दनं मस्तके पीतकं
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ॥४६॥

वाम हस्त में दुकूल का छोर लिये, देव बन्दित, बान्धव नन्दित सुशोभित तिलकयुक्त भाल वाले वंशीधर गोपाल को नमस्कार।

हासयन्तं स्वयं गोपबालान् मुदा
यामुनं तीरमासाद्य सत्केलिभिः।
सैंहिकीं वानरीं क्वापिवाणीं वदन्
वंशिका-वादकं गोपबालं भजे ॥४७॥

गोप वालों को हँसाते, यमुनातीर पर क्रीडा करते, कभी सिंह कभी वानरी वाणी का अनुकरण करने वाले वंशीधर गोपाल को नमस्कार।

गोपिका-प्राङ्गणे गव्य-गोलं वहन्
भोजयन्तं कपीन् गोपबालांस्तथा।
वर्तमानं वयस्यैः सदा गोकुले
वंशिका-वादकं माधवं सम्भजे ॥४८॥

गोपिका के आँगन में नवनीत का गोला हाथ में लिये, वानर और गोपग्वालों को खिलाने वाले वंशीधर गोपाल को नमस्कार।

धातुरुद्गीरणं व्यास-हृद्यं तथा
वेद-वेदान्त तत्त्वं महद्भिर्धृतम्।
एवमादीनि वाक्यानि सम्भाषकैः
प्रोच्यमानानि शुश्राव स श्रोतृकः ॥४९॥

इस प्रकार ब्रह्मा के वचनों को जो वेद-वेदान्त के तत्व हैं भक्तजनों ने धारण किये हैं सब के साथ पारिख ने सुने।

यष्टि मुत्तोलयद्भि: सदा कीर्तित:-
स्तोक कृष्णार्जुनाद्यैर्वयस्यैः स्वतः ।
पर्वते वत्स-यूथेन सशोभित:-
सत्यभामाधवो माधवः पातु माम् ॥५०॥

यष्टि उठाते स्तोक- कृष्ण-अर्जुन आदि द्वारा घिरे हुए गोवर्धन पर्वत पर शोभित सत्यभामा के पति माधव रक्षा करें ।

रामचरित्र वर्णनम्-

प्राह कश्चित्सुधी-रामलीलामयं
मानसं मानसे संस्थितं प्रेमत: ।
भक्तमालाभिधं भक्ति-संवर्धकं
भक्त-वर्योऽकरोद्वाचनं तत्र ह ॥५१॥

कोई विद्वान् भगवान् राम की लीला का गान मानस के आधार पर गाता एक भक्त माली भक्तमाल का गायन करते ।

अब्रवीदेकक: पण्डितो मण्डित:
शैल गोवर्धनस्याद्भुतं वृत्तकम् ।
इन्द्र-देवस्य पूजां निरस्यन्नहो
श्रीलगोवर्धनं केशवोऽपूजयत् ॥५२॥

एक पण्डित जी गोवर्द्धन की महिमा कहते कि यहीं इन्द्रदेव की पूजा को हटाकर केशव ने गोवर्धन की पूजा की थी ।

नन्दराजाय शंकाकुलायाऽऽच्युत:
कर्मवादस्य माहात्म्यमाह स्वयम् ।
'नेह नानास्ति' वादेन संतोषयन्
श्रीलगोवर्धनं केशवोऽपूजयत ॥५३॥

श्रीकृष्ण ने शंकाकुल नन्द को कर्मवाद का माहात्म्य सुनाया था और 'नेहनानास्ति किंचन' वाद से शैल गोवर्धन की पूजा की थी ।

"ब्रह्मसत्यं जगच्चापि सत्यं सदा"
वेदतत्त्वार्थमुक्त्वा निजान्मोहयन् ।
"सर्वभूतान्तरात्मा" श्रुतिः शाश्वती
कोऽयमिन्द्रो गवां प्राह तं क्षोभयन् ।।५४।।

'ब्रह्म सत्य है जगत् भी है' इस तथ्य को वेद-वेदान्त से समझाकर वह सब भूतों का अन्तरात्मा है इस श्रुति का प्रभाव समझाते हुए इन्द्र का निरादर किया था ।

यस्य भासा-विभाति प्रकृष्टं जगत्
यश्च सूर्याऽब्ज-बन्हौ स्वयं राजते ।
चिन्तकः सैव विश्वस्य किं ते भयं
श्रीलगोवर्धनं केशवोऽपूजयत् ।।५५।।

जिसके प्रकाश से समस्त जगत् प्रकाशित है जो सूर्य में चन्द्रमा में अग्नि में भासित है वही विश्व का चिन्तक है आपको क्या भय है, कहकर गोवर्धन की पूजा की थी ।

यद्भयेनैव वायु र्यमोऽग्निः-शशीः
कर्मलग्ना-ह्यतो नैव चिन्तावरा ।
पूजयामोऽत्र संरक्षकं स्वात्मनः
श्रीलगोवर्धनं केशवोऽपूजयत् ।।५६।।

जिसके भय से वायु-यम-अग्नि-चन्द्र-कर्म में लग्न है, उसी सबके संरक्षक गोवर्धन की पूजा केशव ने की ।

वर्तमानं त्यजन् भावि-गर्भेमतिम्
मूढ एवं करोत्येव नो सज्जनः ।
पूजनीयश्च प्रत्यक्ष-देवो हि नः
श्रीलगोवर्धनं केशवोऽपूजयत् ।।५७।।

वर्तमान को त्यागकर भविष्य की आशा व्यर्थ है यह मूढों का काम है सज्जनों का न ीं, प्रत्यक्ष देव गोवर्धन पूज्य हैं, यह कहकर गोवर्धन की पूजा केशव ने की ।

मान्यतां मे वचो धार्यतां सद्रति-
र्गम्यतां पुत्र-पौत्रादिभिः संवृतैः ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो-
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥५८।

मेरे वचनों को मानकर पुत्र पौत्रादि के साथ देवोंपम गोधन के प्रिय गोवर्धन की पूजा करनी चाहिये ।

कन्दमूलादिभि-र्निर्झरैश्चापि यो
गोप-गोपीजनानां प्रियो बान्धवः
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो-
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥५९॥

जो कन्द-मूलादि से निर्झरों से गाय-गोप-गोपीजनों का प्रिय बान्धव है उसी देवोपम गोधन प्रिय गोवर्धन की पूजा करनी चाहिये ।

कन्दराभिर्दृढाभिश्च यः सन्ततम्
वातवर्षादिभिर्नः समुद्धारकः ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो-
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६०॥

जो दृढ़ कन्दराओं से वात वर्षा आदि से सब का रक्षक है उसकी पूजा करें ।

पादपैरन्वितो वानरैः सेवितो-
ऽगस्ति सम्पूजितो द्रोणपुत्रोमहान् ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो-
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६१॥

जो वृक्षों से घिरा है बानरों से सेवित है, अगस्ति मुनि से पूजित द्रोणाचल का पुत्र है उसकी पूजा करो ।

मानसी गंगया शोभितोरःस्थल-
राधिका-कृष्णकुण्डेऽक्षियुग्मंवहन् ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोंपमो-
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६२॥

मानसी गंगा से शोभित उर वाले राधा कुण्ड-कृष्णा कुण्ड नेत्र वाले गोधन रक्षक को पूजो ।

"पूंछरीकौ सखा" यत्सुहृत्सम्मतो–
देवदारुप्रियो धातुभिर्भूषितः ।
पूजनीयः प्रत्यनेन देवोपमो
गोधनस्य प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६३॥

'पूंछरी कौ लौठा' जिसका सुहृत् है अनेक, देवदारु के वृक्षों से सुशोभित, अनेक धातुओं से जो मण्डित है, उस गोधन प्रिय की पूजा करो ।

यस्त्र शालावृका-वन्दिनो विश्रुताः
सप्तभिः क्रोशकै-दोर्घता सम्मिता ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६४॥

शाला वृक जिसके वन्दीजन है सात क्रोश दीर्घकाय है उसे पूजो ।

सैनिकाः केशरि-व्याघ्रगण्डादयो–
भान्ति सत्वोत्कटाः शान्तभावस्ततः ।
पूजनीयः प्रयत्नेन देवोपमो
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६५॥

शान्त केशरि-व्याघ्र-गण्डकादि जीव जिसके सैनिक तुल्य हैं ऐसे गोधन प्रिय को पूजो ।

येन वर्षाभया द्रक्षितंमण्डलम्
तेनतत्याज देवाधिपो-दर्पकम् ।
पण्डितः प्राह श्रीलां-कथांवाचयन्
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६६॥

जिसके द्वारा आंधी-वर्षा से मथुरा मण्डल की रक्षा हुई इन्द्र का मान भंग हुआ, ऐसा है यह गोवर्धन इस प्रकार पण्डित जी ने कथा सुनाई ।

दिव्यदेवापगाऽपोभिरिन्द्रादिभि
र्यत्र कृष्णस्य गोविन्द संज्ञा कृता ।
पूजितः सुप्रयत्नेन देवोपमो
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६७॥

जहाँ दिव्य गंगाजल से इन्द्र ने श्री कृष्ण की पूजा की अभिषेक किया उसे पूजिये ।

यत्प्रणामाः सदा मंगलं तन्वते
यत्रराजत्यहोऽद्यापि कृष्णाङ्घ्रिकम् ।
यत्प्रणामस्तु साष्टाङ्गमाकीर्त्यते
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६८॥

जिसे प्रणाम करने से मंगल प्राप्त होता है, जहाँ आज भी श्री कृष्ण के चरणों का चिन्ह है, जिसकी डंडौती परिक्रमा की जाती है, उस गोधन प्रिय की पूजा करनी चाहिये ।

आयताभिश्च वल्लीभिराशोभिता–
सान्द्र-वृक्षादिभिर्वेष्टिता यत्रभूः ।
श्याम-वर्णैः सुदूर्वादलैरञ्चितो–
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥६९॥

लम्बी लम्बी लताओं से परिवेष्टित घने वृक्षों से घिरी पृथ्वी वाले श्याम वर्ण दूर्वा दल से अञ्चित गोवर्धन पूजनीय है ।

प्रावृडम्भोधराधिष्ठितः सानुमान्
वामनस्यानुकारं करोत्येव भो ।
पादपा राजमाना यथा साधवः
गोधनस्य-प्रियो नाम गोवर्धनः ॥७०॥

वर्षाकालीन मेघ जब शिखर पर आता है, तो जो वामनावतार का स्मरण दिलाता है, जहां के वृक्ष साधु जैसे हैं, ऐसा है गोधन प्रिय गोवर्धन ।

आगता वंशिका रागतो गोपिकाः–
क्रीडनार्थं प्रियेणाहृता यत्र वै ।
मानिनी राधिका यत्र रुष्टाऽभवत्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥७१॥

रासार्थ वंशी के राग से खिंची जहाँ गोपी चली आई थीं, जहाँ मानिनी राधिका रुष्ट हुई थी, वही यह गोवर्धन है ।

यत्र राधापतेर्दुग्ध-पानेच्छया
पादपा द्रोणपत्रैर्युताः सम्बभुः ।
आकृतिर्विद्यतेऽद्यापि तात्कालिकी
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥७२॥

जहाँ राधापति की दूध पीने की कामना से वृक्ष पत्रों को दोना के आकार में उत्पन्न करते हैं, ऐसा सुखदाई गोवर्धन शोभित है ।

चन्द्रिका-धारिणी चन्द्रिकाभामयी–
चन्द्रकान्ता-सखी यत्र चन्द्रावली ।
चम्पकस्रक्-चयेनाऽऽर्चयच्चाच्युतं
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥७३॥

चन्द्रिका धारिणी चन्द्रिका की आभा वाली चन्द्रकान्ता सखी चन्द्रावली चम्पक माला से जहाँ अच्युत की पूजा करती थी, वही सुखदाई गोवर्धन है ।

राधिकां रासलीला प्रसङ्गे यदा
कृष्ण आहांसकं मे समारुह्यताम् ।
वीक्ष्य कामप्रभावं ततः कौतुकी
यत्र चान्तर्हितः सैव गोवर्धनः ॥७४॥

रासलीला में जब राधिका थक गईं तब कृष्ण ने कहा आइये मेरे कंधे पर बैठिये, कामवशी जानकर जब राधा बैठने आईं तब अन्तर्हित हुए थे, वही यह गोवर्धन है ।

हा रमानाथ ! गोविन्द ! प्राणाधिक–
प्रेष्ठ ! बन्धो ! विहायात्र मां कानने ।
वर्तसे क्व प्रभो ! देहि सन्दर्शनं
यत्र राधाऽब्रवीत् सैव गोवर्धनः ॥७५॥

जहाँ कृष्णा के अन्तर्द्धान होने पर राधा ने हा रमानाथ ! गोविन्द, प्रियबन्धु, मुझे दर्शन दो कहा था, वही यह गोवर्धन है ।

इन्दिरा जन्मनस्ते वसन्ती भृशं
शून्यमात्म-स्थलं ज्ञापयन्ती स्वयम् ।
सद्व्रजं गौरवैर्वर्द्धयन्ती मुहु–
र्यत्र गोप्योऽब्रुवन् सैव गोवर्धनः ॥७६॥

जहाँ गोपियों ने कहा था, कि लक्ष्मी आपके जन्म समय से ही यहाँ निवास करती है, व्रज का गौरव बढ़ाती है, वही यह गोवर्धन है ।

रासवर्णनम्–

कालियक्ष्वेडके नात्मनोबान्धवा
रक्षिता व्याल-वर्षादिभिर्नैकधा ।
घोर कष्टे निपात्यात्र क्वान्तर्हितो
यत्रगोप्योऽब्रुवन् सैव गोवर्धनः ॥७७॥

जहाँ कालिय नाग के विष से गोपों की रक्षा की अनेक आपत्तियों से व्रज को बचाया था, हा कहाँ गये ऐसे गोपियों के शब्दों से पूजित यह गोवर्धन है ।

राधाकृष्ण लीला वर्णनम्–

राधिका चोरयद् यत्र वेणुं मुदा
येन कृष्णो जगाद प्रिया-सम्मुखम् ।
नौमि ते पादकं देहि मे वेणुकम्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥७८॥

जहाँ श्री राधा ने कृष्ण की वंशी चुराई थी, ओर कातर कृष्ण ने राधिका के चरणों में झुक कर वंशी मांगी थी, वही यह गोवर्धन है ।

एकदा कृष्णरूपा विशाखासखी
गा गृहीत्वागऽऽता गोपबालैर्युता ।
यां विलोक्यागतां विस्मिताश्चाभवन्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥७६॥

एक बार विशाखा सखी श्री कृष्ण का रूप धारण कर गाय-ग्वालों को साथ लेकर उपहास करने आई और जिसे देखकर सभी ग्वाल चकित रह गये थे, वही यह गोवर्धन है ।

गोपिका प्रीयमाणास्तमूचुः प्रियं
स्थापिता वंशिका भोस्त्वया कुत्रवै ।
सा च वक्षस्थलं वीक्ष्य लज्जां ययौ
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८०॥

'गोपिकाओं ने कहा अरे आपकी वंशी कहाँ गई' यह सुनकर विशाखा ने जो अपने वक्ष की ओर देखा तो उरोजों को देखकर लज्जित हुई थी, वही यह गोवर्धन है ।

कृष्ण-सर्पेण दष्टा यदा राधिका
क्ष्वेड-हारिस्वरूपेण कृष्णस्तदा ।
तां-ररक्षाथ हालाहलाद्यत्र वै
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८१॥

राधा को नाग ने डंस लिया इस लीला में जब कृष्ण विष दूर करने हेतु सपेरे के रूप में गये थे, यह वही गोवर्धन है ।

कंङ्कणं काचकं धार्यतां हैमकं
राजतं माणिकं वा सुमुक्तामयम् ।
"आलिहारी" स्वरूपो जगादाच्युतो-
राजते सोख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८२॥

'चूड़ी पहनो चूड़ी' इस उच्चारण को करते लिलिहारी के रूप धारण करने वाले कृष्ण ने जहाँ क्रीडा की थी, वही यह गोवर्धन है ।

गोपयः-शुल्कदानं बिना नो गतिः
शासकाऽऽज्ञा समुल्लङ्घनं नोचितम् ।
गोपिकाभिश्च यत्राऽकरोत्वाग्रणम्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८३॥

गोपियों से ज़हाँ माखन का कर माँगा जाता और चटपटी बातें उनसे की जातीं थीं, यही वह गोवर्धन है ।

यत्र गोविन्दपादारविन्दं सदा
ब्रह्मरुद्रेन्द्रदेवास्तपःसाधनैः ।
दृष्टुकामा निवासं मुदा भेजिरे
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८४॥

जिस भूमि के श्री कृष्ण के दर्शन हेतु ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्र आदि देव निवास करते थे, वही यह गोवर्धन है ।

यत्र नन्देच्छया तीर्थ-पुण्याद्रिकान्
सेतुबन्धं प्रयागं तथा पुष्करम् ।
विग्रहान् भारते विश्रुतानाह्वयज्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८५॥

नन्द की तीर्थेच्छा पूर्ति हेतु जहां श्री कृष्ण ने सेतु वन्ध-प्रयाग-पुष्कर आदि विख्यात तीर्थ प्रकट कर दिये थे, वही यह गोवर्धन है ।

"बद्रि"नाथोऽपि वा यत्र संराजते
पर्वताग्रे च केदारनाथः स्वयम् ।
पुण्य गंगालका ब्रह्मपुत्री तथा
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८६॥

जहां बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, ब्रह्मपुत्र आदि विराजमान हैं, वही यह गोवर्धन है ।

काम्यके कानने यत्र भूताधिपः
स्वैर्गणैः संयुतो राजते नित्यशः ।
प्रेतभूतादयो नृत्यमातन्वते
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८७॥

जिसके समीप काम्यकबन (वर्तमान काम्बन) में भूताधिपति अपने गणों के साथ विराजते हैं, प्रेतादि जहाँ नृत्य करते हैं, यही वह गोवर्धन है।

श्रीनाथजी प्राप्ति वर्णनम्–

श्रीयुतो-वल्लभो यत्र स्वेच्छागतः
स्वप्न-मध्ये ददर्शाद्भुतं विग्रहम् ।
"श्रीजिबाबा"भिधं भूतले संस्थितं
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८८॥

जहाँ श्री वल्लभाचार्य स्वेच्छा से ही आये थे, और स्वप्न में जिन्होंने श्रीजी बाबा के दर्शन किये थे, वही यह गोवर्धन है।

आज्ञया विप्रवर्यस्य शीघ्रं मुदा
उत्थितः सत्वरं प्राप श्रीनाथकम् ।
यत्र-गो-दुग्ध-धारा भिषेकोऽभवत्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥८९॥

ब्राह्मण की आज्ञा से श्री वल्लभ वहाँ गये जहाँ गाय दूध की धारा डालती थी, वही यह गोवर्धन है।

पूज्यते यत्स्वरूपं महा-वस्तुभिः
प्रत्यहं दुग्ध-यूपादि-शाल्यादिभिः ।
यत्र शेते सदा राजदेशं त्यजन्
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९०॥

अन्नकूट छप्पन भोग आदि विविध भोगों से जिसकी पूजा की जाती है, और जो राजस्थान को त्यागकर श्रीजी बावा यहीं शयन करते हैं, वही यह गोवर्धन है।

(ऐसा कहा जाता है कि नाथद्वारा में शयन के दर्शन नहीं होते वे गोवर्धन में होते हैं ।)

यत्र जातो हरिः स्वप्रकाशाय वै
तं च हातुं न शक्तो वभूव स्वयम् ।
स्वप्तुमायाति सायं सदा यत्र हि
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९१॥

जहाँ श्री कृष्ण प्रकट हुए उस प्रिय भूमि को कैसे छोड़ें, अतः वे शयन करने आते हैं, वही यह गोवर्धन है।

दुग्ध-धाराभिरद्यापि नियं प्रभो–
विग्रहस्याभिषेकोत्सवो दृश्यते ।
यत्र भोगोऽन्नकूटैः सदा शोभते
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९२॥

जहाँ आज भी मनों दूध की धार से अभिषेक होता है, बड़े-बड़े अन्नकूट आदि के आयोजन होते हैं, वही यह गोवर्धन है।

वाल्लभानां तथा वैष्णवानां धनं
प्राणतोऽपि प्रियो यत्र नाथाधिपः ।
सौख्यमा मन्यते गोप-बालैर्युतः
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९३॥

जो वल्लभ सम्प्रदाय वालों का परम धन है, अन्य वैष्णव भी जिसका मान करते हैं, जहाँ प्राणों से भी प्यारे श्री नाथ देव हैं, वही यह गोवर्धन है, जो गोप गायों से सुख मानते हैं।

श्रीचैतन्य परिकर वर्णनम्–

यत्ररूपादयः कृष्णपादानुगा–
भक्त-भूपाल वृन्दैः सदा संस्तुता ।
बंग-देशं विहायापि यत्राऽऽगता–
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९४॥

जिसके प्रान्त में श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी प्रवृत्ति गोस्वामी गण 'वंग देश को त्यागकर आकर बसे, वही यह गोवर्धन है।

यत्र गोपाल-भट्टादयो वैष्णवाः
कृष्ण-सेवारता-भोग-हीनाः स्वयम् ।
कृष्ण-कृष्णेति जापं विचक्रु र्भृशं
राजते सौख्यदः सैव गोवर्धनः ॥९५॥

जहाँ समस्त भोगों को त्यागकर गोपालभट्ट प्रभृति वैष्णवों ने निवास किया, श्री कृष्ण का जाप किया, वही यह गोवर्धन है।

प्रेष्ठ-भक्तैर्युतस्तीर्थसंरक्षक:
केकि-कण्ठेन श्रीकृष्णचन्द्रं स्मरन्।
यत्र चैतन्य-देवोऽपिभावैस्ततो–
राजते सौख्यद: सैव गोवर्धन: ॥९६॥

जहाँ सुन्दर कण्ठ से प्रिय भक्तों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण का कीर्तन कर भावों में भर जाते थे, वही यह गोवर्धन है।

राधिका-नूपुरैरङ्कितां संदृढां
श्रीशिलां कज्जलीं शक्र हस्त्यङ्घ्रिकम्।
वीक्ष्य योऽदर्शयच्चिन्हमन्यच्च सत्
राजते सौख्यद: सैव गोवर्धन: ॥९७॥

जहाँ की शिला श्री राधा रानी के नूपुरों के चिन्ह से चिन्हित है, जहाँ कजली शिला है, जहाँ ऐरावत हाथी के पैर का चिन्ह है, ऐसा जहाँ चैतन्य प्रभु ने प्रत्यक्ष किया था, वही यह गोवर्धन है।

भक्तानां-वर्णनम्–

सूरदासस्तथा नन्ददासादय:
काव्यसंसार-धातृ स्वरूपंगता:।
कृष्ण-लीलारता यत्र सम्मोहिता
राजते सौख्यद: सैव गोवर्धन: ॥९८॥

जहाँ सूरदास-नन्ददास-कुम्भनदास-गोविन्दस्वामी-छीतस्वामी आदि ने अपनी काव्य रचना पल्लवि की थी और कृष्ण लीला में रत रहते थे वही यह गोवर्धन है।

यत्र गोप्य: सुतान् स्वापयन्त्यो गृहे
कृष्ण-गोपाल वार्ता कथा-श्रावणै:।
रासलीलानुकारै: स्मरन्ति प्रियं–
राजते सौख्यद: सैव गोवर्धन: ॥९९॥

जहाँ व्रजाङ्गना आज भी अपने बालकों को शयन कराते समय बालगोपाल-कृष्ण की बाललीलाओं को सुनाती हैं और रासलीला के अनुकरण द्वारा अपने प्रिय को ही मानो ढूंढती हैं, वही यह गोवर्धन है।

प्रतिदिनमसुरारेः पुण्यलीला-कथाभि–
र्विबुधवर-वचोभिः संकुलं मन्दिरं तत्।
विपिन-गमन श्रद्धासंगिनः पारिखस्य
हृदयमतुलहर्षात् पूरितं संबभूव ॥१००॥

इस प्रकार प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीला कथाओं से व्याप्त मन्दिर में पारिखजी निवास करते थे। कथा सुनकर एक दिन वृन्दाविपिन में भ्रमण करने की इच्छा आविर्भूत हुई, उनका हृदय वृन्दावन के गौरव से भर गया।

इति प० श्री श्रीवर शास्त्रि सूनु श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये गोवर्धन-वृन्दावन लीला कथा वर्णनं नाम नवमः सर्गः

श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश-महाकाव्य में नवम सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ दशमः सर्गः

पारिखस्य विपिने भ्रमणम्-

प्रातरुत्थाय भक्तो वै पारिखो गोकुलो मुदा ।
वृन्दावनं निकुञ्जाढयं गतो द्रष्टुं स कौतुकः ॥१॥

प्रातःकाल पारिखजी उठकर वृन्दावन की निकुञ्जों के दर्शन की लालसा से चल दिये ।

कुञ्ज शोभा वर्णनम्-

क्वचिज्जलं नीलसरोरुहैर्लसत्
सुशोभितं मौक्तिक-रत्न पूरितम् ।
सु दीर्घिका-हंस-रुतैर्मनोरमा
क्वचित्प्रशान्ता रमणीव मण्डिता ॥२॥

कहीं जल में नीलकमल थे, कहीं सरोवर मुक्ताओं से पूरित था, तो कहीं बावड़ी हंसों की ध्वनि से शोभित थी, कहीं शान्त रमणीकी भाँति दिखलाई देती थी ।

पक्षि-वर्णनम्-

क्वचिच्छुको नीड-गतो विराजते
क्वचित् खगः कूजनकैर्विभासते ।
सुरम्य-शाखान्तरितो मयूरको-
निजां प्रियामाह्वयति प्रमोदते ॥३॥

वन के वृक्षों के नीड में कहीं शुक तो कहीं पक्षियों का कलरव, कहीं रमणीक वृक्ष की शाखा पर प्रिया को रटता मयूर शोभित था ।

कपोत-स्वभाव वर्णनम्-

कपोतराजोऽपि प्रियामनुव्रतः
स्व पक्ष सन्ताडन कर्मणा भृशम् ।
अधोमुखः क्वापि सु गर्व-मस्तको
बभौ प्रभाते यमुनातटान्तिके ॥४॥

कहीं कपोत अपनी प्रिया का अनुगमन करता अपने पंखों को फटकारता। कभी नीचे की ओर मुख किये, कभी गर्व से अपना मस्तक ऊँचा किये यमुना तट पर अच्छा लग रहा था।

प्रकृति-वर्णनम्-

कल्हारमिन्दीवर-करवादयः
सहस्रपत्राणि च पद्मिनो तथा ।
तरंगिणी शंवल-खण्ड-मण्डितां
विभान्ति सर्वे विपिने दिनोदये ॥५॥

वृन्दावन में कल्हार, इन्दीवर, कैरव, सहस्रपत्र, पद्मिनी सभी जाति के कमल थे। तरंगों से आई काई से दिनोदय के समय और भी शोभा बढ़ा रहे थे।

जलचर-वर्णनम्-

जले क्वचित् किंचुलकोऽवहारकः
स मद्गुराः दर्दुर-कच्छपादयः ।
तरंग-संग-प्रकरैर्नतोन्नता
सु शोभमाना वितरन्ति कौतुकम् ॥६॥

जल में कहीं केंचुआ थे, तो कहीं घड़ियाल, कहीं मछली, तो कहीं मेंढ़क और कहीं कच्छप, ये सब तरंगों के साथ ऊपर आते नीचे जाते बड़ा कौतूहल उत्पन्न कर रहे थे।

नानाजीव-वर्णनम्-

मयूर-केकाभिरहो वनस्थली
सु-कूजकैर्हंस-रथाङ्ग-मिश्रितैः ।
लयाश्रिता नाटक-भूमि-रूपिणी
सुशोभते रंगमयीव भूमिका ॥७॥

मयूर, हंस, चक्रवाक के कूजने से मिलकर वनस्थली ऐसी लग रही थी मानो लयाश्रित नाटक भूमि में रंग स्थली की भूमिका हो।

नानौषधि वर्णनम्-

अनोकहानां च शिखासु संस्थिता
शुभाऽमला-हैमवती-पचम्पचा ।
महौषधं चाथ शतावरी-बला
विभान्ति रास्ना-मधुयष्टिका-गुडा ॥८॥

वृक्षों की शिखाओं पर, आमलकी, वचा:, दारुहल्दी, सुण्ठी, रातपरी, वरियारा, रासन, सुलैठी और सेंहुड की लता कहीं सुशोभित थीं।

वनस्पति-वर्णनम्-

क्वचिन्निकुञ्जे शकुलादनी-मिसिः
क्वचिद् विडङ्गं कदली-गवेधुका ।
समुद्गपर्णी मुसलीक्षु-गन्धका
खराश्वका भाति महासहा-युता ॥९॥

निकुञ्ज में कहीं जलपीपरी, सौंफ, वायविडंग, कंकही, गोहुवां, वनमूँग, मुसली, तालमखाना, अजमोद और कटसरैया सुशोभित थीं।

सतिन्तिडी-सर्जक-पारिभद्रकैः
फलेरुहा-रोचन-नक्त-मालकैः ।
स गर्दभाण्डेंगुदि-चर्मि-पूतिकै-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥१०॥

वृन्दावन में कहीं चिचा-विजयसार-देवदारु-पाढरि-कालासेंमर-करंज-गँठी इमली-गोंदी-भोजपत्र-काँटेदार कंजा से शोभित था।

क्वचिन्निकुञ्जे ह्यमृता द्रुमोत्पलैः
कुरण्टकै-रोचन-वर्धमानकैः ।
कुटन्नटैः गंधफली-कपीतनै-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥११॥

हर्र-कर्णिकार-सेमरगोंद-एरण्ड-आँवला-काँकुनी-कालासीसम आदि से वृन्दावन नवीनता से विराजमान था।

निकोचकैस्तिन्दुक-काकतिन्दुकैः
श्रीपर्णिकाऽऽम्रातक-देव-वल्लभैः ।
सवञ्जुलैः पर्कट-तिल्वशीतकै-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।१२।।

कहीं पिस्त, तिंदुक, कुचला, कायफल, अमरा, नागकेसर, अंबाड़ा, बरगद, लोध्र बहुवार (नसौड़ा) आदि सुशोभित थे।

उदुम्बरैर्वैणव-तिक्तशाककैः–
विकङ्कतै-र्झाटल-मोक्ष-मुष्ककैः
मधुद्रुमैः कांचन-वैजयन्तिभि–
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।१३।।

कहीं वृन्दावन का नवीनवन गूलर फल, बरना, कठैर, कालीपाढरी, लोध्र विशेष, मधूक पुष्प, मधु, चम्पक और जाही से सुशोभित था।

क्वचिद्रसालै-र्मधु-शिग्रु-लोध्रकै–
ररिष्टकैश्चम्पककै-र्महाद्रुमैः ।
मधूलिका हिज्जल फल्गु-तन्तुभि–
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।१४।।

कहीं वृन्दावन आंब, जीवन्ती, शिग्रु, लोध्र, नीता, चम्पा, महाद्रुम, चिनार, कटहल, कटूंबरि और वल्लितन्तुओं से अच्छा लग रहा था।

अवल्गुजैः कृष्णफलांघ्रि-पर्णिका
निदिग्धिका-धावनि वासकादिभिः ।
सुषेणिका-क्रीतकिका-कणादिभि–
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।१५।।

कहीं बकुची, छोटीपीपर, भटकटैया धावनि, वासका (रूसा) निसोत, नील, गजपीपरी से वृन्दावन की शोभा बढ़ रही थी।

स कीचकैः पोटगलैः कुथादिभिः
सग्रन्थिलैर्बाल-तृणादिभिस्तथा ।
खर्जूरकैर्बल्वज-पूगकैर्वृतं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।१६।।

कहीं बाँस थे तो कहीं नरकुल, कहीं डाभ थे तो कहीं व्रज के प्रसिद्ध करीर वृक्ष कहीं खजूर तो कहीं सुपाड़ी शोभायमान थी।

सुकीरकैः पादप पंक्ति-संस्थितै-
र्विदारितै-र्जम्बु-फलैश्च भूषितम्।
वनप्रियैस्तित्तिर-वर्तिकादिभि-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम्॥१७॥

वृक्षों पर बैठे तोतों के द्वारा जामुन तोड़-तोड़कर नीचे डाली गई थीं कहीं कोयल, तीतुर और बतक से शोभा बढ़ रही थी।

सुवानरैः कृष्णमुखैश्च कम्पितै-
र्निपातितैः पुष्प-पराग-धूलिभिः।
सुपीडितलादि-लवङ्ग-पत्रकै-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम्॥१८॥

वानरों-लंगूरों द्वारा गिराये गये कहीं अनेक पुष्पों के पराग झरे पड़े थे उनके द्वारा इलायची लवंग के पत्र भी गिराये गये थे, उनसे वृन्दावन बड़ा ही प्रिय लग रहा था।

विभासितैर्कानन-कुञ्जहर्म्यकै-
रिवाद्वितीयैर्ननु राज-वन्दितम्।
सु पल्लवैः कोमल पुष्पकैः फलै-
र्विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम्॥१९॥

काननस्थ कुञ्जों से ज्ञात होता था कि ये राजभवन हैं, सुन्दर पत्र, कोमल पुष्प, फल, सबसे वृन्दावन की शोभा बढ़ रही थी।

नाना-पशु-वर्णनम्-

मृगेन्द्र-खड्गेभ-विनादितैः शुभै-
स्तथाऽऽखुभुक्-वञ्चक-घृष्टि संगतैः।
मनोरमैः क्रीडनकैरिवप्रियं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम्॥२०॥

कहीं सिंह, गैंडा, हाथी की ध्वनि तो कहीं बिडाल, शृगाल, सूकर विभिन्न क्रीडाओं से वन की शोभा बढ़ा रहे थे।

वृन्दावन-शोभा-वर्णनम्-

स वायुवेगैः कृत-ताल शब्दकैः
समित्कुशैः कण्टकितैरहर्निशम् ।
विवाह-संसक्त-धरेव मण्डितं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥२१॥

वायु वेग से पत्ते हिलते वहीं मानो ताली बजाते, समिधा कुशा से व्याप्त भूमि मानो रोमांचित हो रही थी ऐसा ज्ञात होता था, मानो विवाह की भूमि है।

सक्रूर सत्वं च मुनिः प्रसेवितं
सपुष्पवत् यच्च पवित्र-पुण्यदम् ।
सराग-युक्तं च विरागवर्धितं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥२२॥

क्रूर सत्त्व थे तब भी मुनियों से सेवित भूमि थी, (रजोयुक्त) थी, किन्तु पवित्र थी, रागयुक्त थी विराग को बढ़ाने वाली थी। ऐसी थी वृन्दावन की भूमि।

सुरासुरैः स्वैर्मुकुटाग्र-कोटिभिः
सुसेवितं पर्वतकन्दरैर्युतम् ।
महामुनि-व्रातमनन्त-मानदं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥२३॥

जहाँ के पर्वत की कन्दरा भी सुर और असुरों के मुकुट की अग्र कोटि से सेवित थी ऐसा महामुनियों को आनन्ददायी वह वृन्दावन बड़ा ही शोभित लग रहा था।

सुचन्दनैरेव धृतोर्ध्व-पुण्ड्रकं
सुनिर्झरैरर्घ्य-परंपरा-चितम् ।
सुसत्त्व-संचालन योगि-वृत्तिमत्
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥२४॥

चन्दन के वृक्ष ही मानो ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक है, झरना ही मानो अर्घ का पानी है, सुन्दर सत्त्वों का विचरण ही योगियों की वृत्ति है, ऐसा था वृन्दावन।

क्वचिद्विशाखा-रचिते च कुञ्जके
सु पुष्य-शय्यापि विराजते तराम् ।
सु-सज्जनैः सेवित-पादपैर्युतं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।२५।।

प्रतीत होता है आज भी विशाखा द्वारा रचित यहाँ पुष्प शय्या बनी है। पादप ही जहाँ के सेवक हैं।

क्वचिल्लता-भूरुह-संकुले-वने
मयूर-हंसादि-पतत्रि-कूजिते ।
सुगायकानामिव मण्डलाचितं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।२६।।

कहीं लता वृक्षों में मयूर हँस आदि पक्षी कलरव कर रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है मानों गायकों की मण्डली ही आ गई हों।

क्वचिद् व्रजाधीश-पदाङ्घ्रि-रेणुभि-
र्विभूषितं कुञ्जपथं रमानुतम् ।
शिवेन्द्र-ब्रह्मादिभिरर्चितंच यत्
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।२७।।

कहीं प्रिय श्री कृष्ण की चरण धूलि से विभूषित कुञ्ज का मार्ग है, जिसकी वन्दना-शिव-ब्रह्मा आदि देवों ने भी की है।

क्वचिच्चगोपी-दधि-मन्थनोत्थितं
निनादमद्यापि श्रुतिं प्रकर्षति ।
ध्रुवं ततो गोपतनूजया चितं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ।।२८।।

आज भी दधि मन्थन के समय गाये गये जिनके गीत कानों को आकर्षित करते है। ऐसी गोपांगनाओं द्वारा व्याप्त वृन्दावन सुशोभित है।

विराजमानाभिरुदार-मूर्तिभिः
प्रकृष्ट-प्रेमप्रवणाभिरर्चितम् ।
कुमारिका-रूपधराऽमरैर्नुतं
विभाति वृन्दा-विपिनं नवं नवम् ॥२९॥

प्रकृष्ट प्रेम से अर्चित उदारमूर्ति कुमारिका रूपधारी देवों से नमस्कृत वृन्दा-विपिन सुशोभित है।

पतत्रि-संकूजितमच्युताक्षरं
मयूर-केकाभिरनन्तरं ततम् ।
विलोकयन् कुञ्ज-महा-महोत्सवम्
समाजगामाशु तटस्थली वरम् ॥३०॥

पक्षियों द्वारा कृष्णनाम लिया जाता तो मयूर की वाणी से वह और भी बढ़ जाता है ऐसे कुञ्ज महोत्सव को देखते हुए पारिखजी टटिया (तटी) नामक स्थान पर गये।

वहत्यहो यत्र कालिन्दजा नदी
प्रशान्तभावेन तपः प्रभाविता ।
विभूतयो यत्र वसन्त्यहर्निशं
महाभिमाने-रहितामुदान्विताः ॥३१॥

शान्त भाव से जिसके समीप यमुना बह रही है जहाँ अनेक विभूतियाँ निवास करती है जो अभिमान रहित हैं और प्रसन्नचित हैं।

टटिया स्थान वर्णनम्-

तटीस्थलाद् दक्षिण-पक्षिसंकुलं
सरोवरोद्भासित-पादपं-वृतम् ।
किशोरि-कुञ्जोपवनं महत्तरं
विभाति राधा-वरपाद-मण्डितम् ॥३२॥

तटी स्थल से दक्षिण में एक कुञ्ज है, जिसमें एक सरोवर है और अनेक वृक्ष हैं जो पक्षियों से व्याप्त हैं। श्री कृष्ण के चरण चिन्हों से अलंकृत है।

नभः स्पृशत्-कीचक-पादपैर्वृतं
लता-प्रतानैर्ग्रथितं महद्वनम् ।
सुशोभते ध्यानपरायण-प्रभं
न यत्रकोलाहल शब्दमात्रकम् ॥३३॥

आकाश छूने वाले बाँस के वृक्षों से शोभित, लता के प्रतानों से समलंकृत वृन्दावन ऐसा लगता था मानो कोई ध्यान में बैठा है क्योंकि कोलाहल वहाँ नाम मात्र को भी नहीं था ।

दिगुत्तरा यत्र विभाति मन्दिरै-
र्मठादिभिर्नादित घण्टिका स्वरैः
जयेतिघोषाक्षर-मत्त-सन्नरै
स्तटस्थली राजति शोभना वरैः ॥३४॥

उत्तर की ओर मठों में घण्टा नाद हो रहे थे और जयकर से तटी स्थली अत्यन्त सुशोभित लग रही थी ।

राधामुकुन्दस्य च दर्शनोत्सवे
सदा-नुरक्तो हरिदास-पूजकः ।
तदीय-सेवा-व्रत-निष्ठ-मोहनो-
विमोहकोऽभूद्धरिदास-सेवकः ॥३५॥

राधा मुकुन्द के दर्शनोत्सव में सदा अनुरक्त श्री हरिदास जी सन्त हुए थे उन्हीं की परम्परा की सेवा में निष्ठ प्रभु भक्त श्री १०८ मोहनीदास जी महाराज महन्त हुए थे ।

अपूजयद् यो हृदये विहारिणं
सदाऽभिमानैक-धनापहारिणम् ।
निकुंजलीला-रस-पानकारिणं
वृन्दावने धेनु गण-प्रचारिणम् ॥३६॥

जिन्होंने सदा विहारी जी की पूजा की, जो अभिमान धन का हरण करते हैं । निकुन्ज लीला के रसपान में परायण वृन्दावन में धेनुगणों के साथ बिचरने वाले हैं ।

क्रिया-विमुक्तोऽपि जपैक-तत्परो-
विलास-लीलान्तर मग्नमानसः
व्रतोत्सवासक्तजन-प्रसादितो-
बभूव राधा-पद-भक्तिमानसः ।।३७।।

और सब वैदिक कार्य त्यागकर भी जो केवल जप किया करते थे, कृष्ण विलास लीला में जिनका मानस मग्न रहता था। व्रतोत्सवों में सदा आसक्त रहते थे, ऐसे श्री महाराज जी वहाँ निवास करते थे।

जप-प्रभावैकरतो महामना-
स्तपः-प्रभावाज्जितसिद्धिसंचयः ।
विहारि-लीला-रससिक्त-मानसो
बभूव राधापद-भक्तिमानसः ।।३८।।

वे महामनस्वी जप में सदापरायण रहते तपस्या के प्रभाव से सिद्धि जीतने वाले थे, विहारी जी की लीला में जिनका मन सदा लगा रहता तथा ऐसे 'राधा' पद प्रिय नाम या चरण वाले महात्मा वहाँ निवास करते थे।

कदापि कोलाहल-दर्शनोत्सुको-
निकुञ्जसेवा-रस-पान सुव्रतः ।
गतो बहिः सेवक-वारितः प्रभु-
र्ददर्श संघर्षरतान्-कुमानुषान् ।।३९।।

एक बार भारी कोलाहल को सुनकर वे कुञ्ज से बाहर आये, और देखा कि कुछ व्यक्ति कलह में रत हैं।

"टटिया" वृते आश्रमएव निवासेच्छा वर्णनम्-

विचारितं तेन तदा महात्मना
स्वमानसेभक्ति-पथप्रचारिणा ।
बहिर्नगच्छामि तटीय-भूतलात्
लता-प्रतानोद्ग्रथितात् कथंचन ।।४०।।

उन्होंने उसी समय विचार किया कि अब मैं तटी स्थान की सीमा से बाहर नहीं जाऊँगा क्योंकि प्रपञ्च देखने से भजन छूटता है।

प्रभातकाले च प्रदक्षिणादयः
प्रचालिताः पादप-सेवनं तथा।
सभाजिताः कुञ्ज-वयः स शावका-
मयूर-हन्भू-शुक-सारिकास्तथा ॥४१॥

प्रातः काल वे स्थल की ही प्रदक्षिणा करते वृक्षों को सींचते पक्षियों को जलादि प्रदान कर मान देते।

क्रमेण मध्याह्नगते च भास्करे
विहारिदेवस्य प्रसाद-तर्पितः।
ततान गोविन्दपदाब्जरेणुकं
सुशोभितो यश्च तटीयमण्डले ॥४२॥

मध्यान्ह के समय श्री विहारी जी का प्रसाद लेते और गोविन्द के पद से अंकित रेणुकी सेवा करते।

दिनावसाने च विधाय जापकं
गुरूपदिष्टेन तथा च पूजनम्।
चकार नीराजनकर्म सादरं
तथा विहारीजि पद प्रकीर्तनम् ॥४३॥

दिनावसन में परम्परा के अनुसार जाप करते, आरती करते और वाणी का गायन करते थे।

परम्परा या विहिता महात्मभि-
स्तदङ्घ्रि सेवा-रस-लुब्धकैस्तथा।
प्रचाल्यते भक्तवरैरहर्निशं
ददर्श भक्तः परिचारकैर्वृतः ॥४४॥

प्रभु चरण की सेवा में रस मग्न महात्माओं के द्वारा निर्दिष्ट परम्परा का वे पालन करते थे।

न सन्ति सन्तस्तपसि प्रतिष्ठिता–
न सन्ति सद्वैभवदूर-मानसाः ।
प्रवाद-मात्रंत्विति मेविनिश्चितं–
तटस्थली-दर्शनवञ्चकैः कृतम् ॥४५॥

तपस्यारत अब सन्त नहीं हैं त्यागी महात्मा नहीं हैं यह तटस्थली न देखने वालों का ही कथन हो सकता है [वहाँ के महान्तजी परम विरक्त भजनानन्दी सदा रहे हैं आज भी हैं]

विचारयन् पारिखगोकुलामिधः
सभाजयन् सज्जन-भक्तमण्डलम् ।
प्रपूजयन्कीर्तनतत्परान्नरान्
समाययौ नूतन-मन्दिरे निजे ॥४६॥

श्री पारिखजी सज्जन भक्तों की मण्डली को पूजित करते कीर्तनरत मनुष्यों का सम्मान करते अपने नूतन मन्दिर में आ गये ।

सुवर्ण दक्षिणा दान घोषणा वर्णनम्–

हिरण्यमुद्रां स ददाति प्रत्यहं
द्विजोत्तमेभ्योननु दक्षिणासु च ।
उदन्त एष व्रज-मण्डलेऽचरत्
मुदान्वितास्तेन जनाः समन्ततः ॥४७॥

वे प्रतिदिन सुवर्ण की मुहर दान में दिया करते थे यह वृत्तान्त जब व्रज मण्डल में फैला तो अनेक विप्र वहाँ आने लगे ।

ततः समुत्थाय निकेतनाद् द्विजाः
शिशून् समारोप्य निजांस-भोगयोः ।
निमन्त्रणेनाप्त-बला महोदया
ययुः प्रभातोचित-गान-संकुला ॥४८॥

अनेक ब्राह्मण अपने कन्धों पर बालकों को बिठाकर प्रभाती गाते हुए निमंत्रण पाकर पहुंचते थे ।

विप्रक्रिया वर्णनम्-

कश्चित् प्रभाते यमुना-तटे शुभे
करोति सन्ध्यादिक सत्क्रियां मुदा।
तथाऽपरे शंकर-मन्दिरे वरे
चक्रुश्च पूजांविविधां विधानतः ॥४६॥

मार्ग में कोई ब्राह्मण यमुना तट पर सन्ध्या वन्दन करते, कोई शंकर के मन्दिर में विधान से पूजा करते थे।

गताऽपि ये केचन भूसुरोत्तमा
धनार्जनार्थं हि-सपुत्र पौत्रकाः।
समागतास्तेऽपि विहाय यात्रका-
माकर्ण्य तां भोजन दानप्रक्रियां ॥५०॥

जो ब्राह्मण धनार्जन करने को पुत्र पौत्र सहित नगर से बाहर चले गये थे वे भी अपनी यात्रा को छोड़कर भोजन दक्षिणा सुनकर चले आये थे।

चकार विप्रार्चनमार्य गोकुलो
दिने दिने कांचन वस्त्र-भूषणैः।
तुष्टाव द्वाराधिपतिं सुरेश्वरं
कामप्रदं शोक हरं महेश्वरम् ॥५१॥

पारिखजी प्रतिदिन सुवर्ण वस्त्र आदि से विप्रों की पूजा करते थे और सब कामना दायक शोक हरने वाले देवेश्वर श्री द्वारकाधीशजी की पूजा करते थे।

स्वप्ने राधा दर्शनम्-

तत्र क्वचिद्भक्तवरः स पारिखो-
ददर्श स्वप्नं शयनं गतः क्षितौ।
कलिन्दजा-कूल-लताभिरावृते
सुमण्डपे तिष्ठति वार्षभानवी ॥५२॥

एक बार पारिखजी ने स्वप्न में श्री यमुना के तट पर एक लता मण्डप में श्री राधारानी के विग्रह को देखा।

श्रीराधिका प्राप्ति वर्णनम्-

विलोक्य तं स्वप्नवरं स पारिखो–
विहाय शौचादि-क्रियां मुदान्वितः ।
जगाम तत्रैव च यत्र राधिका
ददर्श तेजोभिरसंख्यकैर्वृतम् ।।५३।।

पारिखजी स्वप्न के अनुसार ही उठे और असंख्य तेजों से व्याप्त उस स्थान पर ही वन में पहुँच गये ।

ननाम भूमौ प्रणिपात विह्वलः
मनोरथो मे परिपूर्णतां गतः ।
श्रीद्वारकाधीश-सुमूर्ति-सन्निधौ
विराजिता चेद् वृषभानुनन्दिनी ।।५४।।

उन्होंने सष्टांग प्रणाम किया और कहा कि यदि वृषभानु नन्दिनी प्रभु के समीप विराजमान होंगी तो मेरा मनोरथ पूर्ण होगा ।

राधिकाऽऽनयनम् स्थापन च

श्रीराधिका-विग्रहमात्महस्तयो–
र्नीत्वागतः पारिख गोकुलो गृहम् ।
मुहूर्तमादाय विचक्षणैर्धृतं
चकार पंचामृतकैश्च पूजनम् ।।५५।।

श्री राधिकाजी के विग्रह को लेकर पारिखजी मन्दिर में लौट आये और सुन्दर मुहूर्त में पंचामृत स्नान कराया ।

विलोक्य गोविन्दयुतां च राधिकां
लोकाः समस्ताः सुखिनोऽमवंस्तदा ।
दिने दिने चोत्सव मंगलादिभी–
रराज वृन्दावन-भूमिरद्भुता ।।५६।।

श्री लक्ष्मी नारायण किंवा राधा गोविन्द को देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये और दिन दिन नव नव उत्सवों से वृन्दावन की भूमि सुशोभित हुई ।

इति विलसित वृन्दारण्य भूभौ सु पुण्याद्
व्रज रज रसिकोऽसौ पारिखो बन्धु युक्तः ।
सुर-नरवर-पूज्य स्वामिनो पाद-पद्मं
विविध-सरस द्रव्यैरर्चयामास निष्यम् ॥५७॥

श्री पारिखजी वृन्दावन की भूमि में निवास करते और सुर-नर श्री स्वामिनी जी को प्रकट अनेक पदार्थों से उनका पूजन करते थे ।

इति पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये श्री वृन्दावने राधिका प्राप्ति वर्णनं नाम दशमः सर्ग्रः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में दशम सर्ग पूर्ण हुआ ।



अथ एकादशः सर्गः

पारिखद्वारा मथुरायां वर्तमान मन्दिर भूतल दर्शनम्-

अथैकदा कृष्णजनुः पवित्रिते
कलिन्दजा पश्चिम दिग्विभूषितम् ।
"अशीतिकुण्डं"-निकषा मनोरमं
विलोकयामासमहोन्नतं स्थलम् ॥१॥

एक बार पारिखजी मथुरा आये और असकुण्डा घाट पर जो श्री यमुनाजी के अति निकट पश्चिम तट पर स्थित है एक ऊँचा स्थान देखा ।

भूमि क्रय वर्णनम्-

ततः समाहूय स कोविदान् जनान्-
अयाचत स्वेप्सितमत्र-भूतलम् ।
ततोऽति हृष्टैर्मथुरा निवासिभिः
सम्पादितं विक्रम-कर्म-कौतुकम् ॥२॥

अपने परिचित चतुर व्यक्तियों को बुलाकर पारिखजी ने वहां भूमि खरीदने की इच्छा व्यक्त की तब तो प्रसन्न होकर मथुरा वासियों ने उनकी इच्छा अविलम्ब पूरी कर दी ।

मुहूर्त वर्णनम्-

तत्रैव देवज्ञ वरैश्च सत्वरं
विलोक्य नक्षत्र-बलादिकं शुभम् ।
मुहूर्तकं वास्तु-सुरस्य कारितं
सु पूजनं चापि हि विश्वकर्मणः ॥३॥

ज्योतिषि बुलवाये गये और उनसे नक्षत्र बल आदि को जो भवन निर्माण के मुहूर्त में देखने चाहिये दिखवाकर वास्तु पूजन किया और विश्वकर्मा का पूजन किया ।

माथुर पुरोहित द्वारा साहाय्य वर्णनम्-

विनिर्गतो गोकुल-पारिखो धनी
पुरोहितं माथुर वंश दीपकम् ।
मनोऽभिलाषं च सु शिल्पकं ततः
प्रबोध्य सर्वं च समर्प्य चित्रकम् ।।४।।

पारिखजी अपने कुल पुरोहित को अपनी इच्छा के अनुसार मन्दिर बनवाने का नक्सा समझाकर नक्सा देकर लौटकर वृन्दावन लौट आये ।

भूखण्ड शोधनम्-

सहस्रशो गर्दभ-वाहका जनाः
समागमन् खात सुकर्म कारिणः ।
चितिप्रवीणा निजसेवकैर्युता
समं नियुक्ताश्च प्रबन्धकैः स्वयम् ।।५।।

सहस्त्रों गधों पर मिट्टी लादकर हटाई जाने लगी और अच्छे राज और बेलदार काम में जुटाये गये ।

भूमि पूजनम्-

समन्ततो वीत-मले च भूतले
मुहूर्तके द्वादश-वादने शुभे ।
सु वास्तु देवं च नवग्रहं तथा
सुपूजयामास च धूपदीपकैः ।।६।।

चारों तरफ से जब स्थान की शुद्धि हुई और अभिजित मुहूर्त (मध्यान्ह १२) का समय हुआ वास्तु देव तथा नवग्रहों की बिधिबत् पूजा की गई ।

शिल्प संयोगः -

सुशिल्पिनः कर्मकरा-गुणाधिका-
विचार-शीला बहु-कीर्ति-संयुता ।
अनेक-शास्त्र-श्रुत-वास्तु कौशलाः
नियोजिता मन्दिरवास्तु कर्मणि ।।७।।

मन्दिर निर्माण के विशेषज्ञ शिल्पियों को इस कार्य में आमन्त्रित किया गया जिनका इस समय नाम प्रसिद्ध हो गया था और जिन्होंने मन्दिर के तथा धर्मशाला के निर्माण हेतु शास्त्रों की चर्चा की सुन रखी थी ।

मानचित्र दर्शनम्

निदर्शनं त्वत्र बहु प्रकारकं
प्रदर्शितं पारिख-बन्धु सन्निधौ ।
अनेक देवालय वास्तु-वेदिभि-
र्विशेषतः काश्यप-शास्त्रपाठकैः ।।८।।

काश्यप शास्त्र के अधीत वास्तु शास्त्रज्ञाता मर्मज्ञों ने पारिखजी को अनेक भेद मन्दिरों के समझाये ।

समागता वैष्णव-धर्म-दीक्षिताः
सहायका वास्तु-फलोपपादकाः ।
सहैव निर्माणविधौ जन प्रियाः
सदाशयाः कारुणिका महावलाः ।।९।।

वैष्णव धर्म दीक्षित वास्तु तत्व के ज्ञाता अनेक लोग इस कार्य में जुटाये गये वे अच्छे अन्तः करण वाले कारुणिक और वलवान् भी थे ।

विचारितं तैश्च प्रसन्न-मानसै-
र्विशाल-प्रासादकरैर्महोदयैः ।
कुयावनक्रूर-करैः कुपीडिता
कथावशेषाः बहु देव सद्गृहाः ।।१०।।

उन स्वच्छ मनवालों ने जो बड़े बड़े प्रसाद वनाने में निपुण थे । विचार किया, म्लेच्छों ने हमारे अनेक प्रासाद नष्ट कर धूलि में मिला दिये थे ।

अतो वयं कारण भेद पूर्वकं
विचारयामः स्थिरवास्तु-कर्मणि ।
यतो वयं त्वन्न सदैव सज्जन-
प्रमोदि सन्मार्ग महार्जयेम वै ।।११।।

अतः हम कारण भेद पूर्वक कि ऐसा क्यों हुआ अच्छे मुहूर्त का आश्रय लेकर ही प्रसाद निर्माण करेंगे।

मुहूर्तमासाद्य मनोहरं प्रियं
मनोजवे नेव रथादथागतम्।
विलोक्य विप्रैः सहितं हि गोकुलं-
विचक्षणा बन्धु-जना विरेजिरे ॥१२॥

सुन्दर मुहूर्त का निर्णय हो जाने पर वृन्दावन से पारिखजी बड़े उत्साह से मथुरा आये। योग्य विद्वान् ब्राह्मणों को बुलवाया गया था उस समय बड़ी शोभा हुई थी। मथुरावासी बड़े ही प्रसन्न हुए थे।

सु सज्जितं मण्डपकं स्वकान्तिभि-
र्विवाह शोभां हि दधाति निश्चितम्।
हरिद्रिका-लिप्तगलैः सु कांचनै-
र्विराजिताऽऽसीद्धरणी सुकुंभकैः ॥१३॥

मण्डप ऐसा सजाया गया मानों विवाह की धरती है। हलदी से और सुवर्ण से उसकी और भी शोभा बढ़ रही थी। मध्य में सजे हुए कलश रखे गये थे।

वेदध्वनि वर्णनम्-

शुभार्चनं ब्रह्म-कुलस्य सादरं
गणाधिपं प्राच्यं चकार-भक्तिमान्।
ततोऽभवद्वैदिकविप्र-गर्जनम्
सु वास्तु-सूक्तस्य च मन्दममर्जम् ॥१४॥

विद्वान् ब्राह्मणों का अर्चन कर सर्व प्रथम गणाधिप की पूजा प्रारम्भ की गई थी स्वस्ति वाचन हुआ और वास्तु सूक्त का पाठ हुआ।

उदीरयामासु रथप्रजा-जना
सुरम्य-वेला सुखदायिनी हि नः।
जयोस्तु द्वाराधिपतेरितीरकैः -
पुरी विभोर्नादमयी तदाऽभवत् ॥१५॥

मथुरा वासियों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा वे बोले आज की घड़ी अवश्य सुख दायिनी है—सारा नगर श्री द्वारकाधीश के जयघोष से भर गया था।

ईशान कोणे शिलान्यास वर्णनम्-

ततश्च षड् विंशतिहस्तखातकं
विधाय संपूज्य शिलां च कांचनीम् ।
शिवस्य नाम्ना प्रथिते च कोणके
निवेशयामास प्रसन्न-मानसः ॥१६॥

२६ हाथ की नीव खोदकर उसके ईशान कोष में सुवर्ण की शिला रखी गयी नींव में कच्छप-नाग-वृषभ आदि भी स्थापित किये गये थे ।

शनैः शनैरर्धगते च मासके
निशीथ-काले स ददर्श स्वप्नकम् ।
धरातलेऽस्मिन् यवनस्य सन्निधिः
सुभक्त-वृन्दस्य हि कष्टदायिनो ॥१७॥

१५ दिन कार्य प्रारम्भ हुए जब हो गये तो अर्ध रात्री में पारिखजी को हुआ कि कोई यह कह रहा है कि मन्दिर की परिधि में यवन की सन्निधि ठीक नहीं है ।

अतस्त्वया भक्तवरेण मेधया
विचिन्तनीया सुखदादिनी गतिः ।
भवेन्नकिंचित् कलहायितंमनः
समर्चकानामथवेह राजताम् ॥१८॥

अतः आप कोई उत्तम मार्ग ढूँढ निकालें जिससे यहाँ रहने वालों का मन कलह में न रहे ।

शर्फुरुद्दीनतो भूमि क्रय वर्णनम्-

ततो विनिश्चित्य नरोऽति बुद्धिमान्
भुवः पतिं 'शर्फुरुदीन्' नामकम् ।
मनोऽनुकूलं धनमर्पणेन वै
विधातुमैच्छत् सुवचोऽमृतादिभिः ॥१९॥

तब श्री पारिखजी ने समीप वर्ती भूखण्ड के अधिपति 'शर्फुरुदीन' नामक व्यक्ति को बुलाया और यथेष्ट घन के बदले भूमि देने को कहा ।

तथापि देवारि-निभेन जल्पता
सुवञ्चितः पारिखगोकुलोऽसकौ।
जगाद कूर्चोपरि हस्तमर्पयन्
मुहम्मदोऽहं न धनस्य-लुब्धकः ।।२०।।

तब वञ्चक भाव से उसने मैं अपनी दाढी पर हाथ फेरते हुए कहा कि मैं मुहम्मद हूं धन का लोभी नहीं हूं।

भूमि क्रय निषेध–

न विक्रयिस्ये धरणीमतो निजां
सुवर्णलोभेन भयेन वा पुनः।
निवेदनं चापि करिष्यते मया
विदेशि गौरांगकशासकान्तिके ।।२१।।

मैं धन के लोभ से या किसी भय से इस पृथ्वी को नहीं बेचूँगा इतनाही नहीं मैं अभी अँगरेज शासकों से (जो उस समय शासक थे) निवेदन करूँगा।

विशेषतो 'मस्जिद' सन्निधौ क्वचित्
न मन्दिरं चापि करिस्यते जनैः।
विरम्यतां मन्दिर-वास्तु-कर्मतः
सु संगरो वा भविता न संशयः ॥२२॥

मस्जिद के समीप मन्दिर का निर्माण नहीं किया जाता अतः आप या तो मन्दिर बनवाना छोड़ दें अन्यथा यहाँ भयंकर संघर्ष होगा।

धनाधिकारी निजगाद माथुरं–
मुनीश्वरं वंशयुतं समेत्य च ।
विचारितं नो भवता मया सह
यदन्तरायोऽत्र मुहम्मदीयकम् ।।२३।।

धनाधिकारी ने पुरोहित माथुर ब्राह्मण से कहा कि आपने यह चर्चा कभी नहीं की थी कि इसमें यह मुहम्मद कृत क्लेश भी है।

विवादे युद्धाशंका वर्णनम्-

उदन्त-एषो मथुरास्थमण्डले
मनोवलेनेव हि वृद्धिमागतः ।
समागताश्चापिकलिन्दजातटे
सु यष्टिका-कुन्तल-खङ्गधारिण ।।२४।।

यह वृत्तान्त बड़ी तेजी से पूर्ण नगर में छा गया और सैकड़ों लोग हाथों में लाठी वल्लभ और तलवार लेकर आ गये ।

विनिश्चितं तत्र सभागतैर्जनैः –
प्रबोधनीयः पुनरेवयावनः ।
न वा विवादोऽपि परस्परं शुभो–
न पक्षयोर्लाभकरश्च कर्हिचित ।।२५।।

लोगों ने एकत्र होकर कहा कि एक बार उसे सूचना और दे दी जाय अन्यथा संघर्ष में दोनों पक्ष व्यर्थ फँस जायंगे ।

ततश्चतुर्वेद-परायणा-जना–
विचुक्रशुस्तारवेण संसदि ।
न युक्तमेतद् रिपु-मानवर्धनम्–
रणेन हानि-र्भविता कदापि नो ।।२६।।

अनेक चतुर्वेद ब्राह्मणों ने तो इस कार्य को अच्छा नहीं बतलाया वे कहने लगे कि इससे उनका हौंसला और बढेगा युद्ध करने में हमारी कोई हानि न होगी ।

उवाच तत्रैव वुधाग्र-केसरी
न संगरेभोति लवोऽपि मानसे ।
परन्तु निर्माण-रताय भूयसी
कुपाप शंका भवितोचिता न सा ।।२७।।

एक विद्वान् ने कहा—कि हमारे मन में भय नहीं है परन्तु निर्माण कार्य में वहुत सी बाधाऐं आती हैं उनके कारण ही सोच विचार आवश्यक है ।

मुहम्मदेनाथ ततो विचक्षणै-
रवश्य वार्ताकरणं हि शोभते ।
उपाय मध्ये चरमं हि दण्डकं
वदन्ति नीतिज्ञ-वराश्च पण्डिताः ॥२८॥

उस व्यक्ति से जो झगड़ा करना चाहता है एक बार बात करना ही ठीक है और दण्डनीति तो अन्तिम है ऐसे पण्डितों का मत है ।

माथुराणां गर्जनम्-

ततश्च विश्रान्ति तटस्य सन्निधौ
गता बुधाः स्वीकृतिमञ्चयित्वा ।
अशीतिकुण्डोपरि 'शर्फुदीनकं'
प्रवोधयामासुरनेक सामभिः ॥२९॥

'विश्रामघाट' के समीप एकत्रित लोगों से स्वीकृति लेकर असकुण्डा घाट के पास रहने वाले उस शर्फुदीन के पास जाकर उसे अनेक प्रकार से साम आदि द्वारा समझाया ।

कुवञ्चनंगोकुल पारिखस्य च
कथं त्वया दत्त-गिरा विधीयते ।
यथेऽप्सितं वित्तमवाप्यनोंचितं-
स्वयं प्रतिज्ञाबचनस्य कृन्तनम् ॥३०॥

यह भी कहा कि प्रथम पारिखजी को तुमने स्वीकृति दे दी थी और अब जब निर्माण कार्य प्रारम्भ हो रहा है तो जमीन वेचना नहीं चाहते यह अयुक्त है, जितना धन चाहो ले लो ।

चतु-सहस्त्रं न हि केवलं वयं
बिभिन्न लोका-अपि संगरोत्सुकाः
समग्र गोपाचलवासिनो जना
सभू भुजः कोपयुता अहेरिव ॥३१॥

हमें कुछ हजार मात्र माथुर विप्र न समझना अपितु ग्वालियर तक की जनता और वहां के नरेश इस व्यवहार से क्षुब्ध हो गये हैं और वर्ग संघर्ष हो जायगा।

राजती भूमिः क्रियतां प्रस्तावः –

उवाच भूयोयवनाधमो हि स
यदि प्रियं मन्दिर-कर्मनिश्चितम् ।
धरा तदा राजत-राजतां स्वयं
विधाय भो ! गोकुलकेननीयताम् ॥३२॥

उसने कहा—कि यदि तुम्हें धरती चाहिये तो चाँदी के रुपये बिछा दो और जमीन ले लो।

श्रीमनीराम जी द्वारा तथैव करणम्—

धरा ततो राजत-धातु-भूषिता
कृता मनीराम-'मुनीम'-धीमता ।
विहस्य भूयः स जगाद यावनो
न मे प्रियं रिक्त-धराऽत्रवर्तते ॥३३॥

तव पारिखजी के मुनीम 'श्री मनीरामजी ने सारी धरती चाँदी के रुपयों से आच्छादित करदी, उसे देखकर यवन हँसकर बोला यह ठीक नहीं रुपयों के बीच की जगह खाली है।

मुद्राणामवकाशे सुवर्ण पत्र विसर्जनम्—

सुवर्णपत्रैश्च प्रपूरिता धरा
तदाऽकरोत् स्तव्धमतिः कराक्षरम् ।
सुकर्गले चापि सुसाक्षिभिः सह
विनिर्गतो द्रव्य-युतः स बान्धवः ॥३४॥

पारिख जी के आदेश से सोने के पुष्पों से खाली जगह भर ही गई। उसने हस्ताक्षर कर दिये और साक्षियों के भी हस्ताक्षर हो गये और वह सारा धन लेकर वहाँ से चला गया।

विवाद-जातेऽस्तमिते महात्मना
मुकुन्द लीला-रत-वैभवेन वै ।
प्रासाद-निर्माण विधौ सु चातुरी
प्रदर्शिताश्चर्यमयी-महीतले ॥३५॥

विवाद के समाप्त हो जाने पर मुकुन्द लीलारत वैभव वाले भक्त ने प्रासाद निर्माण में बड़ा मन लगाया अर्थात् अनेक शैलियों से उसे युक्त कराया ।

अनुदिनमिह वृन्दारण्य मध्ये प्रसन्नो
निवसति सुखपूर्वं द्वारकाधीशदेवः ।
बुधवर वचनानि स्पष्टमामानयन् सः
निज-नगर-निवासे चाकरोत् सन्मतिं वै ॥३६॥

वृन्दावन में बड़े सुख से रहते हुए श्री भगवान् द्वारकाधीश ने मथुरा नगर निवासियों की इच्छा पूर्ण करने के लिये मथुरा आने की थी ।

तभी तो पारिखजी ने मथुरा आकार मन्दिर वनवाना प्रारम्भ करवाया था

इति पं० श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये मन्दिर निर्माण वर्णनं नाम एकादशः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महा काव्य में—



अथ द्वादशः सर्गः

मन्दिर शोभार्थं माथुरस्य भूमिदानम्–

प्रवर्तिते मन्दिरचत्वरे ततो
जगाद शिल्पी शकुनं विचारयन् ।
अत्राङ्गणे वास्तु भुजा हि खण्डिता
ततोऽस्ति चिन्तातुर मेव नो मनः ।।१।।

जब पूरे मन्दिर को चौकोर किया जाने लगा तब शिल्पी ने शकुन विचार कर कहा कि आंगन के समीप तिकौना हो गया है अर्थात् वास्तु भुजा खण्डित हो गई है अतः यह पृथ्वी और खरीद ली जाय तो मन्दिर की स्थिति शास्त्रोक्त विधि से पूर्ण हो जायगी ।

ततः समाहूय प्रबन्धकं स्वकं
स गोकुलः प्राह श्रुतं सु शिल्पिभिः ।
व्यजिज्ञपद् वै गृहपूर्व चित्रकं
मनोरथैरीप्सितमद्भुतं तथा ।।२।

पारिखजी ने प्रबन्धक से शिल्पियों के कथन को दुहराया और नक्सा दिखलाया ।

प्रबन्धकश्चाति विनम्रमाननं–
विधाय प्रोवाच सुवास्तु वक्रताम् ।
द्विजोत्तमो भूमि पति-र्दृढव्रत–
स्ततो दशेयं विकृता च विद्यते ।।३।।

एक द्विजोत्तम माथुर ब्राह्मण चिंताराम ने अपनी भूमि नहीं दी अतः यह मन्दिर तिकौना सा लग रहा है । ऐसा प्रबन्धक ने कहा ।

उवाच वाक्यं विनिधाय मानसे
मनीति नानानमरं दृढव्रतम् ।
कुरुष्व यत्नं स्व पुरोहितैरलं
विधास्यति प्राणपतिः शुभं हिनः ।।४।।

तब पारिखजी ने अपने प्रिय मनीराम को बुलाकर कहाकि आप अपने पुरोहित को क्रय कहने का प्रयास करो, भगवान सब मंगल करेंगे।

गतो मनीराम वणिक् द्विजन्मनः
प्रतोलिकायां स्फुटिते च तद् गृहे।
जगाद भूयो विनतः कृताञ्जलिः
द्विजोत्तमाग्रे शिरसा प्रसादयन् ॥५॥

समीप की गली में ही ब्राह्मण का निवास था वहां मनीराम जी गये और हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा –

प्रचण्ड भूपाल वरार्चितो भवान्
श्रुतं मया माथुर विप्र-भूषणैः।
उदारशीलोऽपि समस्त भूतले
उपस्थितोऽहं स्वजनैः समीरितः ॥६॥

आपकी पूजा बड़े बड़े राजे महाराजे करते हैं ऐसा मैंने चतुर्वेदी ब्राह्मणों से सुना है आप बड़े ही त्यागी उदार स्वभाव वाले है मैं भी आपकी सेवा में एक विशेष प्रयोजन से उपस्थिति हुआ हूं।

ममागमं मन्दिर-वास्तुकर्मणि
निवेदनं विघ्न विनाशकारणात्।
न मे ऽर्थ सिद्धि र्न चगौरवं महत्
तथापि वास्तोः परिपूर्ण कामना ॥७॥

आपके ही समीप जो यह मन्दिर बनाया जा रहा है जगह की कभी से तिकोना सा हो गया है यद्यपि उससे विशेष अर्थ सिद्धि नहीं है और न अर्थ गौरव ही है तथापि वास्तु की पूर्णता की कामना हैं।

करोति यो देववरस्य वन्दनं
पदारविन्दस्य शुभार्चनादिकम्।
न तत्समः कोऽपि वसुन्धरान्तरे
वदन्ति वेदादिविशारदा वुधाः ॥८॥

यो भगवान् की वन्दना उनके चरणविन्द की अर्चना आदि करता है उसके समान तीनों लोकों में भाग्यशाली नहीं है ऐसा वेद शास्त्र के ज्ञाता कहते हैं।

भवत्प्रतोलीं निकषास्ति मन्दिरं
निर्मापितं पारिख गोकुलेन वै।
तदग्रभूमौ भवतां हि भूतलं
सु विद्यते नश्यति येन भव्यता ॥९॥

आपकी गली के पास ही श्री गोकुलदास पारिख ने मन्दिर बनवाया है उसके आगे की भूमि से मन्दिर की भव्यता नष्ट हो रही है।

प्रपूर्यतां मङ्गलकामना विभोः
वितीर्यतां स्वस्य यशोऽति निर्मलं।
प्रदीयतां भूतलखण्डमात्मनो-
प्रिगृह्यतां रूप्यकराशिरुत्तमा ॥१०॥

इस विभु की मंगल कामनापूर्ण कीजिये और अपना निर्मल यश सर्वत्र फैलाइये भूमि बेचकर यथेष्ट धन राशि प्राप्त कीजिये।

ततः समाकर्ण्य वचांसि विट्पते-
रुवाचलोकेश्वर वन्दिताङ्घ्रिकः।
वित्तौषणामुक्तमनो ऽस्मदीयकम्-
अतो गृहीष्यामि कथं धनादिकम् ॥११॥

श्री मनीराम के वचन सुनकर राजाओं से पूजित चरण वाला ब्राह्मण बोला-मुझे वित्तैषणा नहीं है तब मैं धन कैसे ग्रहण करूँ।

ततोमनीराम वणिक् प्रबन्धकृत्-
शतं सहस्रं नियुतं ददाविव
न रोचतेऽनर्घ्यं निधिस्तव क्वचित्
शनैरथोत्थाय बुधोऽब्रवीत् पुनः ॥१२॥

श्री मनीरामजी ने १००, हजार, दस हजार रुपये निकाले परन्तु ब्राह्मण ने कहा—नहीं नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिये, और धीरे से वहाँ से उठ गये।

धनं हिरण्यं च पशुं रथोत्तमं
पयस्विनीं गां समलंकृतां शुभाम् ।
ददातु तं वाञ्छति मोहकारणाद्
विरक्तभावान्प्रतिभाति न क्वचित् ॥१३॥

धन-सुवर्ण-पशु-उत्तम रथ अलंकृत दूधवाली गाय उसे दो जो चाहता हो विरक्त के लिये ये वस्तु आकर्षित नहीं करती ।

तदाबभाषे मनिराम विट्पति
र्धिगस्तु मे भाग्य बलं निवेदनम् ।
परीक्षणार्थं धनिकस्य भावना-
मुवाच विप्रान्वयभूषणं ततः ॥१४॥

श्री मनीराम ने अपने भाग्य बल की भर्त्सना की, पुनः ब्राह्मण उसको भावना की परीक्षा से कहने लगा ।

शृणोतुरे मद्वचनं सतथ्यकं
कुरु प्रयत्नं च मनोरथाप्तये ।
कलिन्द कन्या पुलिने स पारिखो-
धरां हि गृह्वातु च भिक्षुकोभवन् ॥१५॥

सुनिये ! यदि आप अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहते हैं तो वह 'पारिख' यमुना किनारे विश्राम घाट पर आवे और भीख माँगे तो मैं पृथ्वी विना किसी मूल्य के दे दूँगा ।

ततो मनीराम-वणिक् स सेवको
जनेन गन्तुं बहिरागतो रुषा ।
कदापि नेत्थं भविता तव प्रियं
कलिन्द कन्या पुलिने च याचनम् ॥१६॥

तब तो मनीराम सेठ अपने नौकरों को साथ लेकर क्रोध में भरकर बड़े वेग पुर्वक चल दिये और बोले यह कदपि नहीं हो सकता कि पारिखजी विश्राम घाट पर जाकर भीख मांगें ।

जगाम वैश्यश्क्षुभितस्ततोगृहात्
प्रणम्य विप्रं गतवित्त वासनम् ।
विचिन्तयन् वैभवतुच्छतां निजां
तथाविरक्तस्य विशाल मासनम् ॥१७॥

सेठ मनीराम वित्त वासना शून्य उस ब्राह्मण को प्रणाम कर अपने ऐश्वर्य को वड़ा ही तुच्छ और वैराग्य के आसन को विशाल मानकर चल दिये।

धनं क्वमे क्वास्ति दरिद्र भूषितः
क्व मेऽल्प बुद्धिर्विभवानु गामिनी ।
क्ववा विरक्तस्य विचार भावना
ययाऽपराधीव विचारये स्वकम् ॥१८॥

कहाँ मेरा धन ? कहाँ यह ब्राह्मण कहाँ केवल वैभव की अनुरात्रिनी मेरी तुच्छ बुद्धि और कहाँ विरक्त की विचार भावना जिनसे अपराधी जैसा अपने को समझता हूं।

विरक्त महिमा-

अहो विरक्तस्य विशाल भावना
अहो धनान्धस्य तनु-प्रकल्पना ॥
न केबलं वैभवतो हि सज्जना ।
भवन्ति मान्या वितथा न जल्पना ॥१९॥

वाहरे विरक्त की विशाल भावना, आहा ! धनान्ध मेरी तुच्छ कल्पना, समझ गया केवल धन से ही लोग बड़े नहीं हो जाते यह कथन असत्य नहीं है।

अहो विधात स्त्वमतीव निर्दयो ।
दरिद्र भाग्यस्य करोषि नोदयम् ॥
किं वा दरिद्रं त्यजति प्रिया-हरेः ।
किंवा विरक्तः स्त्यजति स्वकं धनम् ॥२०॥

अरे विधाता ! तू निश्चित ही अधिक निर्दय है जो दरिद्र का भाग्योदय नहीं करता क्या दरिद्र को हरि प्रिया लक्ष्मी ने छोड़ दिया है। या विरक्त ने ही अपने धन को त्याग दिया है।

कृपण निन्दा—

मृतः पृथिव्यां धन लुब्धको जन-
स्तथाऽऽत्मपुत्रादि तिरस्कृतः सदा ।
मृतः स वै यः सहते तिरस्क्रियां
विगर्हणीया न हि या सुखप्रदा ॥२१॥

जो धन का अत्यन्त लोभी है वह मरा ही है उसका तिरस्कार उसके पुत्र आदि भी करते हैं वह भी मरा ही है जो सब जगत् से निन्दनीय दुःख दायी तिरस्कार को सहन करता है ।

यथा विशालं गगनं महीतलं
यथापयोभिश्चभृतो महार्णवः ।
यथा प्रकाशो द्युमणेर्विराजते
तथा विरक्तस्य मनो मनोत्सवः ॥२२॥

जैसे विशाल आकाश है महीतल है जैसे जल पूर्ण समुद्र है जैसे सूर्य का प्रकाश है वैसा ही विरक्त के मन का महोत्सव होता है ।

अहोदुरन्ता महती कुचिन्तना
करोति या मेघ समां च गर्जनां ।
असारसंसार भरा विडम्बना
यया सदाऽप्रन्यतमा सदर्थना ॥२३॥

अहो कुचिन्तना बड़ी बुरी है जो गर्जना तो मेघवत् करती रहती है । असार से भरी विडम्बना के समान ये चिन्ता जिससे संप्रार्थन भी अधन्य हैं व्यर्थ है ।

जगत्यनन्तं सुखदं मनोहरं
विलक्षणं वैभवमन्दिरं शुभम् ।
परं विरक्तं सुजनं तपोधनं
न भाति किंचित् मनसः प्रियं वरम् ॥२४॥

जगत् में अन्तरहित सुखद मनोहर विलक्षण वैभव का मन्दिर बड़ा शुभ है किन्तु सज्जन तपस्वी विरक्त के मन को कुछ भी प्रिय नहीं ।

विचारयन्नेवमहो स्व मानसे
हयोत्तमैः कर्षितयानमास्थितः ।
जगामद्यूतेन विमर्दिताङ्गको
जनो यथा द्यूतगृहाच्च प्रस्थितः ।।२५।।

इस प्रकार सेठ अपने मन में विचार करता घोड़े जुती बग्घी में बैठकर, द्यूत में पराजित द्यूत बाज की भांति अपने घर गया ।

यथा विहायात्ममणिं फणीश्वरो
जहाति दीर्घंश्वसनं महा क्रमी ।
यथा गजेन्द्रो ऽपि विहाय मौक्तिकं
तथैव शैथिल्यमवाप स क्षमो ।।२६।।

जैसे नागराज मणि चले जाने पर लम्बी निःश्वास लेता हैं जैसे गजरात मस्तक के मुक्ता छिड़ जाने पर दुःखित होता है वैसी ही दशा सेठ मनीरामजी की हो गई ।

शनैः शनैर्माथुर-मण्डलं त्यजन्
गतो मनीराम वणिक् यथातुरः ।
स गोकुलं प्राह विनिश्चयं दृढं
धरा प्रदाने च यदाह माथुरः ।।२७।।

धीरे धीरे माथुर मण्डल (मथुरा) को छोड़कर मनीराम दुखित मन वाले लौटे और ब्राह्मण के निश्चय से पारिखजी को अवगत कराया ।

विचारमाकर्ण्य महीसुरस्य तं
विशांपतिर्गोकुल पारिखोऽवदत् ।
देवस्य हेतोश्च प्रयाचनेऽभुवः !
त्रपा तु मे क्वापि न वै भविष्यति ।।२८।।

श्रीपारिखजी ने जब यह सुना कि भीख मांगना है तो बोले ठीक है, प्रभु के लिये मुझे भीख माँगने में लज्जा न तो है न होगी ।

द्विजातिरिक्तस्य जनस्य याचनं
नवास्तियुक्तं भुवने न चेप्सितम् ।
तथापि याचे धरणीं कलिन्दजा-
तटे द्विजाग्रान्मनसा विनिश्चितम् ।।२६।।

माँगने का अधिकार केवल विप्रों का का है उससे अतिरिक्त का भीख माँगना उचित नहीं है तब भी मैं तो प्रभु का सेवक हूं बड़प्पन का अभिमान त्याग कर अवश्य यमुना तट पर ही भीख माँगूँगा ।

इयेष गन्तुं मथुरां हरेः पुरीं
तदाऽब्रवीद्वैश्यमनी परिश्रमी ।
प्रभो ! प्रभाते च समर्च्य गम्यतां-
विराजते यत्र यमानुजा यमी ।।३०।।

श्री पारिखजी तो उसी समय उठकर चल दिये थे किन्तु सेठ मनीरामजी ने कहा कि अभी नहीं आप प्रातः काल के समय वहाँ पधारियेगा ।

अथाऽपरेद्युर्द्रुहिणे मुहूर्तके
द्रुतं समुत्थाय चकार वन्दनम् ।
हयोत्तमाबद्धरथेन पारिखः
पुरीं गतो वै सुविधाय कीर्तनम् ।।३१।।

दूसरे दिन ब्रह्म मुहूर्त में पारिखजी उठे और सन्ध्या वन्दनादि कृत्य सम्पन्न किये सुन्दर बग्गी में बैठकर मथुरा चल दिये ।

तदोत्तमैर्गोमुख-वाद्यकैं रवै-
र्मृदङ्ग नादैश्य प्रपूरितं नभः ।
सुशोभितैः सेवकयानमण्डलै
रराज भक्तो रजनी गुरोर्निभः ।।३२।।

प्रस्थान के समय गोमुख-मृदंग के नादों से आकाश भर गया सेवकों के यानों से पारिखजी ऐसे लग रहे थे मानों नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा हों ।

समागतो गोकुलदास पारिखो
विलोकितुंस्वात्मविभोः सुमन्दिरम् ।
वराह देवस्य समीप निर्मितं
सुशोभितैः प्रस्तर खण्ड चन्दिरम् ॥३३॥

श्री पारिखजी अपने नव निर्मित मन्दिर को देखने आये जो सुन्दर पाषाण खण्डों से बनाया जा रहा था वराह क्षेत्र के समीप था ।

यमुनापूजनम्—

समागतो गोकुल नामयाचको
वृत्तान्तमेतत्तडितामिवाततम् ॥
पुरोहितस्तत्रपुरा विराजितैः –
कलिन्दजापूजनकर्मनिश्चितम् ॥३४॥

श्री पारिखजी भीख मांगने आये हैं यह समाचार बिजली की भांति सर्वत्र फैल गया, उपस्थित पुरोहितों ने पारिखजी से पहले श्री यमुना जी का पूजन करवाया ।

चतुर्वेदविप्रदर्शनम्—

ददर्श तत्रैव विराजितान् जनान्
महोदराँश्चन्दनचर्चितांगकान् ।
बलाधिकान् मेरुनिभानतिप्रियान्
जपस्तुतौ कम्पित सत्कराग्रकान् ॥३५॥

श्री पारिखजी ने देखा उस समय यमुना तट पर बहुत बड़े बड़े उदर वाले चन्दन से शोभित अँगवाले बड़े बलशाली सुमेरु पर्वत जैसे तेजस्वी जप करने में व्यग्र कराग्र वाले ब्राह्मण बैठे हैं ।

करोति कश्चिद्विधि पूर्वकं जपम् ।
विधाय सूर्याचनकर्म वैदिकम् ॥
ललाट पट्टे धवलं त्रिपुण्ड्रकं ।
करै ऽक्षक्षमालांस्तवनं चतांत्रिकम् ॥३६॥

कोई विधिपूर्वक जप कर रहा है, कोई सूर्य का पूजन वैदिक विधि से कर रहा है, कोई ललाट पर श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र लगायें है तो कोई तांत्रिक विधि से पूजन-जप कर रहा है।

पुराणपाठं च कलिन्दजा तटे
करोत्यमन्देन गलेन तन्मयः ।
पितामहामेसमरे ऽमरञ्जयै-
रित्यादिपद्यानि ब्रवीति सस्मयः ॥३७॥

तन्मय होकर कोई पुराण के अंशों का पाठ मधुर कंठ से कर रहा है और भागवत के -"पिता महा मे समरे ऽमरञ्जयैः" इत्यादि श्लोकों का उच्चारण कर रहा है।

निधाय देहे विमलं दुकूलकं
सुपीतवस्त्रैश्चपिधाय स्वं शिरः ।
सुकुंकुमै र्ज्ञापितवाल्लभं मतं
विराजते स्वासनकेस्थितः स्थिरः ॥३८॥

कोई सुन्दर दुपट्टा पहने है पीत वस्त्र सिर पर लपेटे है तो कोई कुंकुम से वल्लभोक्त तिलक लगाकर अपने आसन पर दृढ़ता से दैठा है।

जयेति कश्चिद्यमुना जलं पिबन्
अघौघ विध्वंसकरीं नमस्यति ।
सुकच्छपैः शोभि तरंगितं जलं
विलोकयन् चित्रमिवात्र पश्यति ॥३९॥

कोई 'जय जमुने' कहकर यमुना जल का पान कर रहा है और पाप वृन्द-नाश करने वाली यमुना जी नमस्कार कर रहा है। कोई यात्री तो कच्छपों से सुशोभित और उनके वाहर भीतर आने जाने जाने से तरंगित जल शोभा को चित्र लिखे भाँति देख रहा है।

चिन्ताराम मिहारी चतुर्वेद वर्णनम्-

मिहारि वंशाब्धि शशांक सन्निभो
द्विजोत्तमश्चिन्तकरामविश्रुतः ।
करे समादाय सुकर्गलं ततः
स्थितः प्रदातुं धरणीं प्रतिश्रुतः ॥४०॥

चतुर्वेदियों के मिहारी वंश में समुद्र में चन्द्रमा के समान चिन्ताराम चतुर्वेदी विख्यात थे वे श्री पारिखजी को भूमि दान करने के लिये कागज हाथ में लेकर आये हुए थे क्योंकि वे प्रतिज्ञा कर चुके थे कि मैं भीख माँगने पर ही अपनी भूमि दे सकता हूं।

ततोऽब्रवीत् पारिखगोकुलंद्विजो-
याचस्व भक्तो धरणी प्रदीयताम् ।
कलिन्दजातीरगतेऽथ पारिखे
जलं समादाय जगाद गृह्यताम् ॥४१॥

ब्राह्मण ने कहा आप पृथ्वी मांगिये और उसने अपने हाथ में जल भर कर कहा लीजिये।

प्रभोर्निवासायगृहीतभूतलो-
जगाद हृष्टः स्वजनैः समन्वितः ।
कृपापरैर्मे परमोपकारिभि-
र्मनोरथोऽयं सदयं सुपूरितः ॥४२॥

प्रभु के मन्दिर कार्य के लिये भूमि लेकर पारिखजी बड़े प्रसन्न हुए और स्वजनों से युक्त पारिख ने सबके समक्ष कहा कि आपने मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया हैं।

माथुरविप्रद्वाराधिकार निषेध-

ततः परं पारिख आह माथुरं
त्वमे मन्मन्दिर रक्षको भव ।
नत्वत्समः कोऽपि विलोकितो जन-
स्ततस्त्वमेवात्र सदैव मामव ॥४३॥

श्री पारिखजी ने कहा कि आज से मेरे मन्दिर के आपही अधिकारी बनें, आप जैसा कोई त्यागी नहीं देखा अतः आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें।

धनाधिकारी भवनाधिकारवान्
जनानुरागी भव हे दयापर ।
समर्प्यते सर्वविधोऽधिकारको-
गृहाण दासस्य वचोविदांवर ॥४४॥

आप चाहें मेरे कोषाध्यक्ष बनें या मन्दिर की व्यवस्था सम्हालें आप जनानुरागी बनें मैं आपको समस्त अधिकार समर्पित करताहूं, सेवक की प्रार्थना स्वीकारकरें।

उवाचविप्रान्वय भास्कर स्ततो–
न मे स्पृहा नास्मिधनोत्सुकः पुनः ।
न पुत्रपौत्रादि-सुखादि चिन्तको
न चात्मसंपोषणके तथा मनः ॥४५॥

माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण ने कहा मुझे न तो कोई कांक्षा है न धन की उत्सुकता पुत्र पौत्रादिक के सुख की चिन्ता भी मुझे नहीं है और न अपने शरीर के ही सुख की कामना है।

कदापि वार्ता स्वजनैः स्व बन्धुभि–
र्मया त्वया नो विषये प्रवाच्यताम् ।
अतो न याचे कणिका प्रसादकं
न बन्धनं भोग विधौ विधीयताम् ॥४६॥

हाँ इतना ही कथन है कि अब यह वार्ता वान्धवों के साथ न करें मैं यहाँ का कण प्रसाद भी भोग का नहीं लूँगा और अधिकार की तो बात ही क्या है।

यतो मयि त्वय्यपि वा दिवंगते
विनाशकालेविपरीतसन्मतौ ।
भवेदिह क्लेश लवोऽपि मन्दिरे
विवादमादाय वसुन्धरापतौ ॥४७॥

मेरे या आपके परलोक चले जाने पर बुद्धि विपरीत हो जानेदर भूमि सम्बन्धी विवाद मेरे वंशज कदाचित् कर सकते हैं।

अतो मया स्वस्य विभुत्वबोधकं
समस्त पञ्जीकृतकर्गलादिकम् ।
जलेऽन्त्र निक्षिप्य गृहं हि गम्यते
न मन्दिरे मे भविताऽर्गलादिकम् ॥४८॥

अतः अपने स्वामित्व के परिचायक समस्त रजिस्ट्री आदि के अभिलेख यहीं जल में डाले जा रहे हैं आज से इस मन्दिर में मेरा कोई स्वत्व नहीं भोग-राग के बंधीन की तो बात ही नहीं है।

अनेक सद्वैभवमण्डिता जनाः
सपुत्रपौत्राः सुखिनो धरातले ।
वसन्ति वित्तादिरताश्च मानिनोऽ-
प्यहंपराधीनगता निजे बले ॥४६॥

संसार में बड़े-बड़े धनी हैं सुपुत्र-पौत्रादि से युक्त सुखी हैं मानी हैं और अपने ही बल से अहंकार में भरे हुए हैं ।

पिता कृतार्थो जननी तथैव हि
बभूव संप्राप्य सु तथेदृशम् ।
चकार योऽभ्यर्थनमात्म गौरवं
त्वहंपरित्यज्य बुधं हि मादृशम् ॥५०॥

हे पारिख आप जैसे पुत्र को जन्म देकर जननी कृतार्थ हुई पिता कृतार्थ हुए जिसने मुझ जैसे ब्राह्मण से अभिमान छोड़कर याञ्चा की ।

ततोमनीराम उदार गोकुलः-
प्रगृह्य पादौ बहुबारमुत्थितौ ।
प्रणम्य भूयोऽपि समर्च्य माथुरं
जनैः प्रगीतौ निजगेहमागतौ ॥५१॥

सेठ मनीराम ने और गोकुलदास पारिख ने श्री चिंताराम भिहारी के चरण पकड़े और बार बार प्रणाम किया और सब लोगों से अभिनन्दित होते अपने भवन की ओर चल दिये ।

हतेन तेनारिनिभेन राजती-
कृता धरित्री निजभूतलं त्यजन् ।
परं सदा कृष्णमनुव्रतेन वै
स्व भूतलं शुल्कबिनैवत्याजितम् ॥५२॥

एक वह व्यक्ति है जिसने समग्रभूमि चांदी से ढककर ही दी दूसरा वह है जिसने विना धन ही सब भूमि दानकर दे दी ।

मधुवनमुपयानं कृष्णचन्द्रस्य श्रुत्वा
जय जय जयशब्दानुद्गिरन्त: प्रसन्ना: ।
विविध-विधकथाभि: कीर्तयन्त: स्व दिष्टं
सकल-कुलसमेता: हर्षयुक्ता विरेजु: ॥५३॥

जब लोगों ने सुना कि अब शीघ्र ही श्री द्वारकाधीश जी मथुरा आ रहे हैं तो जय जय शब्दों की झड़ी लगाने लगे, विविध कथाओं से कीर्तन करते, सकल कुल युक्त सुशोभित हो रहे थे ।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये चिन्ताराम माथुर द्वारा भूमि-दान वर्णनं नाम द्वादश: सर्ग:

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा० श्री वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में भूमिदान नामक द्वादश सर्ग पूर्ण हुआ ।



अथ त्रयोदशः सर्गः

मथुरायात्रा-वर्णनम्-

द्वारकाधीश देवस्य प्रयाणोपक्रमेऽभवत् ।
हर्षोल्लासमयं सर्वं यात्रामङ्गलमद्भुतम् ॥१॥

श्री द्वारकाधीश जी की प्रस्थान वेला को सुनकर सब लोग हर्ष में भर गये।

सुनिश्चिते वास उरुक्रमस्य च
वनं परित्यज्य मधोर्वने यदा ।
न्यवारयन् विप्रवरा विमोहिता
समागताः पारिख सन्निधौ तदा ॥२॥

जब यह सुना कि भगवान् द्वारकाधीशजी वृन्दावन छोड़कर मथुरा पुरी जा रहे हैं, तो अनेक ब्राह्मण आये और पारिखजी से बोले।

कथं त्वया नो विपिनं हि त्यज्यते
कथं नु द्वाराधिपतिर्हि नीयते ।
ततः समाकर्ण्य विवाद-शान्तये
विलिख्य क्षिप्ता गुटिका प्रभोर्गृहे ॥३॥

आप इस वन को क्यों छोड़ रहे हो और क्यों द्वारकाधीश जी को लेकर जा रहे हो जब यह विवाद बढ़ता हुआ देखा तो कागज की गोली बनाकर डालदी उस पर मथुरा वृन्दावन लिख दिया था।

विलोक्य बालं च ततः समागतं-
प्रसन्न-भावेन समार्चयच्च तम् ।
तथा समेषां विदुषां समक्षतः
सुकर्गलं कर्षयितुं जगाद ह ॥४॥

वहां एक बालक आया, प्रसन्न भाव से उसका पूजा किया और सबके समक्ष गोली डालदी और कहा कि एक गोली उठा लो।

लघुर्वयो तत्रगतोऽन्तिके प्रभो-
स्ततः समानीय चकर्गलं शुभम् ।
पपाठ यत्कर्गलके विलेखितं
"अहं हि वाञ्छामि पुरीं न वार्यताम्" ।।५।।

एक छोटी अवस्था का बालक प्रभु द्वारकाधीश जी के सम्मुख डाली गयीं कागज की गोलियों में से एक उठा लाया उसमें स्पष्ट लिखा था "मथुरा पुरी जाऊँगा न रोकें।"

ततोऽतिहर्षप्रदवृत्त-वाचनात्
सुसज्जितं वाहनमेकमद्भुतं ।
विराजितो द्वारपतिः प्रिया सह
पुरी-प्रयाणोत्सव-मङ्गलक्षणे ।।६।।

तब तो यह हर्षप्रद समाचार सुनकर सुन्दर वाहन तैयार किया गया और उसमें श्री लक्ष्मी जी सहित द्वारकाधीश जी को विराजमान किया गया।

वाद्यमण्डल-वर्णनम्-

अनेक वाद्यानि विभिन्न वादका
विचित्र वेषाभरणैः स्वलंकृता ।
सुवादयन्तोऽथ विरेजुरग्रतो-
यथा विवाहोत्सवमंगलानि च ।।७।।

विचित्र वेषधारी वाद्यवादक, वाद्यों की ध्वनि करने लगे, ऐसा लगरहा था मानों कोई वैवाहिक यात्रा प्रारम्भ हो रही हो।

स्वच्छोत्तरोयवसनैरमलैश्च पीतैः
सद्वस्त्र-खण्ड लसितैर्ननु चोत्तमाङ्गैः ।
नारायण-प्रभुवरस्य सुमंगलेऽस्मिन्
मार्दङ्गिका मुरलिवादनका विरेजुः ।।८।।

पीले सुन्दर दुपट्टे और वस्त्र के खण्डों से उत्तमांग ढके हुए मृदंग वादक और मुरली बादक प्रभु की शोभा यात्रा में सम्मिलित हुए थे।

शोभायात्रा-वर्णनम्-

उष्ट्रोपरि-स्थित जनैः स्वकरोपनीतै-
र्वेणुध्वजैर्नभसिवायुचलैश्चरम्यैः ।
भातिस्म देव ललनाजनवीक्षितं तत्
प्रास्थानिकं सुरपतेरपि किं पृथिव्याम् ।।६।।

कुछ लोग ऊँटों पर ध्वज लेकर चल रहे थे जिनको वायु हिला रही थी सुर-ललनाजन को ऐसा लगा मानों देवराज ही पृथ्वी यात्रा कर रहे हों।

कैश्चिद् हयोपरिलसत् रजतासनस्थैः
कौशेय तन्तु-कविकाऽऽग्रह-व्यग्रहस्तैः ।
संशोभतेस्म विपिने रथिभिश्चयात्रा
वैवाहिकीव पटहैश्च विनादितैश्च ।।१०।।

कुछ लोग चांदी के आसन वाले घोड़ों पर बैठे रेशम की लगाम को खींचने में व्यग्र थे। अनेक रथ-नगाड़े वस्तुतः विवाह मंगल की स्मृति दिला रहे थे।

एके गजेन्द्र-गल लम्बितघण्टिकाभि-
राहुः स्वयं ननु पयोधर गर्जितं वै ।
अन्येऽब्रुवन् करिवर-प्रभयाऽभिभूता
वैवाहिकं हि गमनं रण-मङ्गलम्वा ।।११।।

गजेन्द्रों की घण्टा ध्वनि पयोधर गर्जन की भांति हो रही थी। अनेक हाथी भी शोभा यात्रा की शोभा बढ़ा रहे थे।

कश्चिज्जगाद निजगेह-गतः स्वपत्नीं
भोस्त्वं करिष्यसि न किं सफलं स्वनेत्रम् ।
गच्छत्यहो सुमुखि ! देवयुतः सभक्तो-
वृन्दावनान्मधुवनं चल दर्शनार्थम् ।।१२।।

कोई जन बड़ी त्वरित गति से घर गया और अपनी पत्नी से बोला कि अरी ! क्या तू अपने नेत्रों को प्रभु के दर्शन कर सफल नहीं करेगी, अरे ! द्वारकाधीश जी वृन्दावन से मथुरापुरी जा रहे हैं, चल दर्शन कर।

स्त्रीणां कौतुकम्-

काचिद् ब्रवीति सखि ! सुन्दर-दर्शनार्थं
अग्रेगता सतनया प्रतिवेशिनी मे ।
श्वश्रूरिहैव कुमुखी कर-आत्तयष्टि-
मार्गं निरोद्धुमयते कथमत्र यामि ॥१३॥

कोई सखी बोली हे सखि ! श्री द्वारकाधीश जी के दर्शन करने मेरी पड़ोसिन अपनी पुत्री को लेकर चली भी गई, पर हाय ! मेरी तो सास हाथ में बेंत लिये मार्ग रोककर खड़ी है, मैं कैसे जाऊँगी ।

स्कन्धे निजे स्वतनयं तनयां कराग्रे-
त्वारोप्य ग्राम-युवकश्चलितः स्व-गोष्ठात् ।
रेजे सु-पुष्ट-वपुषा पथिकैः सुदृष्टः
शूरो यथा विलसति प्रति-संगरे च ॥१४॥

एक ग्राम युवक तो अपने स्कन्ध पर पुत्र को, हाथ में पुत्री को लेकर अपने गोष्ठ से बाहर चल दिया तो ऐसा लगता है जैसे कोई शूर युद्ध में चल रहा हो ।

शंखध्वनिः समभवच्च सहस्र-संख्ये-
र्गोकामुखैश्च सहितश्चलने प्रभोर्वै ।
भूयाज्जयः पुनरहोमहता-स्वरेण
लोकाः समूचुरखिलाः करमुत्क्षिपन्तः ॥१५॥

सहस्त्रों शंखों की ध्वनि हुई और प्रभु के आगे बढ़ते ही गोकामुख बाजे बजने लगे, लोग ऊँचे हाथ करके द्वारकाधीश की जय जयकार ऊँचे स्वर से करने लगे ।

विप्राः स्व-शिष्य सहिता रहिताश्छलेन
अग्रे प्रभोर्विविधपाठमुखा व्रजन्ति ।
वेदध्वनिं मधुर-कण्ठ विनिःसृतं च
मार्गे यथा विलिखिता मनुजाः पिबन्ति ॥१६॥

सरल, सशिष्य विद्वान् ब्राह्मण आगे आगे मंगल पाठकरने लगे, मधुर ध्वनि से निकले वेद पाठ को सुनकर लोग चित्र लिखे से देखने लगे ।

अग्रे हयोपरिगता मनुजाः सशस्त्रा–
दीव्यद् गजेन्द्र-मदगन्धमदेन मत्ताः ।
कोलाहलैः सुपटहैश्च समं त्रिलोकीं
प्रापूरयन्निव जयेतिपदैश्च सर्वाम् ॥१७॥

कुछ लोग घोड़ों पर विभिन्न आयुधों को लेकर चल रहे थे और कुछ गन्ध गजों पर। बड़े बड़े धौंसा-नगाड़े जय ध्वनि से मिलकर मानों तीनों लोकों को भरे दे रहे थे।

कश्चिन्मुखेन मुरलीं रणयन् विभाति
कश्चिज्जवेन मुरजं कलयन् प्रयाति ।
काचिन्निजेन करताडनकेन भाति
पद्मेव नृत्यतिमुकुन्द-मनोहरन्ती ॥१८॥

कोई मुख से मुरली बजा रहा था तो कोई बड़े वेग से मुरज को बजा रहा था, कोई स्त्री केवल हाथों की ताली बजा रही थी ऐसी लगती मानों कमला ही मुकुन्द का मन हरती नाच रही हो।

मल्लक्रीडा-वर्णनम्–

क्रीडा बभूव विपिनान्मथुरा प्रयाणे
मल्लाधिपान्वय-भवाः सततं नवीनाः ।
यस्यामनेक-विध शस्त्रधराः प्रसन्ना–
युद्धोन्मुखा इव जनाः समरे व्रजन्तः ॥१९॥

मार्ग में अनेक प्रकार की क्रीडाएँ हो रही थी उनमें मल्ल क्रीडा भी एक थीं। यह नवीन क्रीडा थी, जिसमें अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारी प्रसन्नचित्त ऐसे लग रहे थे जैसे युद्धोन्मुख जन हों।

कौपीनकैः परिवृताः कटिबद्ध-कच्छाः
कौशेय-रक्तवसनैः कपि-सन्निभाश्च ।
सिन्दूर दत्ततिलकाढमिति प्रसिद्धं
कृत्वा यथा रण-मुखेमिलिताः सु शूराः ॥२०॥

वे कमर में कोपीन (चड्डी) बाँधे थे और लाल रेशमी फेंटा कसे हुए थे, उनसे लगते मानों वानर आ गये हों सिन्दूर की आढ लग रही थी मानों शूर रण में जा रहे हों ।

शस्त्रक्रीडा-वर्णनम्-

केचित् स्पृशन्ति चरणौ गुरु-बान्धवानां
गृह्णन्ति केचन जना गुरुहस्तकं के ।
केचित् पटास्त्र-विलसन्ननु वीररूपं
साक्षात् प्रदर्शनपरा विबभुश्च मार्गे ॥२१॥

कोई गुरु बान्धवों के चरणों को स्पर्श कर रहे थे, कोई गुरु के हाथ को अपने माथे पर लगा रहे थे, कोई हाथ में 'पटा' नामक अस्त्र लेकर खेल कर रहे थे मानों वीर रूप ही शोभित हो रहा हो ।

पट्टास्त्र (चाल) वर्णनम्-

केचित्पटास्त्रमुभयोः करयोर्निधाय
उड्डीनकं बहु जवेन विधाय शीघ्रम् ।
उत्थाप्य पादमपरं भ्रमणेन साकं-
खेलां प्रदर्शयति सज्जन संस्तुतश्च ॥२२॥

कोई 'पटा' नामक अस्त्र को दोनों हाथों में पहनकर, बड़े वेग से उड़ी लगाता था, कभी दूसरा पैर उठाकर विविध खेल दिखाता था ।

कश्चित् सुतीक्ष्ण पटनामक शस्त्रखेलां
सव्यापसव्यकर-कञ्जयुगेन रम्याम् ।
ऐला-लवङ्ग-लघु-सर्षप-कृन्तनैश्च
लोकान्निमज्जयति खेलनकौतुकाब्धौ ॥२३॥

कोई पैने पटनामक शस्त्र से बायीं ओर दांयी ओर घूमकर इलायची-लोंग और सरसों की काट करता था । फुर्ती से वाम-दक्षिण भ्रमण करता था ।

काष्ठदण्ड (सटका) वर्णनम्-

कश्चिन्निधाय सटकाख्यमिति प्रसिद्धं
दण्डं करद्वय-युतं च प्रणम्य भक्त्या ।
अग्रस्थितं च पुरुषं लगुडं प्रदर्श्य
वामेतरं प्रकुरुते स्व पदं प्रहर्षात् ॥२४॥

दो हाथों से कोई (गतका,फरी) उठाकर, प्रणाम कर, आगे सम्मुख प्रतिद्वन्द्वी को दिखाकर, पैंतरा चलता था।

हस्तत्रिकं चटचटैन रवेण कुर्वन्
अष्टौकराख्यमिति रूढिगतं तथैव ।
पृष्ठे निधाय निजदण्डमहो जवेन
सम्मोहयत्यतितरां जनता मनांसि ।।२५।।

कभी तीन हाथ लेता, कभी आठ हाथ, (ऊपर दो, नीचे दो और दोनों कंधों पर) लेता कभी गदका पीठ की ओर लेजाकर मिलाता और लोगों के मन हरता।

ढोल वाद्य-वर्णनम्--

वाद्यं सु ढोलकमिति प्रथितं पृथिव्यां
मालानिभं च विनिधाय सुदोरकेण ।
सूक्ष्मेण वेणु-दलकेन सुशोभितेन
संताडयत्यथ करेण च दक्षिणेन ।।२६।।

एक मनुष्य ढोलक वाद्य को गले में माला की भाँति पहनता और पतली खपच्ची से दाहिने हाथ से उसे बजाता था।

वाद्यं च वादयति नृत्यमना-यथैव
क्रीडारतस्य चरणावपि तत्र यातः ।
रङ्गे यथा नटवरः प्रकरोति मुद्रां
क्रीडांऽगणे प्रकुरुते तु भटस्तथैव ।।२७।।

जैसे जैसे ढोलक बजती, वैसे ही खिलाड़ी के पैर उठते थे जैसे रंगशाला में नट क्रीड़ा करता है वैसे ही भट भी नाना प्रकार की क्रीडा करता था।

वनेटिका-चालनम्–

कश्चिद्वनेटि पदवाच्यं प्रचालनं च
नैपुण्यपूर्वकमरं कुरुते प्रदर्श्य ।
हस्तद्वयेन धरणीतलमानमन्तीं
चक्र-स्वरूपमिव भ्रामयति प्रयत्नात् ।।२८।।

कोई 'बनैटी' चलाते चलाते उसका चक्रसा बना देता था और कभी दोनों हाथों से उसे धरती की ओर लाता और चक्र सी नीचे की ओर बनाकर घुमाता था ।

वामे कदाचिदपि दक्षिण पार्श्वके वै
वक्षस्थलाभिमुखमेककरेण कुर्वन् ।
सव्येन चापि निज पृष्ठगतां विधाय
संचालयत्यतिजवेन भटोऽतिमानी ।।२९।।

कभी बनेंटी बाँई ओर कभी दक्षिण ओर जाती कभी वक्षः स्थल के सामने एक हाथ से घुमाता, कभी वाम हस्त से बनेटी को पीठ के पीछे ले जाता और उसे बड़े वेग से चलाता था ।

कश्चित् सु डोरकनिबद्ध वनेटिकां तां
सव्येन चालयति वामकरेण चापि ।
चक्रस्वरूपमिव मस्तकगां विधाय
नीचैस्तथैव कुरुतेंऽगुलिमात्रकेणा ।।३०।।

कोई डोर की बनेंटी को बाँई ओर कभी दक्षिण ओर घुमाता और कभी इतनी तेजी से घुमाता कि वह चक्र सी हो जाती और कभी वनेटी को अँगुली से घुमाकर चक्र सा बना देता था ।

जलपात्र-वनेटिका–

भीमो यथा हि भटशास्त्रकला-प्रवीणः
पात्रद्वयेन लसितां जलपूरितां तां ।
अंगुष्ठमात्र-सहयोग गतां च पूर्वां
पार्श्वस्थितां ऽगुलिकयाऽऽरमिवातनोति ।।३१।।

जैसे युद्ध शास्त्र कला में प्रवीण भीम हो, ऐसे दो पात्रों में जल भर कर जल की वनेटी चलाता था । जलका लेश भी भूमि पर नहीं गिरता था ।

अग्निमयी वनेटिका–

उल्कामयीमथ च तां वनयष्टिकाख्यां
दिक्षु स्फुलिंग-निकरं परिकीर्णयन्तीं ।
संचालयन्नतिमदेन च वीरयोद्धा
संशोभते सुदहन-ग्रसितोयथाऽऽत्मा ।।३२।।

कोई आग भरी बनेटी को घुमाता तब उसके स्फुलिंग चारों ओर फैल जाते थे। जब बड़े वेग से चक्र सा बन जाता, तो ऐसा प्रतीत होता था कि कोई व्यक्ति अग्नि के भीतर फँस गया है।

अंगुष्ठमात्रमथ नर्तित-दोरकां तां
वामे करोति बहुशः पुनरुच्चकैश्च।
सव्यापसव्य-कृतकौतुक-आगतानां
लेभे सु साधुवचनं जयनादकैश्च ।।३३।।

कोई अंगुष्ठमात्र की सहायता से बनेटी को घुमाता था। कभी बाँई ओर करके फिर उसे ऊँचा उछालता था, बाँई दाँई ओर करके दर्शकों से साधुवाद पाता था।

पट-बनेटिका-

कश्चिद् भटः पटयुतामथ तां वनेटीं
खड्गं तथाऽऽस्य कलितं विनिधाय रेजे।
संचालयत्यतिभरां वसनोपगूढां
गोलद्वयेन सुषमां परितोऽत्रकीर्य ।।३४।।

कोई कोई क्रीडक पट ग्रहण करके भी बनेटी घुमाता था। मुख में तलवार भी पकड़ता था और बनेटी (जिस लकड़ी के दोनों छोर पर बड़े लाल २ गोले कपड़े के लगे होते हैं) चलाकर विचित्र शोभा प्राप्त कर रहा था।

'वाना'चालनम्-

चञ्चद्-भुजभ्रमित-चण्ड-गदा-निभेन
वानाभिधेन रिपु-नाशन-दण्डकेन ।
गोलत्रयाग्र-लसितेन सु चालितेन
सम्मोहयन्नरवरान् कुतुकं वितेने ।।३५।।

कोई फड़कती भुजा द्वारा घुमाये गये और गदा के समान रिपुनाशक दण्ड वाले वाने को घुमाता था, जिसमें तीन गोलें नीचे लगे थे, भारी वाने को देखकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे।

कुन्त (भाला) क्रीडा-वर्णनम्–

तत्रागतौ निशित-कुन्तकरौ नृवीरौ
युद्ध-प्रियौ करिवराविव वीर्ययुक्तौ ।
अन्योऽन्य मारण-रतौ त्वरितश्चलन्तौ
खेलारतौ भटवरौ लगतः स्म मत्तौ ।।३६।।

पैंने भाले को लेकर दो योद्धा सम्मुख खड़े होकर बड़ी वीरता से युद्ध कला का प्रदर्शन करते थे, एक दूसरे के मारने को उद्यत भागकर चलते, और बड़े ही सुन्दर लगते थे ।

विद्युत्पत्तिकास्त्र-क्रीडा वर्णनम्–

कश्चिद्भटश्च रणयन् वजनीं शिलाग्रे
विद्युच्चमत्कृति-निभां कुरुते क्षणेन ।
तालेन ढुंढुमिति ढोलक निःसृतेन
सार्धं वलेन बहु नृत्यति वीर कर्मा ।।३७।।

कोई भट 'वजनी' को पत्थर पर खेंच कर मारता जिससे बिजली की चमक पैदा होती थी । ताल की ढुम ढुम जो ढोलक से निकलती थी उसके साथ वह वीर कर्मा खेल दिखलाता था ।

चक्रं सुदर्शनमिव प्रचलत्तदैव
नीत्वा करे प्रविशति प्रचुर श्रमेण ।
भूमौस्वपन् लुठति चालयतिस्म चक्रं
योद्धा यथा प्रकुरुते निजदेहरक्षाम् ।।३८।।

'चक्र' नामक आयुध को सीधा करके कोई वीर सो जाता और सोकर उसे चलाता था यह शिक्षा देता था कि शत्रुओं से घिर जाने पर रक्षा कैसे करनी चाहिये ।

चापं गदासि-विशिखान् क्रमशो गृहीत्वा
कुन्तायुधं परशु-मुद्गर-खेट-पाशान् ।
संचालयत्यथ परेण जनेन साकं
खेलाभिलाषि-पुरुषो मृदुहास-युक्तः ।।३९।।

एक अच्छा खिलाड़ी गदा-तलवार-बाण-भाला-फरसा-मुगदर-खेट-पाश की क्रीडाओं से सबका मन रंजन करता और मन्द मुसकान करता था ।

खङ्ग-क्रीडा–

खङ्ग प्रचालनपरो मनुजोऽतिधीरः
सव्यापसव्य पद चालन कौशलेन ।
भूमौ क्वचिद्वियति चापिगतिं प्रदर्श्य
नेत्रे पिधाय कुरुते नटवत्सु-खेलाम् ॥४०॥

तलवार चलाने वाला पुरुष, पैंतरा चलकर कभी भूमि में, कभी उछलकर आकाश में नेत्र बन्द करके नट का सा खेल करता था ।

शेते यदाऽत्र पुरुषो ह्युरसा धरण्यां
एलां स्पृशन् स्वरसनाग्रतलेन चापि ।
तत् पृष्ठभाग-लसितो मनुजस्तथैव
शेते तदा प्रकुरुते दलनं च तस्याः ॥४१॥

कोई तो 'काट' करता था अर्थात् एक पुरुष नीचे की ओर मुखकर लेटता और जिह्वा निकालकर लौंग या इलायची को छूता, दूसरा उसके ऊपर स्वास्तिक चिन्ह की भांति लेटता और खिलाड़ी लौंग को पटा या तलवार से काटकर फेंक देता था (जिह्वा का स्पर्श भी नहीं होता था ।)

खङ्गद्वयं सुनिशितं छुरिकादि-युक्तं
संभ्रामयन्नथ जवेन कलाप्रवीणः ।
खण्डद्वयं च विदधाति लवङ्गकस्य
नेत्रे पिधाय कुरुते पटकास्त्र खेलाम् ॥४२॥

कोई दो तलवार लेकर छूरी लेकर घुमाता था और लौंग के दो टुकड़े आंख बन्द करके पटा से कर देता था (पठा पत्ती लगा हत्था वाला अस्त्र)

एवं प्रदर्श्य बहुशः कुतुकं च धीरा–
राजाधिराज-शुभ मंगल कर्म-व्यग्राः ।
अग्रेसरा इव मुहुर्जनताभिवन्द्या–
गच्छन्ति मल्लसहिता मथुरानगर्याम् ॥४३॥

इस प्रकार अनेक खेल, अखाड़े के लोग दिखता रहे थे और राजाधिराज की मंगल यात्रा में व्यग्र हो गये थे। वड़ी वड़े मल्ल इसकी शोभा बढ़ाते, मथुरा नगरी की ओर आ रहे थे।

विवुधपतिरितीत्थं दिव्य वृन्दावने वै
विपिनमनुवसन्तीं राधिकामात्मशक्तिम् ।
मनसि बहुप्रसन्नः संग आदाय याने
विपुल-नरसमूहेनान्वितो गन्तुमीहे ॥४४॥

इस प्रकार भगवान् द्वारकाधीश अपनी प्रियतमा को साथ लिये, मन में प्रसन्न से, विशाल जन समुदाय के साथ मथुरा पधार रहे थे।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये मथुरा मंगल समये शस्त्र क्रीडा वर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः

इति श्री श्रीवरशास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री-द्वारकाधीश महाकाव्य में त्रयोदश सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ चतुर्दशः सर्गः

श्रीमथुरा वैभवम्-

आयातिदेव-मथुराधिपतिः स्व जन्म-
स्थानं च भूरि कृपया निज-भक्तयुक्तः ।
आकर्ण्यवृत्तमतिकौतुक-चित्त-युक्ता-
धावन्ति पूजन-रता कर-आत्त-हाराः ॥१॥

भगवान् द्वारकाधीश 'मथुराधिपति' अपनी ही जन्म भूमि में बड़ी कृपाकर अपने भक्तों को साथ लेकर आ रहे हैं यह वृत्तान्त सुनकर लोग हाथों में फूलमाला तथा पूजन की अन्य वस्तुओं को लेकर दौड़ दिये ।

वीथीष्वनेक पुरुषाः कृतसम्प्रचाराः
संप्रेरयन्ति मनुजान् हरि-दर्शनार्थम् ।
संत्यज्य कर्म विपुलं गृहजं हि सर्वं
गच्छन्त्यनेक भवनार्गल-मुक्त-द्वाराः ॥२॥

गलियों में लोग दौड़ने लगे और दूसरे मनुष्यों को प्रेरणा देने लगे, लोग अपने गृह कार्य छोड़कर, यहाँ तक कि कोई तो बिना सांकर लगाये कुछ द्वार खुले ही छोड़ कर दौड़ पड़े ।

माथुरीणां वार्ता-वर्णनम्-

लेखे ! मृतासि किमु ? गच्छति देवयात्रा
चित्रे ! गतैव विपणे प्रतिवेशिनी मे ।
चम्पे ! कथं त्वरयसि, प्रभु-दर्शनाय
गच्छाम्यहं, चलत भो ! निजगाद गीता ॥३॥

गीता बोली अरी, लेखा ! क्या मर गई, अरी देव यात्रा निकली जा रही है, चित्रा ! पड़ौसिन बाजार में पहुँच भी गई । अरी चम्पा तू बड़ी जल्दी कर रही है मै भी चल रही हूं चलो ।

तासांनिज-दशा-विस्मरणम्-

काचिन्निधाय शिरसि-स्फुरदुत्तरीयं
ग्रैवेयकं स्वकटि-भूषणकं विधाय ।
ग्रीवां निजां स्वकटि-भूषणकैर्विभूष्य
गच्छत्यरं निजशरीर-दशां निवार्य ॥४॥

कोई अपने सिर पर फड़कते उत्तरीय वस्त्र को धारण किये, ग्रीवा में हार, कटि में करधनी के स्थान पर हार को, कमर में खूसकर और करधनी को हार के स्थान पर पहन, बड़ी तीव्र गति से अपने शरीर की दशा को भूलकर चल दी ।

विचित्रदशा-वर्णनम्-

काचिद्दधार ललितं खलुकर्णपूरं-
विस्मृत्य कर्णमपरं रभसा चलन्ती ।
दृष्ट्वा च कर्णमपरं गत-कर्णपूरं
शोचत्यहो विगलितं पथिभूषणं मे ॥५॥

कोई एक कान में कर्णभूषण पहनकर चल दी और दूसरा कान देख कर उसमें कर्णभूषण न देखकर मार्ग में सोच में पड़ गई ।

उत्सृज्य कापि निज भोजनपात्रमग्रे
सन्दर्शनार्थमसुरारि-हरेः प्रसन्ना ।
धावत्यहो वुध-जन-प्रगतेन तेन-
मार्गेण-लुप्त हृदया गत-चेतनेव ॥६॥

कोई खाने की थाली को छोड़कर भगवान् के दर्शन को भाग दी, वह उस मार्ग से भागने लगी जिससे अन्य बुधजन जारहे थे । उसकी दशा ऐसी थी मानों गत चेतना हो ।

दध्योदनं मुखगतं स्वपमार्ज्यहस्तात्
हस्तं स्वकं निजपटेन च संस्पृशन्ती ।
दत्ताञ्जनेकनयना मधुरं रटन्ती
गोपीव भाति विपिने प्रिय-संगमोत्का ॥७॥

कोई तो मुख पर दधि-ओदन को हाथ से पोंछती, अपने हाथ को अपनी ही साड़ी से पोंछती, एक नेत्र में ही अञ्जन लगाये मीठे वचनों को बोलती, वृन्दावन में रास के समय गई गोपी की दशा का स्मरण करा रही थी।

स्नान-क्षणे विदित कृष्णगति-प्रवृत्ति-
रार्द्र-निजांग-लसितैर्वसनैश्चचाल ।
मार्गे पतिं सखियुतं च निरीक्ष्य मुग्धा
व्रीडीभरा प्रतिययौ न ययौ तथाग्रे ॥८॥

एक को जैसे ही पता लगा कि द्वारकाधीश आ गये तो उस समय स्नान कर रही थी, गीले ही शरीर, गीले ही वस्त्र से दौड़ दी। मार्ग में मित्रों के साथ पति को देखा तो लज्जा के कारण न तो आगे बढती न लौटी ही।

काचिज्जगाम भवनोपरिभाग भूमौ
काचिद् गवाक्षमधितिष्ठति पृष्ठभागे।
कुड्येकरं धृतवती ननु काचिदन्या
सम्भाषणं प्रकुरुते सुतमानयन्ती ॥९॥

कोई तो भवन के ऊपर भागकर चली गई, कोई दीवाल पर चढकर गोखा में से देखने लगी, किसी ने दीवाल पर कपड़े धर दिये और बच्चे को लाती बतराने लगी।

लाक्षारसेन निजमाननमर्चयन्ती
पादद्वयेऽरुणिमरागमथोत्सृजन्ती ।
काचिज्जगाम सहसा प्रियमालपन्ती
नासाविभूषणमथो श्रवणं नयन्ती ॥१०॥

कोई स्त्री तो लाक्षारस से अपना मुख ही चीतने लगी, वह अधर रंगना ही भूल गई थी, दोनों पैरों में अधर राग लगा लिया था। कोई कोई अपने प्रिय से बोलती हुई नासिका के भूषण को कान में लगाकर भाग रही थी।

काचिद्दधार तिलकं भुजदण्डमध्ये
काचिद्दधार शलकाकृतिमानने स्वे।
गोधूम-पूर्णक-लवेन सुशोभितांगी
काचिज्जगाम निजदेह-निवृत्ति-वृत्तिः ॥११॥

किसी ने भुजदण्ड में तिलक लगाया है, किसी ने सींक के आकार का चिन्ह अपने मुख पर ही कर लिया, तो किसी ने गेहूं का आटा ही मुख पर मललिया है, शीघ्रता में किसी ने अपने देह की सुध भी नहीं ली है ।

कृष्ण-प्रियोत्सव पुरी सकला विभाति
शाङ्‌र्ग यथा सुरपतेर्नभसि प्ररूढम् ।
वस्त्रैश्च पीत-हरितैरसितैः-सितैश्च
चित्रैश्च रक्त-कपिशैरथ कर्बुरैश्च ।।१२।।

प्रभु के उत्सव से सम्पूर्ण नगरी सुशोभित हुई मानो इन्द्र धनुष छा रहा हो क्योंकि हरे-पीले-गुलाबी-सफेद रंग के चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये हैं ।

नीतं मनो वसन-हृत्-वनमालिकेन
वृन्दावनावनि-चरेण मुकुन्दकेन ।
तस्माद्विहाय सकलानि गृहाणि नूनं
अत्रागताश्च विकलाः प्रभु सन्निधाने ।।१३।।

चीरहारी, वृन्दावन वासी वनमाली मुकुन्द ने मन हरलिया है अतः नारियाँ अपने सकल कार्यों को छोड़कर आई हैं वे द्वारकाधीश को साक्षात् प्रभु मानती हैं ।

वर्णनं मथुरापुर्याः कर्तुं को वा क्षमः पुमान् ।
यस्यां जातो हरिः साक्षात् कोटि लक्ष्मीः समाश्रयः ।।१४।।

श्री मथुरा पुरी का वर्णन करने में कौन समर्थ है जिसमें कोटि लक्ष्मी के समाश्रय साक्षात् हरि भगवान् उत्पन्न हुए थे "मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः" ।

अहो अलं पुण्यतमं सनातनं
अहो सदा श्लाध्यतमं मधोर्वनम् ।
यद्देश देवाधिपतिः श्रियः-पति-
र्मूर्त्यात्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ।।१५।।

आहा, धन्य है यह सनातन श्लाध्यतम मधुवन-मथुरा जहाँ देवाधिपति लक्ष्मीपति भगवान् मूर्ति रूप से यात्रा कर रहे हैं ।

अहो धरेयं जन मोहनीश्वरी
मनोहरी पापविनाशिनी पुरी ।
पश्यन्ति यत्रत्यजनाः सुमंगलं
महोत्सवं माथुर देश सम्भवम् ।।१६।।

आहा यह पृथ्वी जनमोहिनी है, मनो हारिणी पाप विनाशिनी है जहाँ के जन, सुमंगल महोत्सव जो मथुरा में होते रहते हैं देखते हैं।

अहोमधुपुरीधन्या पुण्यमूर्तियुता सदा ।
उद्यानोपवनारामैर्वृताऽऽमरपुरी यथा ।।१७।।

धन्य है मथुरा जो पुण्य मूर्ति है और बड़े बड़े बगीचे उपवन आराम से ऐसे घिरी है जैसे देवपुरी अमरावती हो।

उच्च गोपुरशालीया धृतपल्लवतोरणा ।
चित्रध्वज पतकाग्रा सम्मार्जित चतुष्पथा ।।१८।।

जिसमें बड़े बड़े ऊँचे गोपुर, गोशाला हैं पत्तों के तोरण बँधे है स्वच्छ चौराहे और रंग विरंगी पताका लगी हैं।

द्वारि द्वारि गृहाणां च मुक्ता पूगी-फलेक्षुभिः ।
अलंकृताऽक्षतैः कुम्भैर्दधि-धूप सु दीपकैः ।।१९।।

गृहों के द्वार द्वार पर मोती-सुपाड़ी-फल-इक्षु दण्ड बँधे हैं। अक्षत कुम्भ दधि-धूप और दीपकों से सारी नगरी अलंकृत है।

आत्मारामैः पूर्णकामैर्मुनिभिः संस्तुता शुभा ।
प्रीत्युत्फुल्लमुखै-र्भक्तैरञ्चितादेव-वन्दिता ।।२०।।

यह नगरी आत्माराम-पूर्ण काम मुनियों द्वारा स्तुत्य रही है, खिले कमल से वदन वाले भक्तों के द्वारा भी यह देव वन्दिता पूर्ण रही है।

मधु भोजक दाशार्ह-ककुरान्धक-प्रेयसी ।
सौभरि-सेवित-प्रान्ता जगन्मङ्गल-दायिनी ।।२१।।

मधु-भोजक-दशार्ह-ककुर-अन्धक वंशवलों की यह बड़ी प्रिय रही है। इसीके कानन में सौभरि ऋषि रहे थे, यह जगत् को मंगल दायिनी मानी जाती है।

शंख-सूर्यादिवाद्यैश्च ब्रह्म-घोषैश्च राजिता ।
पूजितैर्माथुरैरर्च्या दीनोद्धृति परायणा ।।२२।।

शंख-तूरी-वाद्यों से, ब्रह्म घोष (वेद ध्वनि) से शोभित पूजित माथुरों द्वारा व्याप्त दीनोद्धार परायण है।

नट-नर्तक-गन्धर्व-सूतमागध-वन्दिता ।
उत्तमश्लोक-चरिता यमुनाजल-संगता ।।२३।।

नटनर्तक-गन्धर्व-सूत-मागधों से वन्दित है, भगवान् के मंगल चरित्र से युक्त और यमुना जल से संगत है ।

स्फाटिक-निर्मित-द्वारा गोपुरादि विलासिता ।
धातु पित्तल कुड्य-या परिखातः सु शोभिता ॥२४॥

स्फाटिक के बने द्वार हैं, गोपुरों से शोभायमान है । धातु और पीतल की दीवालें हैं और परिखाओं से सुशोभित है ।

सौवर्ण भवना दीप्ता नानालंकार-भूषिता ।
वैदूर्य-वज्ररत्नाढ्य विद्रुमागार-शोभिता ॥२५॥

जो सुवर्ण के बने भवनों से तथा नाना अलंकारों से भूषित, वैदूर्य-हीरक-रत्न आदि से शोभित है ।

रम्भावृन्द-युता नित्यं सिक्त-चत्वर-वीथिका ।
माल्यांकुरवती पुण्या गीर्वाण-मनसां प्रिया ॥२६॥

कदली के वृन्द जहाँ लगे रहते हैं चौराहे और गली सीचें जाते हैं और जो माल्यांकुरों से पवित्र और देवों की प्रिय है ।

गगनस्पर्शि हर्म्या या हेम-रत्न लसद्गृहा ।
कंस-दुर्ग-युता देव-राजधानी यथा स्थिता ॥२७॥

जहाँ के भवन गगन को स्पर्श करने वाले सुवर्ण और रत्नों से सुशोभित हैं । कंस के किले से युक्त देवों की राजधानी की भाँति हैं ।

रत्नसोपान-कालिन्दीतीर-भाग-युता शुभा ।
अलकेव नवीना या व्यासदेव-नमस्कृता ॥२८॥

कालिन्दी के तट की सीढी रत्न जटित हैं, अलकापुरी की भांति नवीन और व्यासदेव द्वारा वन्दनीया है ।

कालिन्दो जलकल्लोलकोलाहल सुपूजिता ।
तद्दोलासु समारूढा नायिकेव विराजते ॥२९॥

कालिन्दी जल की तरंगों के कोलाहल से पूजित हैं ऐसा प्रतीत होता है कि हिंडौले में मानों कोई नायिका बैठी हो ।

चतुर्द्वार-समायुक्ता बहु शोभित सत्पथा ।
नानालंकार-संयुक्ता राजतेऽद्य महोत्सवा ॥३०॥

सुन्दर चार द्वार हैं शोभित मार्ग हैं नाना अलंकारों से युक्त वह नगरी महोत्सवों से व्याप्त सुशोभित रहती है।

धन्येयं मथुरा-पुरी सुखकरी श्रीकृष्ण-सेवाकरी
आयुः-क्षेमकरी सदाऽऽमयकरी गोविन्द-लीलादरी।
भक्ताऽऽभीष्टकरी विमुक्तिनगरी सूर्यात्मजा-सुन्दरी
शत्रुघ्नस्य मनोरथाग्रहकरी लोकत्रयाधीश्वरी ।।३१।।

धन्य है यह मथुरापुरी, सुख देने वाली, श्री कृष्ण की सेवा करने वाली, आयु और क्षेम करने वाली, अभय दायिनी और गोविन्द की लीला स्थली है, भक्तों को अभीष्ट देने वाली, मुक्ती की नगरी, यमुना से सुशोभित शत्रुघ्न के मनोरथ पूर्ण करने वाली, तीनों लोकों की अधीश्वरी है।

धन्या भारतभूतले मधुपुरी शत्रुघ्न-प्राणेश्वरी
पापच्छेदकरी यमा-भयकरी काश्यादि तीर्थेश्वरी।
नाना भक्त-वरैंरभीप्सितचरी आस्ते हिसर्वेश्वरी
सद्धर्मद्रुम-रक्षणैकव्रतिनां शिक्षाकरी स्वीश्वरी ।।३२।।

भारत भूतल में मधुपुरी धन्य है, शत्रुघ्न की प्राणेश्वरी है, पाप छेदन करने वाली यमराज के भय से अभय करने वाली, काशी काँची, जगन्नाथ पुरी आदि प्रसिद्ध पुरियों की ईश्वरी अनेक भक्तों के द्वारा ईप्सित और जो सबकी स्वामिनी हैं। सत्धर्म-द्रुम रक्षण में व्रती, शिक्षाकरी और परमेश्वरी है।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये मथुरा शोभा वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में मथुरा शोभा नामक चतुर्दश सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ पंचदशः सर्गः

शोभायात्रा-स्वागत वर्णनम्–

राजाधिराजस्य विशाल-यात्रा
यदाऽऽगताऽश्वेभ-रथादियुक्ता ।
कोलाहलोऽभून्मथुरानगर्यां
वाद्यैश्च-गीतैश्च सु मङ्गलैश्च ॥१॥

जब राजाधिराज की विशाल शोभायात्रा हाथी-घोड़ों रथों से युक्त मथुरा में आई तो मथुरा नगरी में कोलाहल मच गया, वाद्यों-गीतों और मंगलों से नगर भर गया।

कश्चिज्जलं-गन्ध-युतं करोति
कश्चित् पयः पाययति प्रसन्नः ।
पिबन्तु भो रुच्यनुकूलमत्र
मा यात हित्वा विनिवेदनं नः ॥२॥

कोई जल में गंध डाल रहा है, कोई दूध पिला रहा है और कह रहा है कि भाइयो ! बिना पिये कोई मत जाना।

यात्रा च गोघट्ट समीप-देशे
हट्टान्तिके राजति पूज्यमाना ।
गच्छन्तु द्रष्टुं ननु दर्शनीयां
दृष्टा श्रुता या न कदापि लोके ॥३॥

जब यात्रा 'गौघाट' के समीप में आई और बाजार में शोभित थी तब हल्ला मच रहा था कि देखने योग्य यात्रा देखने जाओ ऐसी यात्रा न तो किसी ने देखी और न सुनी है।

ढक्का-ध्वनिर्दुन्दु-भिवाद्य-शब्दै–
र्विमिश्रितो भाति स्वरैर्महोच्चैः ।
"कड़ी कड़क्कादि" विशिष्ट-नादैः
पुरी बभौ मङ्गल-वाद्यकैश्च ॥४॥

नगाड़े बज रहे हैं, दुन्दुभि के घोष मिलकर विचित्र ध्वनि पैदा कर रहे हैं। 'कड़ीकड़क्कड़' नामक बाजों से मंगल वाद्यों से मथुरा नगरी बड़ी सुन्दर लग रही है।

वाद्य-वृन्द वर्णनम्-

"बैंडाख्य" वाद्यादि कुतूहलैश्च
पूर्णाऽभवर्त्तहि मधोः पुरी सा।
सुवस्त्रकै-र्वादक-वृन्दजातै-
र्बभूव रम्येन्द्र-पुरीव तर्हि ॥५॥

बैंडबाजों का भी कुतूहल देखने योग्य है, बाजे वाले सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए हैं, मथुरा नगरी इन्द्रपुरी की याद दिला रही हैं।

सपादयामै-र्वसनैश्च नद्धैः-
सुपेटिका-नद्ध-कटिप्रदेशाः।
संराजितै राजतमुद्रिकाग्र्यैः
कुर्वन्ति सेनानुकृतिं चलन्तः ॥६॥

बाजेवाले पैरों में पायजामा पहने हैं, कमर में चौड़ी पेटी लपेटे हैं, पेटीपर एक विशेष चमक की चौड़ी मुद्रा बनी हुई है एक प्रकार से सेना के वीरों का सा अनुकरण कर रहे हैं।

वाद्यं करे धारयतिस्म कश्चित्
कश्चिद्विशालांसवरे च धत्ते।
दधन्नथोष्णीषमहो प्रसन्नो-
रणाग्र-गामी-मनुजो यथास्ते ॥७॥

बाजे वालों में कोई हाथ में बाजा लिये है, कोई कंधे पर भारी वाद्य रखे हैं, अपने सिर पर विचित्र पगड़ी पहने कोई शोभित था ऐसा लगता मानो रण के स्थल में कोई योद्धा चल रहा हो।

कश्चित् करे वेत्रकभुच्चनीचैः
करोति भूयो निजकौशलेन।
सराजतैः कीलक-सन्निभैश्च
सुशोभितं-कंचुकमादधानः ॥८॥

कोई हाथ में बेंत लिये हुए है और बड़े ढंग से कभी नीचा करता है, एक ऐसा सुन्दर कंचुक पहने हैं जिसमें चांदी की मोटी बटनें लगीं हैं।

दण्डेन संकेतमवाप्य सर्वे
चलन्ति तिष्ठन्ति च वादयन्ति।
एको-द्वि-रित्यादिवचोभिरुच्चै-
र्गीतान्यनेकानि सुपूरयन्ति ॥९॥

उसके वेत्र का संकेत प्राप्तकर वाजे वाले चलते हैं ठहरते हैं और वाजा वजाना प्रारम्भ करते थे, एक-दो-तीन इत्यादि वचनों से संकेत पाकर अनेक (लोक के) गीत गा रहे हैं।

दण्डं-गृहीत्वा चलतिस्म कश्चि-
न्नामाङ्कितं-ज्ञापनकं प्रदर्श्य।
सज्जाविशेषेण लसन्मनुष्यः
सगर्वमुत्थापित-पाद-पद्मः ॥१०॥

कोई दण्ड हाथ में लेकर और बैंड का नाम अंकित वाला 'विज्ञापनपट्ट' लेकर बड़े गर्व से पैर उठा उठाकर रख रहा रहा है। मानों कोई सज्जा हुई हो।

तत्पृष्ठभागेऽहि-निभांश्च वक्रान्-
सुदर्शनान् वायु-प्रपूरितांश्च।
भौं, भौं, सुशब्दैः श्रुति-हारिकांश्च
भौंपान् दधाना मनुजा विभान्ति ॥११॥

उसकी पीठ के भाग में सर्पाकार के वक्र वाद्य बड़े ही दर्शनीय हैं, और जो मुख वायु से बजाये जा रहे हैं, कानों को प्रिय लगने वाले, भौं भौं भौं भौं शब्दों को करने वाले वाद्यों से वाजे वजाने वाले बड़े सुन्दर लग रहे हैं।

कक्षे निधायापि ढपाख्य-वाद्यं-
दण्डद्वयेनाशु करोति नादम्।
तालादिबद्धं मधुगीति-युक्तं
मनोहरं कर्ण-प्रियं शुभं वै ॥१२॥

एक बाजे वाला अपनी कटि में ढप को रखे है और दोनों हाथ के दण्ड से बजा रहा है, गाना तालबद्ध मधुर गीति से युक्त मनोहर और कर्ण प्रिय है ।

कश्चित् कराग्रेण तलेन वापि
गोलाग्रदण्डेन जवेन चापि ।
चक्राकृतिं क्वापि विधाय पार्श्वे
ढं ढं प्रकुर्वन् बहु भाति मध्ये ।।१३।।

कोई हाथ की अंगुलियों से बजाता है तो कोई हथेली से और कोई गोला लगे दण्ड से बड़े वेग से बजाता है और बजाते हुए उस दण्ड को चन्द्राकार बना देता ढंढंकरता शोभित होता है ।

रक्तं च पीतं हरितं च नीलं
शुभ्रं-ध्वजं "ना" च धुनोति कश्चित् ।
सु सीटिकामुच्च-निनाद युक्तां
सी सीति-शब्दैर्लसितां करोति ।।१४।।

कोई मनुष्य लाल-पीत-हरित और नील-श्वेत ध्वजों को लेकर हिलाता था । (जो विभिन्न संकेतों की सूचना देतीं हैं । साथ में सी सी सी सी ध्वनि वाली सीटी बजाता है ।)

माथुराणां प्रसन्नता-वर्णनम्–

विप्राः पुरस्तादथ माथुराख्या–
गायन्ति गीतं कर-आत्त-दण्डाः ।
विधाय गोलं बहु शोभनीयं
कूर्दन्ति गर्जन्ति चलन्ति सौम्याः ।।१५।।

आगे आगे मथुरा के माथुर ब्राह्मण हाथ में सजी छड़ी, लाठी लिये गीत गा रहे हैं, वे गोल बनाते गरजते कूदकर, और चलते हैं ।

लुप्ता च गौ विंशति-रूप्यकाणां–
प्राप्ता च द्वा-विंशति-रूप्यकाणाम् ।
नीता च वृन्दावन-मध्यभागाद्
दशाधिकै-स्त्रिशद्रूप्यकैस्तु ।।१६।।

बीस रुपये की गाय खोगई थी, बाईस की पागई, वृन्दावन से तीस और चालीस की आगई।

(राधारानी की ओर उनका संकेत था, जो राजाधिराज के साथ आ रही थी)

चौकाख्य हट्टस्य च मध्यदेशे
लक्षाधिकाःपूजयितुं प्रवृत्ताः ।
निमेष-शून्यैर्नयनैर्विलोक्य
तुष्टा बभूवुर्मनुजाः समस्ताः ॥१७॥

मथुरा के चौक बाजार के समीप लाखों व्यक्तियों की भीड़ एकत्र होने लगी और टकटकी लगा कर शोभा यात्रा देखने लगी।

समुज्ज्वलैश्चन्द्रनिभैश्च-वस्त्रै–
राच्छादिता भूः कुसुमै स गन्धैः ।
उपर्यधोमण्डप-वच्च रम्यं
बभूव हट्टं समलङ्कृतं तत् ॥१८॥

समस्त बाजार सफेद चांदनियों से पाट दिया गया था और पुष्पों से पृथ्वी को ढक दिया था, दोनों तरफ ऊपर नीचे मण्डप सा बन गया था।

द्वाराणि पूगीफल-तोरणैश्च
रम्भा-दलैश्चापि सुशोभितानि ।
दध्यक्षतैश्चार्चितकुम्भ-दीपैः
सर्वत्र भक्तैः समलंकृतानि ॥१९॥

भक्तों द्वारा द्वारों पर सुपाड़ी के वन्दन वार बाँधे गये थे और केले के खम्भ रखे गये थे, दधि और अक्षत से पूजित सुन्दर कलश रखे थे और उनके ऊपर दीपक शोभायमान थे।

रम्भादलादीनि मनोहराणि
सर्वत्र वस्त्रादिभिरन्वितानि ।
वर्णैरनेकैर्ननु मूर्तिमन्तरे
नरा यथा मंगल-कर्मसंस्थाः ॥२०॥

केले के खम्भे वस्त्रों से ढके गये थे वे अनेक वर्णों से ऐसे लग रहे थे मानों मनुष्य मंगल कर्म में लगे हों।

कीर्तन मण्डलानां-वर्णनम्–

वटोदरा-सूरत-मुम्बईतः
समागतै-र्भक्तवरैस्तथान्यैः ।
दिल्ली-कराची-पटनादि-संस्थैः
समर्चितो देव-पतिर्नगर्याम् ॥२१॥

वड़ौदा-सूरत-मुम्बई-दिल्ली-करांची-पटना आदि नगरों से आये मनुष्यों ने उनका मार्ग में स्वागत किया।

करोति सन्मण्डलकं च शीघ्रं
तालध्वनिं कांस्य-निनादनञ्च ।
कश्चिन्निधायासनकं च तत्र
गोविन्द ! गोविन्द ! इतिब्रवीति ॥२२॥

कोई वैष्णव तो गोलाकार मण्डल बनाकर तालियाँ बजाकर कांसे के वाद्य के साथ स्वर मिला रहे थे गा रहे थे, और कोई उनके ऊपर चढ़कर गोविन्द का नामोच्चारण कर रहे थे।

चम्पास्रजं मालति-पुष्प-गर्भां
सुवर्णसूत्र-ग्रथितां विशालाम् ।
ददाति कश्चिद्रथसंस्थितं तां
ईशार्चकं देव समर्पणार्थम् ॥२३॥

चम्पा के पुष्पों की माला जिसमें सुवर्ण के धागे थे बीच में मालती के पुष्पों के गुलतर्रा लगे थे, लिये हुए भक्त, रथ में विराजमान प्रभु को प्रदान कर रहे थे।

जूना-मन्दिरे विश्राम वर्णनम्–

विश्रान्ति घट्टस्य समीप वीथ्यां
श्रीश्रेष्ठि-निर्मापित धर्म्य-हर्म्ये ।
श्रीद्वारकेशो-विभुरागतोवै
जगाद काचिन्ननु कोमलाङ्गी ॥२४॥

विश्राम बाजार के समीप (गोलपाड़े) में मालानी द्वारा बनाये गये सुन्दर भवन में द्वारकाधीशजी आ गये हैं, कोई स्त्री उच्च स्वर से अपनी सखी को बतला रही है।

हट्टश्च-सर्वोऽपि बभूव पूर्णो
नृभिः-समेतैः प्रभु-दर्शनार्थम् ।
आषोडशाच्छष्टि-वयोऽधिकाभि-
र्हर्म्याणि पूर्णानि कुलांगनाभिः ॥२५॥

समस्त बाजार मनुष्यों से भरा पड़ा था। १६ वर्ष से लेकर ७०-८० वर्ष तक की वृद्धाओं द्वारा छत-छज्जे भर गये थे।

विजया सेवकानां वर्णनम्—

भंग-स्थली-भंग-सुघट्टनेन
गोलामयी राजति विप्र-युक्ता ।
ब्रवीति कश्चिद्विजया-प्रमत्तो–
देवोपमो माथुर-वंश-दीपः ॥२६॥

भंग स्थली भाँग के घोंटने से, गोलों के रखे होने से बड़ी ही सुन्दर लग रही थी और वहाँ विराजित ब्राह्मणों में से कोई विजयामत्त स्तुति कर रहा था।

सुर-नर-किन्नर-गन्धर्व-यक्ष-भूतादयो–
नैकवारमनुनयन्तीदृशो विज्ञायताम् ।
लक्ष्मीर्निजसहचरीभिर्वन्दिता मुहुर्मुहु–
स्तिष्ठति बिना येन नैव क्षणं सैव ज्ञायताम् ।
मारिता सु पूतना बक-स्वसा बकोऽपि पुनः
मारितो ह्यघासुरः प्रलम्बारिर्ज्ञायताम् ।
वृन्दावन-वीथीषु सुगोप-तनयाभिः सह
श्रीरासलीलाकारी दैत्यारिः सदा ज्ञायताम् ॥२७॥

ये भाई द्वारकाधीश हैं जिनकी वन्दना देव-नर-किन्नर-गन्धर्व-यक्ष और भूतादि गण करते रहते हैं। लक्ष्मी, अपनी सखी के साथ वन्दिता होते हुए भी जिनके विना क्षण भी नहीं रहती हैं। इन्होंने ही पूतना बक की भगिनी मार डाली और इन्होंने ही बकासुर मारा था। वृन्दावन की गलियों में गोप कन्याओं के साथ रास लीला इन्होंने ही की थी, ये दैत्यों के शत्रु हैं।

द्वारका नगर-रचनाकारी भयहारी वै
दितिकुलसंहारो काम-मानहारी ज्ञायताम् ।
शंङ्क-चक्र-गदा-पद्मधारी पीताम्बरधारी
भक्त-हितकारी नर-दुःख-हारी ज्ञायताम् ।
वसुदेव-देवकी-मनोऽभिलाष-पूर्णकारी
भूमि-भारहारी मुनिमनोहारी ज्ञायताम् ।
विपिन-विहारी गोपबाल-सुखकारीसदा
गोवर्धन-धारी पार्थसहचारी ज्ञायताम् ।।२८।।

एक कहने लगा—अरे इन्होंने ही द्वारका नगर बनाया है, ये तो भय भञ्जक हैं, दैत्यों के कुल के संहारक और काम मान के अप-सारक हैं। ये शंख-चक्र-पद्म धारण करने वाले पीतांबरधारी भक्तहितकारी, नर दुःखहारी हैं, देवकी-वसुदेव की मनोकामना पूर्ण करने वाले, भूमि भार हरने वाले, मुनियों को मोहित करने वाले हैं, । विपिन विहारी हैं, गोप बालकों के सुखकारी, गोवर्धनधारी, और अर्जुन के सखा हैं।

कंस भयकारी पाप कालवशकारी सदा
कोटि-कामकारी श्याम तनुर्धारी ज्ञायताम् ।
जरासन्धवध-कारी दुर्योधन-नाशकारी
कुंकुम-तिलक धारी वेणुधारी ज्ञायताम् ।
कमनीयाकृति-कारी कर्मवीर-पुण्यकारी
कलिन्दगिरि-कन्यका-कीर्तिकारी ज्ञायताम् ।
कलिकर्दम-दूरकारी काशीपति-प्रेमकारी
देव-नम्रकारी कम्रकला-धारो ज्ञायताम् ।।२९।।

पापी, कंस को भयकारी काल को भी वश में करने वाले, कोटि काम लज्जितकारी, श्याम वपुधारी हैं। इन्होंने ही जरासन्ध वध किया, दुर्योधन का नाश किया था, ये कुंकुम तिलकधारी वेणुनाद कर रहे हैं। सुन्दर आकृति वाले, कर्मवीर पुण्यकारी और कलिन्द नन्दिनी यमुना की कीर्ति को बढाने वाले कलि कालुष्य को दूर करने वाले, काशीपति विश्वनाथ के प्रिय, देवों को पाठ पढाने वाले और अनेक कलाओं का विकास करने वाले हैं।

जूनामन्दिर-प्राङ्गणे सुविदिते निर्मापिते श्रेष्ठिना
स्वागत्यात्र विराजितो निजजनैः सार्धं स्वभूमौ मुदा ।
स्थित्वा तेऽपि सु गेह-देहविपुलां चिन्तां जहुर्मानसीं
नित्यं दर्शन-लाभ-तुष्टमनुजैर्वैकुण्ठमस्वीकृतम् ।।३०।।

गोलपाड़ा के जूना मन्दिर में भगवान् की सवारी पहुँची तब पारिखजी के अन्य सभी सहायक लोगों ने अपना स्थान ग्रहण किया तथा वहाँ भी आपकी पूजा हुई, लोगों ने ऐसा अनुभव किया कि अब वैकुण्ठ में जाना भी व्यर्थ है ।

प्रयागघट्टस्य सुवीथिकायां
सु 'गौरपारेति' जन-प्रसिद्धम् ।
स्थानाधिपस्यात्र निमंत्रणेन
राजाधिराजः समलंचकार ।।३१।।

प्रयागघाट की सुन्दर वीथिका में जो गौर पारा है, उसमें मालानी सेठ की धर्मशाला में राजाधिराज की पूजा प्रारम्भ हो गई ।

पाटोत्सव-वर्णनम्—

पाटोत्सवोऽभून्मथुरा नगर्यां
रात्रिन्दिवं मङ्गलवन्दनैश्च ।
प्रासादके श्रीमधुसूदनस्य
दिनेदिने संववृधे सुमङ्गलम् ।।३२।।

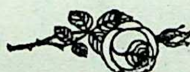
पाटोत्सव की धूम हुई और दिन-रात अनेक प्रकार के मंगल कार्य होने लगे । भगवान् के मन्दिर में नित नूतन उत्सव होने लगे ।

ब्रह्मर्षि-नागेन्दु-मिते-हि वर्षे
पाटोत्सवं गोकुलपारिखोऽकरोत् ।
विधाय सन्तुष्टमना जपादौ
निनाय वार्द्धक्य-वयोऽति-धन्यः ।।३३।।

सम्वत् १८७० विक्रम में श्री गोकुलदास पारिख ने श्रीद्वारकाधीशजी का पाटोत्सव कराया। मन्दिर में ठाकुरजी के विराजमान हो जाने के उपरान्त वे भगवान् के नाम जप-पूजा आदि में अपना समय व्यतीत करने लगे।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये पाटोत्सव वर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में पाटोत्सव नामक पञ्चदश सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ षोडशः सर्गः

श्रीद्वारकाधीश-मन्दिर-वर्णनम्–

श्रीमन्दिरे यमुनातटे राजाधिराज-विराजिते
मयनिर्मित-प्रासादमिव चित्रध्वजैः समलंकृते ।
शरदभ्रमिव स्वच्छे ऽमले प्रासादशिखरैः शोभिते
पद्मयोनि-विमानवाहन-हंसमण्डल न्यक्कृते ।।१।।

श्री यमुना तट पर जहाँ भव्य मन्दिर बना था चित्र-विचित्र ध्वजाओं से अलंकृत था, ऐसा लगता था मानो इसे मय नामक दानव ने ही बनाया है, अत्यन्त उच्च था और सफेदी की गई थी उससे शरद ऋतु के बादल जैसा लगता था, शिखरों से ऐसा लगता मानो ब्रह्मा के वाहन हंस इस वाहन में शोभित हों ।

शोभा बभूव न यस्यवर्णन-सक्षमो मनुजः सुरः
शेषोऽपि दशशत-फणयुतोह्रियमेति वीक्ष्य विदांवरः ।
श्यामप्रेमप्रभा-परा रसिकप्रियोत्सवमागता
शारदा मतिदा मुदा चकिता स्वयं समुपस्थिता ।।२।।

उस शोभा का वर्णन कोई मनुष्य-देव-शेष भी नहीं कर सकते, प्रभु के प्रेम से अपने प्रिय प्रभु के उत्सव में मुदित होती शारदा ही मानो उपस्थित हुई थी ।

गोलोकवासमपास्य तत्रायाति कृष्ण उरुक्रमः
अथवा स्वजन्म-भुवः प्रकर्षमहोविलोकन उत्तम ।
निजवाहनेन गणैर्वृतः समुपस्थितः किमु वा स्वयं
वाराहदेव निमन्त्रितो मथुरा पुरं प्रविशत्ययम् ।।३।।

गोलोक को त्यागकर प्रभु आये हैं ऐसा प्रतीत होता है मानो अपनी जन्म-भूमि का उत्कर्ष देखने के लिये ही आये हैं । अथवा वाराहजी ने निमन्त्रण दिया है जो सपरिवार आये हैं ।

नागरिककृता मथुरा दशा-वर्णनम्-

आगतो बहुवारमत्र सु प्रार्थितो नृप जिष्णुना
बुन्देलखण्डनिवासिना ऽन्तिमबारमत्र सहिष्णुना ।
जन्म-भूमिरिति श्रुता जगतीतले मम विद्यते
मन्मन्दिरं तेनैव निर्मापितमहोऽद्य विराजते ।।४।।

यद्यपि यहाँ मेरे अनेक वार मन्दिर बने, जिनमें मेरी प्रतिष्ठा की गई, अन्तिम वार बुन्देलखण्ड के अधिपति वीरसिंह के द्वारा बनाये गये भव्य मन्दिर में भी उपस्थित हुआ वह स्थान मेरी जन्म-भूमि के नाम से प्रसिद्ध है ।

(यह मन्दिर १६ वीं शताब्दी में बनाया गया था)

मम जन्मभूमिरतिप्रिया संचूर्णिता यवनाधमैः
कृत्वा च मस्जिद-निर्मितिं लब्धं च किं कुणपाधमैः ।
चौकसंज्ञक मापणं शिव मन्दिरं जनता प्रियं
तत्रापि केवलमेव हृदयविदूषणं जनितं स्वयम् ।।५।।

मेरी जन्म-भूमि जिसे अधम यवनों ने ध्वस्त कर दिया और मस्जिद वनवा ली उससे उन्हें क्या प्राप्त हुआ ? चौक वाजार के मध्य स्थित शिव मन्दिर भी नष्ट कर मस्जिद के रूप में वनाया जो केवल भक्तों के हृदय को दूषित करने वाला वना है ।

श्रीवेंकटार्य महोदयेन गतश्रमे नारायणः
संस्थापितो रामानुजीय-मतप्रसार-परायणः ।
श्रीदीर्घविष्णु र्यत्र राजति व्रजनाभ सुपूजितः
गोवर्धनो मथुराधिपेन-युतो विराजति वामतः ।।६।।

रामानुजमत का प्रसार करने वाला एक गतश्रम नारायण का मन्दिर है जिसे श्री वेंकटाचार्य ने बनवाया था और वज्रनाभ पूजित दीर्घविष्णु का मन्दिर और गोवर्धन नाथ का मन्दिर है ।

सम्मुखे मनिराम वणिजा निर्मितः प्रासादकः
उत्तरे भरताख्य पूरधिभूपतेः संस्मारकः ।
चूर्णिता दिल्लीपुरी यवनाधिपं च सुपीडितम्
श्रीसूरजाख्य नृपेण प्रस्तरखण्डवाहनमीरितम् ।।७।।

श्रीद्वारिकाधीशजी के ठीक सामने सेठ मनीराम की हवेली है और उसके उत्तर में भरतपुरवाली हवेली है जो तत्कालीन राजवीर सूरजसिंह की कीर्ति का स्मारक है, उन्होंने दिल्ली को चूर्ण करके अनेकों यवनों को परास्त करके वहाँ के पत्थर लाकर इसे बनवाया था।

दृश्यते तन्नोतमद्य कपाटकं पुरतः स्थितम्
लोह-कीलयुतं गजद्वय-लम्बकं बहुशोभितम्।
मानसी गंगा तथा कुसुमाख्य कासारादिकम्
तन्नीत-प्रस्तर-भूषितानि लसन्ति दिक्षु ततोऽधिकम् ॥८॥

उनके लाए हुए कपाट आज भी बनवाई गई हवेली में लगे हैं इसमें दो हाथी एक साथ निकल सकते हैं। मानसीगंगा और कुसुम सरोवर में अनेक पत्थर आज भी लगे हैं।

एवं विधे मथुरापुरे श्रीद्वारकाधिपतेः स्थितं
सन्मन्दिरं जनवन्दितं बहुचर्चितं निखिलेप्सितम्।
उत्तुंग-शिखरैः शोभितं रक्त-ध्वजैरपि राजितम्
कांचनैः कलशैर्महोच्चैरद्भुतं सु विराजितम् ॥९॥

इस प्रकार मथुरा में श्रीद्वारिकाधीशजी का मन्दिर ऊँची-ऊँची शिखरों से युक्त हैं रक्त पीत-ध्वजा-पताकाओं से और सुवर्ण के कलशों से शोभित है।

द्वारैश्चतुर्भीराजतं भवनं यदीयं शोभते
राजाधिराज सुमन्दिरं यमुनातटे विभ्राजते।
सोपान-श्रेणीभिर्लसत् विस्तीर्ण काष्ठकपाटकै-
र्बहुवर्णसज्जितमन्तरैः प्रविभाति मन्दिरमङ्गकैः ॥१०॥

चार द्वार हैं, मन्दिर यमुना तट पर विराजमान है, अनेक सीढ़ियाँ हैं और काष्ठ के निर्मित बड़े-बड़े कपाट हैं। मन्दिर दर्शनीय है।

भ्राजमानमधस्तने विपणावली सुविराजिता
शोभाऽपरा ननु दर्शनीया हंसपंक्तिरिवातता।
अभ्यन्तरे पटले कपोतकक: प्रियामनुधावति
गुटुर गुं-गुं-ध्वनि-निनादैर्ध्यानमत्राकर्षति ॥११॥

मन्दिर के नीचे सैकड़ों दुकान हैं मानो हंस पंक्ति शोभायमान हैं। भीतर आँगन में कपोत गुटुरगुंभु ध्वनि करता, प्रिया को प्रसन्न करता लोगों का ध्यान आकृष्ट करता है।

मन्दिराभ्यन्तर-भाग-वर्णनम्-

तुलसिका-वृन्दैर्लसत् यत्-प्राङ्गणं बहु विस्तृतं
सप्त-सोपानैश्च षोडशस्तम्भकैरपि चावृतम्।
जगमोहनाभिधया च यत् प्रविभाति सिंहासन-मयं
निजमन्दिरं कस्तूरिका-गन्धैः सुवासितमम्मयम् ॥१२॥

आँगन में तुलसीजी का बिरवा है, जगमोहन में सात सीढ़ी हैं, १६ खम्भ लगे हैं, समस्त मन्दिर कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित है।

राजतमयैः सु कपाटकैरुट्टङ्कितैर्बहुमूर्तिभि--
र्मत्स्याश्व-कच्छप वामनादि दशावतार-विसारिभिः।
तोरणं च हिरण्मयं क्रमुकैः फलैः समलंकृतम्
द्वारं प्रधानं शोभते जय-विजय पार्षद-संयुतम् ॥१३॥

भगवान् के निज मन्दिर के कपाट चाँदी के हैं जिन पर मत्स्य-अश्व-कच्छप-वामनादि दशावतार टङ्कित हैं, सुवर्णमय तोरण हैं जिस पर अनेक सुन्दर बन्दनवार लगे हैं, जय-विजय पार्षद भी टङ्कित है।

उपरिभागे राजते व्यजन-गृहं लघुकायकम्
नहि दृश्यते यत्र स्थितस्य सुरज्जु-कर्षक-हस्तकम्।
कौशेय-निर्मित दोरके बद्धं विकर्षति दूरतः
श्रीद्वारकाधीशोपरि प्रचलति व्यजनमति-वेगतः ॥१४॥

छोटा सा ऊपर पंखागृह है जहाँ बैठकर सेवक पंखा की डोरी खींचता है पर वह दिखलाई नहीं देता। सज्जित रेशमी पंखा ग्रीष्मकाल में ढुराया जाता है।

हस्तत्रयं लम्बं, सुवसनैः स्वस्तिकादिभिरर्चितम्
दोलायमानं राजते यत् रजत-कोटिभिरङ्कितम्।
यन्निर्गतः पवनः प्रकर्षति गन्ध-लुब्ध सुमानसम्
अथवा विधूयमहौधतृणकं लघुकरोति विमानसम् ॥१५॥

वह तीन हाथ लम्बा है और उस पर गोटे से स्वस्तिक के चिन्ह हैं। जिससे निसृतपवन गन्ध-लुब्ध मन को आकर्षित करता है अथवा भारी पाप राशि को दूर करके मनको हलका बनाती है।

गर्भगृह-वर्णनम्-

गर्भ-गृहं च प्रचक्षते सुविराजते नर-वन्दितम्
यद् विद्यते दश हस्त-लम्बं चायतं षट्-सम्मितम् ।
तन्मध्यवर्तिनि पीठके राजाधिराज-पद-द्वयम्
रत्न-प्रभाभिरथोज्ज्वलं मणिनूपुरैश्च तथाऽद्वयम् ।।१६।।

गर्भ गृह बड़ा ही सुन्दर है। १० हाथ लम्बा और ६ हाथ चौड़ा है, बीचों बीच एक ऊंची पीठ है उस पर रत्न की प्रभा के चाक चक्य से सुन्दर राजाधिराज के चरण विराजमान हैं। उनके चरणों में मणि के अद्वितीय नूपुर हैं।

श्रीद्वारकाधीश विग्रह शोभा-वर्णनम्-

माणिक्य रत्नैःपूरितं कर-पादजं नख-मण्डलम्
हीरक-विभूषित-भूषणैर्विद्योतते पद-मण्डलम् ।
गोमेदकैर्गुल्फं लसति परिजंघमञ्चति विद्रुभैः
खचितैश्च विद्युद्दाम ग्रथितै रत्न-होरक-मञ्जुमैः ।।१७।।

मणिक्य रत्नों से हस्त कमल और चरण कमल के नख मण्डल शोभित हैं, अनेक अभूषण हीरा के हैं, टकनों पर गोमेद रत्न, विद्रुम युक्त जंघा, हीरक रत्न ग्रथित करधनी है।

जानुद्वयी नर-मोहनी शुभचिन्मयैरिव निर्मिता
यत्प्रभा-राजति शोभिनी दिव्या च देव-विनिर्मिता ।
कटिभूषणं कलिदूषणं ननु राजते परिवेष्टितम्
क्षुद्र-घण्टिक-मण्डलैः सद्-हीरकैरपि वेष्टितम् ।।१८।।

दोनों जंघा सुगठित हैं और मनो-मोहनी हैं मानों चिन्मयी हैं उनकी प्रभा वन्दनीय है, कटिका आभूषण कलि के पाप का भी दूषण है उसमें क्षुद्र घण्टिकाएं लगी हैं जो हीराओं से जटित हैं।

भुज-चतुष्टय-मण्डितं श्री द्वारकेश-शरीरकम्
शंख-चक्र-गदाब्जकैरपि मण्डितं ननु हीरकम् ।
कटिलसत्किंकिणि-रश्मिबद्ध सुघण्टिकाभिरहोचितं
गलहारमध्यसु कौस्तुभंबहु भूषणैश्च समन्वितम् ।।१६।।

श्री द्वारकाधीशजी का विग्रह शंख-चक्रादि आयुधों से विभूषित चारभुजा वाला है। कटिभाग में सुन्दर घंटिका लगी हैं, गले में हार में भी कौस्तुभ मणि जड़ी है ओर अन्य अनेक आभूषण वे पहने हुए हैं।

पदक-हार-सुशोभितं वक्ष-स्थलं बहु राजते
कौस्तुभ मणेरनुपमप्रभा दूराद्धि नित्यं भ्राजते
हारैश्च पंचावलि-नवावलिभिश्चभूषणकान्तिकं
धारयन् सुविभासते श्रीद्वारकेश शुभाङ्गकम् ।।२०।।

अनेक-हारों से कण्ठ और वक्ष शोभित है, कौस्तुभ की प्रभा दूर से ही दमक रही है, पांच लड़वाले नौलड़ वाले हारों की कान्ति से द्वारकाधीश जी दर्शकों का मन हर लेते हैं।

माणिक्य-मौक्तिक-हीरकैर्जटितं च हारं कांचनं
श्रीवत्स सविधे शोभते शुभतुलसिकागुटिकांजनम् ।
इन्द्रधनुरिब रत्न-त्विट्भि-र्द्योतते यद्विग्रहः
ध्रुवं प्रावृट् जलधरः कुरुते गभस्ति-विनिग्रहः ।।२१।।

सोने के तार में गुथे हुए हीरा-पन्ना-पुखराज-माणिक के नग जटित अलंकारों की शोभा दर्शनीय हैं, श्री वत्स के समीप तुलसी का दाना है। रत्न तो इन्द्र धनुष हैं और राजाधिराज मानों वर्षाकालीन मेघ हैं।

काञ्चनी-त्विट् द्योतते वर चञ्चलेव बलाहके
पुष्परागप्रभा तथैव विराजते घनतमसिके ।
मूर्तिमानिव मेघराजो द्वारकाधीशो हि नः
नेत्र गोचरगः सदाऽऽकर्षत्यहो जनता-मनः ।।२२।।

बादल में विजली की भाति सुवर्ण की शोभा उनके विग्रह पर राजित है, और उसी प्रकार सघन अँधेरे में पुष्परागमणि की प्रभाशोभित है मानो मेघराज मूर्तिमान् उपस्थित होकर जनता के मनको आकर्षित कर रहे हैं।

अथवा प्रभोर्निज-मन्दिरं नागाख्य-लोको ज्ञायताम्
दीपप्रभा-मणिरत्न-द्युतिभिर्मिश्रितं हृदि धार्यताम् ।
श्यामलं त्वहिराजकं तनुरद्भुतं च विचार्यताम्
पाताल-वर्णित वैभवेन समं च नूनं मान्यताम् ॥२३॥

अथवा यह प्रभु का मन्दिर नागलोक है, दीपकों की ज्योति-मणि-रत्नों से मिली हुई हृदय को प्रभावित करती है । नागराज ही मानों पाताल वर्णित वैभव के साथ यहाँ विद्यमान है ।

नयने विभाति च भास्करो मुकुटेऽत्रि-पुत्र सम-द्युतिः
कर पंकजे धरणीसुतो-बुधोभातिवक्षसि सद्-द्युतिः ।
भाले गुरुश्च हनौ भृगुः शनि-रस्ति पाद-उपस्थिता
राहुर्गले चिकुरे शिखिर्नूनं ग्रहा वपुषि स्थिताः ॥२४॥

राजाधिराज के रत्नों में ही समस्त ग्रह हैं—नयनों में भास्कर (वैदूर्य) है । मुकुट में चन्द्रमा, (मोती), हाथों में भौम (मूंगामाला) वक्ष पर बुध्र (पन्ना का हार) मस्तक पर गुरु, (पुखराज नग) ठोढी पर शुक्र, (हीरा) पैर में शनि, (नीलममणि) गले में राहु (गोमेद) बालों में केतु (लहसुनिया) हैं ।

श्रावणे घटया सदैव विभाति चन्दिर-मन्दिरम्
हरिता-कदापि कदापि-पीता सद्घटा च तदन्तरम् ।
श्यामा घटा च विराजते शुभमण्डपे तारायुता
चन्द्रिका पटले तथा घन-नादकैरपि संयुता ॥२५॥

श्रावण में घटा के दर्शन होते हैं उनसे मन्दिर की शोभा और बढ जाती है, कभी हरी कभी पीली कभी श्याम घटा होती है उसमें तारा, चन्द्र के साथ मेघ का गर्जन भी किया जाता है ।

श्रावणे दोलोत्सवे सायन्तने त्विह मन्दिरे
कांचनान्दोलं क्वचित् फल-पुष्प सज्जितके वरे ।
संराजते लघु-रूपधृक् राजाधिराजोऽपि स्वयम्
व्रज-प्रेम लीला-तन्मयः प्रविहाय मर्यादा-भयम् ॥२६॥

सायंकाल श्रावण में झूले (सोने चाँदी के) पड़ते है कभी पत्र-पुष्प-फल के भी झूले बनाये जाते हैं। भगवान् का छोटा विग्रह उसमें झुलाया जाता है। व्रज के प्रेम से भगवान् ने द्वारकावासी होने पर भी मर्यादा का त्याग कर दिया है तभी तो बालक रूप में वे झूलते हैं।

प्राङ्गणे जल-पूरित-स्ताडागको निर्माप्यते
प्रतिवर्षमस्मिन् मंगलं विविधं च यत्र समाप्यते।
नौका च लघ्वी निर्मिता बहु पत्र-पुष्प विराजिता
क्वचिदर्चिता राजाधिराज सुदर्शनेन समर्जिता ।।२७।।

कभी आंगन में जल भरकर नौका में उनका दर्शन कराया जाता है, नौका पत्र-पुष्प से अलंकृत की जाती है।

होलिकावसरे सुरंगैर्यन्त्रधार-विनिर्गतैः
क्रीडयत्यखिलार्चितो राजाधिराजः स्वागतैः
गुल्लालकै-रम्बीरकैः परिपूरितं तन्मन्दिरम्
शोभते मदनोत्सवो मन्ये क्षणं त्वतिसुन्दरम् ।।२८।।

होली के अवसर पर सुन्दर रंग पिचकारी में भरकर राजाधिराज भक्तों पर डालते हैं, गुलाल अबीर से मन्दिर रंग जाता है मानो मदनोत्सव मनाया जा रहा है।

मण्डपगत चित्रावली-वर्णनम्–

स्तम्भ-श्चतुर्दिक्षु प्रभोश्चरितैश्च वै समलंकृता
विद्युत्प्रभाभिरहो सदैव लसन्ति चन्द्र-समन्तताः
उपरिभागे चित्रमय-लीलावली च्च विराजते
यद्दर्शनेन प्रतीयते सर्वो वजोऽत्र विराजते ।।२९।।

चारों तरफ सुन्दर खम्भे हैं। सुन्दर दीप बिजली की प्रभा से जगमगाते हैं और ऊपर के भाग में समस्त व्रजलीला चित्रित होने से यह पता लगता है मानो समस्त व्रज ही यहाँ उपस्थित हो गया है।

श्रीबालकृष्ण प्रभुस्तथा नवनीत-प्रियजी विश्रुता
मथुरेश-गोकुलचन्द्रजी-कल्याणरायाः शोभिताः ।
मदन-मोहन-गोकुलेश-द्वारकानाथाः सदा
श्रीविट्ठलेश-समर्चिता निधयोऽत्र सप्तमुदा हृदा ।।३०।।

चित्रों में श्री विट्ठलनाथजी महाराज द्वारा पूजित श्री बालकृष्ण प्रभु नवनीत प्रिय, मथुरेशजी, गोकुलचन्द्रमाजी, कल्याणरायजी, मदन मोहनजी, गोकुलनाथजी हैं ।

श्री वल्लभो-विट्ठलयुतो बालादि-कृष्णो-गिरिधरः
व्रजभूषणो गोकुलपतिः श्रीगिरिधरो मन्दिर-धरः
श्री बालकृष्णो बुधवरः सूनुत्रयेण-समन्वितः
राजते चित्रेऽपि चित्रं पुत्र-पौत्र समन्वितः ।।३१।।

श्रीवल्लभाचार्य, विट्ठलनाथजी, गिरिधरलाल, व्रजभूषणलालजी, गोकुलनाथ जी, और जिन्हें मन्दिर मिला है वे श्री गिरिधरलालजी और उनके पुत्र श्री बालकृष्ण लाल जी तथा उनके तीन पुत्र भी चित्रित हैं, जो चित्र की भी शोभा बढ़ा रहे हैं ।

श्री हलधरं च विराजमानं वीक्ष्य मण्डप-संस्थितम्
यद्दर्शनेन जहाति पापावलिरहो तनुमद्भुतम्
कस्य नो भवति स्वतो हृदयं विनम्र-पदंगतम्
भङ्ग-प्रियंच विलोक्य चित्रे भोग-राग समन्वितम् ।।३२।।

एक चित्र में—भंग से प्रिय रुचि वाले श्री हलधर की छवि पापों को दूर करने वाली है, ऐसा कौन है जो उनके चरणों में नहीं झुक जाता है ।

शेषशायि-प्रभो-रहो शुचिदर्शनं भव-तर्जनम्
प्रलय-क्षणे ननु शिष्यते शेषो हि सत्यं गर्जनम् ।
ऋषभदेव सुचित्रकं सदयं सदा सदलंकरम्
व्यास देवकथासु यच् शुभ वर्णनं त्वभयंकरम् ।।३३।।

चित्र में—शेषशायी, का भव्य दर्शन है । प्रलयकाल में 'शेष' रहते हैं अतः इनका नाम यथार्थ है ऋषभदेव, के दर्शनहैं जिनका व्यासदेव ने गान किया है ।

परशुरामद्विजोऽवतारस्तीक्ष्ण-पर्शुसमन्वितः
क्षत्र-वंश-विनाशकोऽपि सुशोभतेऽत्र दयान्वितः ।
उत्तानपादनृपात्मजो भक्तो ध्रुवोऽत्र विराजते
यः शिक्षयति मथुरा महत्वं हरिश्चात्र विराजते ॥३४॥

श्री परशुराम, पर्शु युक्त हैं, यद्यपि क्षत्र कुल सहारक हैं, किन्तु यहां तो दयामयी मूर्ति ही है । उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव भक्त हैं, वे मथुरापुरी और भगवान् हरि के महत्व को बतला रहे हैं ।

गोवर्धनः शुचिवेषयुक्तश्चित्रितश्च विराजते
श्रीवल्लभाचार्योऽपि यन्निकटे भृशं विभ्राजते ।
गोपिनाथो वामभागे राजतेऽत्रमहामतिः
बद्धाञ्जलिः प्रविभाति भूयः पूजने कृत-सन्मतिः ॥३५॥

एक चित्र में—सुन्दरवेषधारी गोवर्धन नाथ हैं जिनके समीपही श्री वल्लभाचार्य हैं, वाम भाग में श्री गोपीनाथ जी हैं ।

श्रीविट्ठलेशसुताश्च सप्त-विभाकराइव संस्थिताः
निज-खेल-भूमिविलोकनार्थमहोऽत्रनूनं चित्रिताः ।
सप्त-गृहाभिध-वीथिका मथुरा नगर-शोभामयी
"विश्रामघाट" समीपदेशे विद्यते महिमामयी ॥३६॥

श्री विट्ठलनाथजी के सूर्य के समान सात पुत्र हैं । मानों समीप ही (सतघरा) वीथी को जो बाल खेल भूमि है देखने पधारे हैं ।

ब्रह्मपुत्रो नारदो मथुरा निवासे कृतमतिः
वर्णितो व्यासेन बहुधा लोक सिद्धः सन्मतिः ।
नारदोऽत्रपोऽचरत् स्थानंप्रमार्ण वर्तते
सद्वैष्णवैरपि यस्य नित्यंवन्दनं च प्रवर्तते ॥३७॥

एक चित्र में – मथुरा निवास की भावना से आये श्री नारद मुनि हैं, यहाँ मथुरापुरी में श्री नारदजी ने तपस्या की थी, ये वैष्णवों के वन्दनीय हैं (चित्रित हैं)

भू-दोहनं प्रथु नृपतिना पूर्वं कृतं बहु स्मर्यते
पापांश-वेणु-तनोः सकाशात् निर्गतः स चश्रूयते ।
मत्स्य-कच्छप-राम-कृष्ण-हयाननाश्च लसन्तिवै
सर्वेऽवतारा मण्डपेऽस्मिन् चित्रिता विचरन्ति वै ॥३८॥

राजा पृथु ने भूमीका दोहन किया था और पापी वेन के शरीर से निकले थे मानों उसकी स्मृति दिलाने यहाँ चित्रित किये गये हैं, मत्स्य-कच्छप रामकृष्ण-हयग्रीव आदि अवतारों को भी यहाँ चित्रित किया गया है।

चित्रस्थ बाललोला-वर्णनम्–

देवकी-वसुदेव-गेहे कृष्ण-चन्द्र-सुदर्शनम्
सम्मोहयति जनता मनांसि यत्कथा लव स्पर्शनम्।
मस्तके विनिधाय कृष्णं गोकुले गमनं तथा
योगमायामानयत् इति चित्रितं लसितं तथा ॥३९॥

देवकी वसुदेव के घर श्री कृष्ण का दर्शन है जो वड़ा ही आकर्षक है, साथ के चित्रों में वासुदेव का श्री कृष्ण को सिर पर रखकर गोकुल गमन, योगमाया का चित्र दर्शनीय है।

ताडिता कंसेन या दिव्य-स्रगाभरणैर्युता
अम्बरे च गता पुनर्गन्धर्व-यक्ष-सुरार्चिता।
विन्ध्यपर्वत-वासिनी भुवि विश्रुताऽद्य विराजते
यत् कान्तिरत्र सु पूजमाना चित्रिताऽपि विराजते ॥४०॥

कंस के द्वारा फेंके जाने पर योगमाया आकाश में उड़ गई और वहां उनकी गन्धर्व यक्ष और देवों ने पूजा की थी, वह विन्ध्याचल पर जाकर बैठी थी वही शोभा यहां, चित्रित की गई है।

नन्द गोप सुभवन-शोभा दर्शिता सुखदायिनी
गोपबालगणैर्युता ननु वर्धिता वरदायिनी।
वस्त्रभूषण-संयुता गावश्च दृश्यन्ते शुभाः
वत्सकैश्च युताः प्रिया यासामुदेति सदा विभाः ॥४१॥

भगवान के जन्म समय के दधिकांदे का दृश्य चित्रित है जिसमें अनेक गोप ग्वाल गाय-वत्स चित्रित हैं।

चित्रकेऽस्ति च पूतना भयदायिनी तनुधारिणी
नग्न-वक्षसि मरणकाले नन्द-नन्दन-धारिणो।
तृणावर्तः शकटदैत्यः पातितोऽग्रे जिष्णुना
वक-प्रलम्ब-व्योम-वत्सा मारिता प्रभु विष्णुना ॥४२॥

पूतना भयंकर वेष युक्त है उसके नग्न वक्ष पर कृष्ण हैं, तृणावर्त वध-शकट वध, वक,-प्रलम्बवध-वत्सासुर वध के दर्शन हैं ।

चोरितं दधि गोपिका-गेहे यथा परमात्मना
संयतश्च यशोदया लघु डोरकेन नतात्मना ।
मृत्तिका च मुखे ऽर्पिता व्रजवैभवाय दयालुना
यमलार्जुनौ मुनि शाप-ग्रस्तौ मौचितौ च कृपालुना ।।४३।।

दधि चोरी लीला का दर्शन और यशोदा द्वारा कृष्ण के बाँधने का दर्शन, मृत्तिका भक्षण लीला, यमलार्जुन उद्धार लीला के चित्रमय दर्शन है ।

दैत्योऽघनामा पातितः खर रूप– धेनुककोऽसुरः
कालियोपरि चित्रितोऽपि हरिर्नृणां बहु सुखकरः ।
कुप्रलम्ब-दावानल-कदम्ब-हिंदोल-लीलाविश्रुता
चीरहरणमथाऽन्नभोजन-मन्नकूटाद्याः कृता ।।४४।।

अघासुर वध, धेनुकासुर वध, कालियमर्दन, प्रलम्ब वध, दावानल, कदम्बटेर, हिन्डोला लीला, चीरहरण, लीला, अन्नकूट लीला भी दर्शनीय हैं ।

गिरिराज-धारणमत्र राजति दानलीला मोहिनी
मानलीला-सांझिकाऽन्तर्धान-वेणुविमोहिनी ।
केशि-दैत्य-निपातनं राधामिलन-महारासकम्
विहरणं यमुनाजले संराजते संकेतकम् ।।४५।।

चित्रमय गिरिराज धारण, दानलीला, मानलीला, सांझीलीला, अन्तर्धान लीला, वेणु वादन लीला, केशि वध-राधिका-मिलन और महारास, यमुना विहार, संकेत लीला भी दर्शनीय है ।

होलिका लीलासुरंगैः पूरिताऽत्रप्रदर्शिता
कृष्ण-राधा हास्यशोभा मण्डपे सम्यक् चिता ।
त्यक्त्वा स्वकं प्रियधामकं मथुरागमन लीलात्मिका
दृश्यते गजवधकरी चाणूर-कंस-वधाधिका ।।४६।।

होलिका लीला भी अनेक रंगों से युक्त है, कृष्ण-राधा की हास्यलीला शोभा से युक्त है, वृन्दावन से मथुरा गमन लीला, चाणूर-मुष्टिक वध लीला और कंस वध लीला भी सुन्दर चित्रित हैं ।

पारिखो, मनिराम लक्ष्मीचन्द्र-पुत्रसमन्वितः
रघुनाथदास-पितृव्यराधा-कृष्णगोविन्दसंयुतः ।
दास लक्ष्मण-द्वारका-दामोदरादिभिरन्विताः
गोपाल-मथुरादास-भगवानादयोऽपि पुरः स्थिताः ॥४७॥

मन्दिर के सस्थापक श्री गोकुलदास पारिख श्री मनीराम सेठ, श्री लक्ष्मी चन्द्र सेठ, श्री रघुनाथ दास-उनके चाचा (श्री राधा कृष्ण सेठ श्री गोविन्द दास सेठ) लक्ष्मण दास सेठ, द्वारकादास सेठ, दामोदरदास सेठ, गोपाल दास सेठ, और भगवानदास सेठ (वर्तमान) चित्रित हैं।

वत्सरे सकले तथा प्रतिदर्शने परिधानकम्
नव्यं सु धत्ते द्वारकाधीशः सदा बहुनामकम् ।
विविधभव्य-महोत्सवै-रखिलेष्टदो राधावरः
संपूरयति सुर-वन्दितः कामानहो मंगल करः ॥४८॥

सम्पूर्ण वर्ष प्रति दर्शन में राजाधिराज नवीन पोषाक धारण करते हैं, जिनके अनेक नाम हैं, अनेक महोत्सव होते हैं, जिनसे वे देव पूजित द्वारकाधीशजी सबके मनोरथों को पूर्ण करते हैं।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये मन्दिर शोभा वर्णनं नाम षोडशः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्री चतुर्वेद के पुत्र श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में षोडष सर्ग पूर्ण हुआ।



अथ सप्तदशः सर्गः

नागरिक भावना-वर्णनम्–

कोलाहलो ऽभवन्मथुरापुर्यामागतो देवकी दुःख-हरः ।
कथयन्ति जना यं विश्वपतिं ब्रह्मादि-देव-कुल पूज्यवरः ॥१॥

जिन्हें विश्वपति कहते हैं, ब्रह्मादिदेव जिनकी उपासना करते हैं, ऐसे महा विष्णु देवकी पुत्र श्रीकृष्ण द्वारकानाथ आ गये, यह सब कोलाहल मथुरा में फैल गया। (राधेश्याम रामायण तर्ज)

पारिखोऽद्य भागीरथोऽभवद्यः समागतो मथुरा-पुर्याम् ।
या कृष्णभूमिरिति विख्याता काश्यादि सप्त नगरी धुर्याम् ॥२॥

पारिख जी भागीरथ हैं, वे मथुरा आये हैं, वह मथुरा जो सात पुरियों में है। और कृष्ण की जन्मभूमि है।

धन्योऽयं नागर-वैश्य मणिर्धन्यौ मातापितरौ चापि ।
यः कुरुते जनसेवामथवा जगदीश-भक्तिमचलां वापि ॥३॥

धन्य है, यह नगर वैश्य भूषण पारिख और धन्य इसके माता-पिता, जो यह प्रभु सेवा में लीन है।

जननं मरणं बारम्बारं भवतीह गदन्ति पुराणकथाः ।
सफलं जननं भुवि तस्यैव दूरी कुरुते यः परव्यथा ॥ ४ ॥

जन्म और मरण बार-बार होता है, पर जो दूसरे की व्यथा दूर करे, उसी का जन्म सफल कहा गया है।

संसारे निःसारे भ्रातः पशवोऽपि वसन्ति कुलैः सहिताः ।
खादन्ति स्वपन्ति च चुम्बन्ति क्रीडन्ति निजे भवने मुदिताः ॥५॥

असार संसार में पशु भी रहते हैं, और खाते-पीते भोग भोगते हैं, पर मनुष्य उनसे उच्च है।

मन्दिर समीप स्थिति वर्णनम्-

यमुना यम-भगिनी विख्याता प्रवहति पूर्वस्यां सुधावरा।
तत्पृष्ठे माथुर सद्विप्राः निवसन्ति धर्म-कर्मादिकराः ॥६॥

यम की बहिन यमुना यहाँ नगर की पूर्व दिशा प्रवाहित है, और यमुना के पश्चिम भाग में माथुर ब्राह्मण रहते हैं।

दक्षिणे च पाठक सद्वीथी संजाता भाग्यवती नगरे।
उत्तरे "बजरिये"ति प्रथिता ननु भाति पदे ऽलक्तकवत्-रे ॥७॥

मन्दिर के दक्षिण में पाठकगली है, उत्तर में बजरिया है, पैर में भूषण की सी उसकी शोभा हैं।

पश्चिमेहि 'मानिक चौकाख्ये' वाराहो राजति भूमिधरः।
दैत्यं हिरण्यनयनं हत्वा सुर-सृष्टि-विधायक-तापहरः ॥८॥

पश्चिम में मानिक चौक नामक स्थान है, जहाँ भूमि उद्धारक श्री वाराह-देव विराजमान हैं, इन्हींने हिरण्याक्ष को मारा था।

वाराहदेव चरित्र-वर्णनम्—

अत्रापि देववाराहस्य विद्यते कथैका मनोहरा।
कुत्रासीदयं महादेवः क्व गतः पुनरत्रागतो नराः ॥९॥

यहाँ के वाराहदेव की कथा बड़ी बिचित्र है, ये कहाँ थे, और कहाँ होकर यहाँ आये हैं, उसका संक्षेप में वर्णन यहाँ किया जाता है-

स्वर्ग-पूजनम्—

इन्द्रः पुपूज प्रथमं स्वर्गे वाराह-भगवतो विग्रहकम्।
मथुरातो नीतवान् बलभिद् धरणीधरमर्च्यं मंगलकम् ॥१०॥

सर्वप्रथम इन्द्रदेव ने इनकी पूजा स्वर्ग में की थी, वह इन्हें मथुरा से ले गया था।

सत्याख्ये युगे प्रथम-कल्पे प्रकटीभूतो यः सुरेश्वरः।
अष्टाविंशे त्रेतासमये तत्याज दिवं सौभाग्य करः ॥११॥

प्रथम कल्प के सत्ययुग में जो वाराह विग्रह प्रकट हुए थे २८ वें त्रेता युग में उन्होंने स्वर्ग त्याग दिया था।

दिग्विजयी रावण शूरस्य तनयः सु मेघनाद नामा।
इन्द्रं विजित्य लेभे कीर्तिं योऽभूद् गुणोत्तम सद्धामा ॥१२॥

रावथ का पुत्र मेघनाथ था, उसने इन्द्र को जीतकर कीर्ति प्राप्त की थी।

एकदा वली स्वर्गे विचरन् दृष्ट्वा वाराहं मनोहरम्।
हृदये विचारयामास द्रुतं लंकां नेतुं शशिकान्त धरम् ॥१३॥

एक दिन वह जब स्वर्ग में घूम रहा था, वाराह भगवान् को देखकर लंका लाने का विचार करने लगा।

वाराहो नोच्चचाल किञ्चिद् भीतो जातः पुनरेव स्वयम्।
हा धिङ्.मामिन्द्रजितं वीरं धिङ्.मे स्वप्नं कल्पना-मयम् ॥१४॥

जब वाराह जी स्थान से न उठे तो वह अपनी और अपने बल की निन्दा करने लगा।

लंकां गत्वा प्रोवाच व्रती पितरं विराजमानं शान्तम्।
सर्वं स्वर्गस्थं वृत्तमहो वाराहदेव वपुषः कान्तम् ॥१५॥

लंका लौटकर सारी बात उसने अपने पिता रावण से कही और वाराह के विग्रह की शोभा भी सुनाई।

श्रुत्वा लंकेशो निजमनसि चिन्तयामास मंगल-नाशम्।
भो मेघनाद ! चल, सुरलोकं कृतवान् मम त्वं गलपाशम् ॥१६॥

रावण ने सुनकर इसे अमंगलकारी माना और मेघनाद से कहा कि चल दिखा वह विग्रह कहाँ है।

रावण द्वारा लंकायां वाराहानयन-वर्णनम्—

नहि साधारण घटनाचेयं नहि वाराहोऽपि सरलवपुः।
नहि सुररहिते स्वर्गे लोके संस्पृष्टुं योग्यो विष्णु वपुः ॥१७॥

यह साधारण घटना नहीं है और न वाराह ही सीधे हैं, सुररहित स्वर्ग में स्पर्श करने योग्य भी नहीं हैं (तूने तो उन्हें जाकर हिलाया भी है)।

रावणस्ततो दिवि संप्राप्तः प्रोवाच यज्ञपुरुषं विजयी ।
हे भगवन् ! कुरु क्षमां पुत्रे पातितस्त-वाङ्घ्रि-युगेऽविनयी ॥१८॥

श्री वाराह जी भगवान् से रावण ने क्षमा मांगी और पुत्र के अपराध के लिये भी उसे चरणों में गिरा दिया । तथा प्रार्थना भी की --

त्वं यज्ञः क्रतुस्तथाचार्यो यजमानस्त्वं वै जनोत्तमः ।
त्वं रसरूपी भावनापरस्त्वं हविः स्वयंवैसुरोत्तमः ॥१९॥

आपयज्ञ हो, क्रतु हो, आचार्य हो, यजमान हो रसरूप हो, हवि हो ।

शिवरूपस्त्वं कविरूपस्त्वं हरिरूपस्त्वं हे दयानिधे !
चन्द्रार्क-बन्हिरूपाधारस्तारागण-रूपी कलानिधे ! ॥२०॥

आप शिव रूप हो, कविरूप हो, हरिरूप हो आप ही वन्हि-चन्द्र-अर्क-तारा में व्याप्त हो । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

श्रुत्वा स्तोत्रंप्रोवाच हरिः किं तेऽभीष्टं लंकेश ! कथय ?
तुष्टो जातस्ते विनयेन मा मुधा शरीरं भो व्यथय ॥२१॥

श्री वाराह जी रावण के स्तोत्र से प्रसन्न हुए और आकाशवाणी हुई कि मैं प्रसन्न हूँ वरदान मांग लो ।

लंका-नगरी भूपोऽवोचत् वाञ्छामिदर्शनं ते नित्यम् ।
स्नपयामि गृहे निज-हस्तैश्च पालय गमनेन निजं भृत्यम् ॥२२॥

रावण ने कहा—आप मेरे साथ लंका पधारें वहाँ आपकी प्रतिदिन सेवा करूँगा ।

एवं रावण-विनयेन हरिर्यातो लंका नगरीं तुष्टः ।
मत् पूजन त्यागे ते नाशो भवितेति वदन्न च संतुष्टः ॥२३॥

इस प्रकार रावण के अनुनय से प्रसन्न होकर वाराहजी स्वर्ग से लंकापुरी आये और यह भी कहा कि जब मेरी पूजा त्याग देगा तेरा नाश होगा ।

दोहा—शापगर्भवाचं दशग्रीवस्ततो निशम्य ।
प्रासीदत् विष्णौ भृशंगुरुतम-रुषं विसृज्य ॥२४॥

रावण ने यह सुना और क्रोध छोड़कर विष्णु रूप वाराह को लंकापुरी में ले गया ।

आनर्च नगरमध्ये देवं साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणनाम ।
यावत्तन्निकटे न चागतस्तं हन्तुं सलक्ष्मणोरामः ॥२५॥

नगर में लाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और तब तक पूजा की थी, जब तक राम लक्ष्मण लका में नहीं आये। युद्ध के समय पूजा छूट गई।

राम द्वारा अयोध्यायां वाराह पूजनम्—

हत्वा सकुलं तं लंकेशं रामो ददर्श देवं त्वरितम् ;
आनीतवान् सीतयासमं सुग्रीब-ऋक्ष-कपिभिः सहितम् ॥२६॥

रावण वध के उपरान्त श्री राम ने जब श्री वाराह का दर्शन किया, तब उन्हें सुग्रीवादि के साथ सत्कार सहित, सीता के साथ ही अयोध्या ले आये।

वाराहदेव कृपया सोतां स्प्रष्टुं शक्तो नो लंकेशः ।
राक्षस्यो वाऽपि भयं दातुं योग्या नासन्न कलंकेशः ॥२७॥

वाराहदेव की कृपा से लंकेश सीता को स्पर्श नहीं कर पाया और राक्षसी उन्हें भयभीत न कर सकी थीं।

जाताऽयोध्या नगरी हृष्टा दृष्ट्वा वाराहं समागतम् ।
रामेणसमं सम कर्मकरं निखिलागम-वृत्त विचारगतम् ॥२८॥

श्री वाराहदेव को आया देखकर अयोध्यावासी सभी प्रसन्न हो गये थे।

माथुराणामयोध्यागमनम्–

एकदा माथुरा सद्विप्रा-लवणासुर-संपीडिता भृशम् ।
चिन्तयामासुरखिले भुवने त्रातुं शक्तः को दिवानिशम् ॥२९॥

एक दिन माथुर विप्र लवणासुर के आचरण से दुःखित होकर विचारने लगे कि भूतल पर हमारी रक्षा करने में आजकल कौन समर्थ है।

प्राहैकोमाथुर भूसुरकः श्रीरामस्त्राता लोकस्य ।
रावणं सान्वयं हत्वा यो भूपो जातो निज-देशस्य ॥३०॥

एक माथुर ने कहा कि भगवान् श्री राम रक्षा करने में समर्थ हैं, रावण का वध करके वे अयोध्या के राजा बने हैं।

तत्सविधे गत्वा वृद्धार्यैर्निज कष्टं नूनं कथनीयम् ।
सर्वथा करिष्यति विप्राणां रक्षां नैवात्र चिन्तनीयम् ॥३१॥

उनके पास जाकर हमारे वयोवृद्ध सज्जनों को अपना कष्ट बतलाना चाहिये, वे अवश्य रक्षा करेंगे।

गत्वा माथुर विप्रा ऊचु-र्हे राम कृपा-सिन्धो ! त्रातः।
लवणो नो हन्ति कुलं सर्वं त्वं रक्ष सर्वथाऽभयदातः ॥३२॥

तब माथुर ब्राह्मण अयोध्या गये और राम से कहा कि लवण दैत्य से हमारे कुल की रक्षा कीजिये।

श्रुत्वा वचनं दशरथ सूनुः सम्प्राह रामभद्रस्त्वरितम्।
शत्रुघ्न ! गच्छ मथुरायां त्व मारय लवणं सकुलं पतितम् ॥३३॥

श्री दशरथ नन्दन राम ने उसी समय सब वृत्त सुनकर शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि तुम जाकर दैत्य लवण का कुल सहित विनाश कर दो।

श्रीशत्रुघ्नो भ्रातुर्वचनं श्रुत्वा सज्जितोऽभवच्चलितुम्।
प्रोवाच भ्रातरं रामाख्यं स्वाशिषं देहि विजयं कलितुम् ॥३४॥

श्री शत्रुघ्न उसी समय तैयार हो गये और श्री राम से आर्शीर्वचन देने की प्रार्थना की।

दोर्भ्यामालिङ्ग्य राम आह हे भ्रातस्तत्र भुंङ्क्ष्व राज्यम्।
मथुरानगरी मुनि सम्मोहा विद्यते पुरीषु यद्राज्यम् ॥३५॥

श्री राम ने आलिंगन कर कहा—भाई शत्रुघ्न ! मथुरा श्रेष्ठ नगरी है वहीं तुम राज्य भी करना मैं तुम्हें वहाँ का राजा भी बनाता हूं।

शत्रुघ्नः प्राह दयासिन्धो ! विस्मर्तव्यो नो निजदासोऽयम्।
"वाराहो" दीयतां मह्यं लंकातः समागतो योऽयम् ॥३६॥

श्री शत्रुघ्न ने कहा कि आप मुझे चरणों से दूर कर रहे हो, मुझे भूलमत जाना। उन्होंने लंका से आये श्री वाराह देव जी के विग्रह को भी मांग लिया।

शत्रुघ्नेन सह वाराहस्यमथुरागमन-वर्णनम्—

दोहा—शत्रुघ्नस्यवचोऽमृतं पीत्वा सुषमा धाम।
ददौ चापि तद् विग्रहं मुक्त्वा वा तन्नाभ ॥३७॥

शत्रुघ्न के वचन सुनकर, शोभा के धाम राम ने वाराह जी का विग्रह उन्हें प्रदान कर दिया।

शत्रुघ्नः समागमत् सेना-सहितो मथुरा नगरे हृष्टः ।
दृष्ट्वा यमुना जलधारवृतं मण्डलं बभूव परं तुष्टः ।।३८।।

सेना सहित शत्रुघ्न मथुरा आये और श्री यमुना जी के घाट की शोभा देखकर बड़े संतुष्ट हुए।

माथुराः परं दयिता यूयं कृपयाऽकृष्टो मे मनो-गजः ।
यमुना-पवित्र पुलिने नूनं ःश्चरं तपोऽतप्यदप्यजः ।।३९।।

उन्होंने माथुरों से कहा कि आप लोग धन्य हैं। मेरा मन रूपी गज उस स्थान के लिये आकृष्ट किया जहाँ अज (ब्रह्मा) ने भी कठोर तप किया है।

विद्यते कुत्र सुर संहर्ता मधुपुत्रो लवणाख्यः क्रूरः ।
तत्सेना कुत्र वसति विद्वन् ! पप्रच्छ माथुरं स शूरः ।।४०।।

शत्रुघ्न जी ने पूछा कि वह मधु का पुत्र लवणासुर दैत्य कहाँ है और उसकी सेना कहाँ रहती है।

लवणं सेना सहितं हत्वा कृत्वा माथुर कुलजन्मानम् ।
निर्भयं तथा मथुरानगरं निर्भारं करोमि चात्मानम् ।।४१।।

मैं सेना सहित लवण को मार कर माथूर ब्राह्मणों को निर्भय बना कर अपनी आत्मा को धन्य बनाऊँगा।

माथुरविप्रः प्रोवाच सुधीः श्रीराम-भ्रातरं दैत्यारिम् ।
मधुवने वसति हन्ताऽस्माकं जहि लवणं दुष्टं विप्रारिम् ।।४२।।

माथुर विप्रों ने राम भ्राता शत्रुघ्न से कहा—कि वह दुष्ट लवणासुर मधुवन में रहता है।

स च वर-युक्तो गर्वी पापी भोजनसमये केवलं त्वया ।
शक्यते हन्तुमपि निःशंकं त्विति पूर्वेभ्यो वै श्रुतंमया ।।४३।।

उसे वरदान मिला है कि वह केवल भोजन के समय ही मारा जा सकता है अतः आप उस समय ही उसे मार देवें।

भोजन समये शूलं त्यक्त्वा तिष्ठति दैत्यो लवणो धीमन् ।
मारय पापं, हरसन्तापं, कुरु कल्याणं जगतो भूमन् ।।४४।।

भोजन के समय वह अपने त्रिशूल नामक आयुध को रख देता है उस समय उसे मार कर सन्ताप हरें, कल्याण करें जगत् को सुखी करें।

यः कल्याणं कुरुते नित्यं जनतायाः स्वार्थं परित्यजन् ।
स च वन्द्यः पूज्यो लोकस्य भवतीति कुदम्भं विसर्जयन् ॥४५॥

जो जनता की सेवा निःस्वार्थ भाव से करता है वन्द्य पूज्य माना जाता है।

रामो हतवान् दशग्रीवं स कुटुम्बं लंकापतिं मुदा ।
यः कालजयी विदितो भुवनेऽप्यासीद्रिपुर्भगवतः सदा ॥४६॥

श्री राम ने रावण का वध किया जो काल विजयी था और प्रभु का शत्रु भी था।

अधिगतं यशस्त्वमलं तेन राक्षसा सृष्टिरखिला नष्टा ।
स्थापिता च मर्यादा भुवने या कृता रक्षसा च भ्रष्टा ॥४७॥

उन श्री राम ने निर्मल यश प्राप्त किया और राक्षसी सृष्टि का विनाश किया, लोक में मर्यादा की स्थापना की।

शत्रुघ्न वीर ! प्राप्यते त्वया विप्राणामाशीर्वचो ऽमृतम् ।
लवणं हत्वा मधुवने पुनर्भविता ते राज्यं वचोऽप्यृतम् ॥४८॥

हे शत्रुघ्नजी ! आपको विप्रों के शुभाशीष प्राप्त होंगे, लवण को मारकर आपका निष्कण्टक राज्य होगा।

सम्प्राप्ते भोजनकाले तु शत्रुघ्नो लवणं हन्तुकामः ।
युद्धार्थं चाजुहाव दैत्यं ध्यात्वा जगाद भ्रातुर्नाम ॥४९॥

लवणासुर के भोजन के समय शत्रुघ्न ने श्री राम का स्मरण कर उसे युद्ध के लिये ललकारा।

आगतोभूधराकारतनुर्विकटास्यो विकृतवेशधारी ।
सेनारहितो जनसन्तापी रावण लघुभ्रातुर्मदहारी ॥५०॥

वह भूधराकार, विकट मुख वाला विकृत वेश वाला, सेना रहित शत्रुघ्न के पास युद्ध करने आया।

अट्टहासमकरोत् स तदा पशुपक्षिमानवाः संत्रस्ताः ।
अभवन् निखिले भुवने भूयः शिशवो गर्भस्था हि व्यस्ताः ॥५१॥

उसके अट्टहास से पशु-पक्षि तो काँपे ही गर्भ में स्थित शिशु भी काँपने लगे।

भोजने च व्यस्तं विज्ञाय हे रामानुज ! त्वं समागतः ।
नहि शक्तो मारयितुं बालः, स्वयमेव विनङ्.क्ष्यसि सैन्य वृतः ॥५२॥

अरे शत्रुघ्न ! मुझे भोजन में व्यस्त देखकर तुम यहाँ आये हो मैं इस समय तुझे नहीं मारूँगा फिर तो तू मारा ही जायगा ।

शत्रुघ्नः प्राह नीच ! पापिन् ! कालस्तव समागत्तो युद्धे ।
वद मा वद वा मुखतः किंचित्, रक्षति नहि कोऽपि मयि क्रुद्धे ॥५३॥

श्री शत्रुघ्न ने कहा - अरे नीच, पापी तेरा काल आगया है, कुछ कह या मत कह मेरे युद्ध होने पर तुझे कोई नहीं बचा सकता ।

निजघान शरैः शत्रुघ्नस्तं भूसुर कुलद्रोहकरं पापम् ।
प्रोचुर्विप्रा माथुरास्ततः हृतिवानसि सर्वेषां तापम् ॥५४॥

शत्रुघ्न ने विप्र घालक लवण को मार डाला और सबको प्रसन्न कर दिया, माथुरों ने कहा कि आपने हमारे ताप दूर कर दिये । शत्रुघ्न जी को उनके राज्य कार्य में सहयोग भी दिया ।

दोहा—वाराहोऽत्र विराजितो ममुदेयमुनां प्राप्य ।
माथुर कुलसेवा प्रियो राजति तीरमवाप्य ॥५५॥

श्री वाराह तब से फिर यमुना तट पर विराजमान हुए, माथुर विप्रों से सेवा कराते हुए यही निवास करने लगे ।

[चौबच्चा मुहल्ला में श्री शत्रुघ्नजी का प्राचीन मन्दिर है ।]

इति श्री श्रीवर शास्त्रि सूनु-वासुदेवकृष्णचतुर्वेद विरचिते-
श्रीद्वारकाधीश महाकाव्ये श्री वाराह वर्णनं नाम
सप्तदशः सर्गः समाप्तम् ।

इति श्री श्रीवर शास्त्री चतुर्वेद के पुत्र श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में श्री वाराह वर्णन नामका सप्तदर्श सर्ग पूर्ण हुआ ।

अथ अष्टादशः सर्गः

राजाधिराज निकटे 'मानिक चत्वरे' वसति वाराहो विभुः ।
माथुर भूसुर सेवितः सदा दंष्टोद्धृत-भूमण्डलः प्रभुः ॥१॥

श्री वाराह 'मानिक चौक' में हैं यह मन्दिर द्वारकाधीश के पीछे स्थित है, माथुर ब्राह्मण इसकी सेवा पूजा करते हैं ।

द्वारकाधीशमन्दिरे वाराहस्यागमनम्-

एकदा द्वारकाधीश-गृहे मिष्टान्नं भुक्तं तेन धृतम् ।
किंचिन्नीतं संयावं स्वे हस्ते किंचित् वदने च कृतम् ॥२॥

एक दिन श्री वाराह जी ने मन्दिर द्वारकाधीश में भोग की वस्तु हलुआ आदि को मुख में रखा कुछ हाथ में लिया ।

भोगावसान वेला जाता पूजको गतोऽभ्यन्तर कोष्ठे ।
परितोऽवकीर्णमखिलं वस्तु चकितोऽभूद् दृष्ट्वा तत्रोऽष्ठे ॥३॥

जब भोग सम्पन्न होने का समय आया तो पुजारीजी भीतर गये और उन्होंने सब वस्तु बिखरी पड़ी देखीं ।

हा किमिदं केन कृतं भ्रष्टं मिष्टान्नं चान्नं सुरक्षितम् ।
नष्टं गव्यं बहुपात्र-धृतं स्थालीषु सम्यक्समर्पितम् ॥४॥

वह बोला हा—यह किसने किया मिष्टान्न कौन विकीर्ण कर गया, दूध-दही-माखन आदि भी सब भ्रष्ट हुआ है ।

भो सेवक ! धाव, द्रुतं पश्य, श्वा समागतो मार्जारोवा ।
वानरोऽथवा चञ्चलवृत्तिर्मूषको ग्राम्य-वाराहो वा ॥५॥

वह सेवक से बोला शीघ्र जाओ, देखो ! कोई कुत्ता-बिलाव-वानर मूषक है या वाराह है ?

पप्रच्छ सेवको द्वारस्थं पुरुषं वद रे ! को विनिर्गतः ।
पशु तुल्यः कश्चिद्देह धरः स्वामिनमनुधावन्समागतः ॥६॥

सेवक ने द्वारपाल से पूछा—अरे कोई पशु इधर से निकला है या मनुष्य का पालतू कुत्ता वानर आदि जो मोनभोग लूट कर भागा है।

प्रोचुः सकलाः सेवकास्ततः स्वामिन् नहि दृष्टो नरेनरः।
आगतो गतो वा सम्मर्दे प्रत्यक्षं गुप्तो वनेचरः ।।७।।

द्वारपालों ने कहा कि—हमने कोई वनेचर (जीव) भी नहीं देखा है।

प्रक्षालन-कर्म कृतं सम्यक् कांचन-कलशस्थ-पयोभिश्च।
उपलिप्य गोमयेनाङ्गणकं स्नापितो विभुस्तु पयोभिश्च ।।८।।

सुवर्ण के कलशों में जल भर कर मन्दिर को प्रक्षालित किया और गोबर से आंगन लीपा और दूध से भगवान् का पुनः अभिषेक किया।

श्रान्तो बभूव पूजको महान् कृत्वा शुद्धि द्वारकापतेः।
विस्मितोऽभवत् गोकुलो महान् श्रुत्वा वृत्तां श्रीरमापतेः ।।९।।

मन्दिर की शुद्धि से पुजारी थक गया किन्तु जब पारिखजी ने सुना तो महान् आश्चर्य हुआ।

अपरेद्युः सावधानमुद्रा द्वारस्थैः कृता पूजकैश्च।
निज मन्दिर-कीतन व्यग्रश्च सेवा प्रवीण बहु मनुजैश्च ।।१०।।

दूसरे दिन द्वारपाल पुजारी (मुखियाजी) कीर्तनियां सभी सावधान हो गये।

नागतः कोऽपि जन्तुस्तत्र भोगावधि-कालो विनिर्गतः।
जातो घण्टा ध्वनिरनन्तरं "मुखियाजी" संतुष्टो जातः ।।११।।

भोग की अवधि निकलने तक कोई जन्तु नहीं आया, घंटा ध्वनि होने पर मुखिया जी की श्वास में श्वास आई।

सप्ताहान्तरे पुनर्घटना जाता तथैव मन्दिरान्तरे।
श्रीसूकररूपधरो विष्णु-र्भोगं दधार निजमुखान्तरे ।।१२।।

किन्तु एक सप्ताह के मध्य ही पुनः घटना हुई, श्री वाराहजी द्वारकाधीश का मोनभोग ले गये।

आगतो माययया यथा प्रभु र्भुक्त्वा यातो निजप्रासादे।
आपूप-मोदकादीनि तथा चिक्षेप तदा जाते वादे ।।१३।।

और वे वाराहजी जैसे आये वैसे ही मन्दिर से वाहर हो गये, लड्डू-पूआ आदि फेंक गये।

किमिदं-किमिदं कुत एवेदं केनेदं निखिलविसर्जितम् ।
आपूप-मोदकौ श्रीखण्डं घृत-मण्डं चापि सुगन्धितम् ॥१४॥

आश्चर्य चकित पूजक और अन्यजन देखने लगे कि ये किसने फेंक दिये हैं, श्री खण्ड-जलेबी-लड्डू आदि सब बिखरे पड़े थे।

नाऽज्ञायि जनेन च तत्स्थेन दर्शन-कामेन नरेण भृशम् ।
वार्तयाऽपि ज्ञानं नावाप्तं वीथीषु चलन्त्या तथेदृशम् ॥१५॥

उस मनुष्य ने जो सेवा द्वार पर था चारों ओर देखा परन्तु पता नहीं लगा।

गोकुलदासः शुश्राव पुनश्चर्चां भोगस्य च चौरस्य ।
अवदन्निज-सेवकमाहूय किं नास्ति चिकित्सा रोगस्य ॥१६॥

श्री पारिखजी ने फिर सुना कि कोई भोग चुराकर भाग गया, उन्होंने सेवक से पूछा कि क्या इस रोग का निदान नहीं है ?

द्वारकाधीश-मन्दिर मध्ये सक्रियाःसन्ति यदि भौश्चौराः ।
दण्ड्याः सर्वथा पापशीला देशान्तरगा यदि वा पौराः ॥१७॥

राजाधिराज मन्दिर में जो कोई चोरी करेगा दण्ड भुगतेगा चाहे वह वाहर का हो या नगर का।

"अधिकारी" शिरोऽवनतिः पूर्वं प्राहाञ्जलिमुद्रायुतो मुदा ।
स्वामिन्नागः क्षन्तव्योऽयं न भविष्यति चाग्रे प्रभोः ! कदा ॥१८॥

श्री अधिकारी जी ने कहा कि इस बार आप क्षमा करें आगे ऐसा नहीं होगा।

स्वप्नदर्शनम्-

गृहमध्य-गतो गोकुल भक्तो रात्रौ भुक्त्वाशयनं यातः ।
पश्यन् भगवन्तं वाराहं विस्मितोऽभवद्भयमुपयातः ॥१९॥

पारिखजी घर में रात्री में शय्या पर पड़े ही थे उन्होंने वाराह देखा जिसे देख कर भयभीत हो गये।

वाराहः प्राह मुदा भूयः श्रृणु रे ! मत्सेवन दृढ व्रतिन् ।
मन्दिर सविधे मे वासोऽस्ति नहि दृष्टस्त्वया कदापि कृतिन् ॥२०॥

वाराह ने कहा कि पारिखजी ! सुनिये आपके इस मन्दिर के निकट ही मेरा मन्दिर है उसे आपने कभी देखा नहीं है ।

रूपं चैकंपूज्यते त्वया नाद्रियते प्राचीना मूर्तिः ।
स्वयमेव समागत्यात्र मयाक्रियते भोः स्वोदर सम्पूर्तिः ॥२१॥

आप एक विग्रह की तो पूजा कर रहे हैं और प्राचीन विग्रह की ओर ध्यान नहीं दे रहे अतः मैं यहाँ आकर भोग लूटता हूं ।

पारिख-कृता-स्तुतिः-

दृष्ट्वा वाराह विभुंभवने प्रणनाम पुनर्भूयो भूयः ।
हे भगवन् ! दयानिधे ! भूमन् ! सर्वथा जनोऽयं क्षमणीयः ॥२२॥

श्री वाराह का दर्शन कर उन्होंने प्रणाम किया और उनसे क्षमा याचना की।

हे रमानाथ ! करुणा सिन्धो ! मथुरापति ! कृष्ण ! विभो पाहि ।
लुब्ध दृप्तं जरयाक्रान्तंकृपणंत्यक्त्वा न क्वापि याहि ॥२३॥

हे रमानाथ ! हे करुणा सिन्धु ! हे मथुराधीश कृष्ण ! विभु ! वृद्धावस्था क्रान्त मुझ सेवक को त्यागकर अन्त न जाइये ।

दोहा—वीतमन्युरखिलं ततो वाराहश्च निशम्य ।
प्रासीदत् वणिजि भृशं गुरूतम रूषं विसृज्य ॥२४॥

शान्त वाराह जी ने रोष त्याग कर भक्तवर पारिखजी से कहा –

वरप्रदानम्—

तुष्टो जगाद वाराहप्रभुः करुणासिन्धुर्मथुराधीशः ।
तव कीर्तिरनेकयुगस्था हि भविता नूनं प्राहश्रीशः ॥२५॥

श्री पारिख जी ! तुम्हारी कीर्ति चिरस्थायिनी होगी ।

समुचितं हितं वाराह-वचः श्रुत्वा शय्याभ जहात् समतदा ।
सर्वानादिशत् सु भोगार्थं वाराह कृते विदधे च मुदा ॥२६॥

श्री वाराह जी के वचन सुनकर पारिख जी ने शय्या त्याग दी और उनके भोग के लिए आदेश दे दिया ।

यावज्जीवं चाभुज्य सुखं वैशाखे मासे पूज्य विभुम् ।
गोलोकं गतो गोकुलोऽसौ स्मारं स्मारं श्रीरमाप्रभुम् ॥२७॥

श्री पारिख जी दीर्घायुष्य प्राप्त कर भगवत् पूजा सेवा करते हुए गोलोक वासी हो गये ।

दोहा—पारिख गोकुलको धनी मन्दिरकर्म विधाय ।
दातुं चैच्छत् कुलगुरुं मोहं निजं विहाय ॥२८॥

श्री गोकुलदास पारिख ने मन्दिर बनवाकर, यह इच्छा व्यक्त की थी, कि इसका अधिकार काँकरौली घर सम्भाले, अर्थात् काँकरौली के गोस्वामी जी इसकी व्यवस्था करें ।

काँकरौलीगुरोरत्र मन्दिरस्याधिकारकम् ।
भूयादितिभृशं बोध्य देहमत्राऽत्यजत्विभुः ॥२९॥

काँकरोली वाले गोस्वामी जी को इसे भेंट किया जाय, यह कहकर पारिख जी ने देह त्याग दिया ।

(पारिख जी की इच्छा अपने जीवन काल में पूर्ण नहीं हुई ।)

स्वल्पकाले दिवं याते पारिखस्य महामतेः ।
ताताज्ञां विस्मृतो भूत्वा दातुमैच्छत् गृहान्तरम् ॥३०॥

श्री लक्ष्मीचन्द्र जी ने इसे दूसरे घर में देने का विचार किया ।

(इस मध्य लक्ष्मीचन्द्र सेठ की घनिष्ठता जामनगर निवासी गोस्वामी जी से हो गई और वे उन्हें ही मन्दिर देने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे, क्योंकि एक बार व्यापार में घाटे के समय श्री गोस्वामी जी ने सेठ जी को उपकृत किया था ।)

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० श्री वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये वाराहस्य मन्दिरे लीला वर्णनं नाम-अष्टादशः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्री चतुर्वेद के पुत्र श्री वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में अष्टादश सर्ग पूर्ण हुआ ।

अथ अथैकोनविंशः सर्गः

श्रीद्वारकाधीशाधिकार-ग्रहणाय व्रजरायस्य यात्रा-

जामनगर तिलको वल्लभ वंशे जातो व्रजराय वरः ।
लक्ष्मीचन्द्रेण समाहूतो मथुरामायातुं चित्तधरः ॥१॥

श्री वल्लभाचार्य वंश में श्री व्रजरायजी गोस्वामीजी उत्पन्न हुए थे उन्हें सेठ लक्ष्मी चन्द्रजी ने मन्दिर का अधिकार लेने के लिये आमन्त्रित किया ।

चलितो निजबन्धु वृतो धीमान् देशं सौराष्ट्रं त्यजन् मुदा ।
दृष्ट्वा च काणमनुजं सम्यक् चिन्तयामास हृदये स तदा ॥२॥

श्री गोस्वामीजी सौराष्ट्र देश को त्याग कर जब चलने लगे तो सम्मुख ही उन्हें एक एकाक्षि मनुष्य (काणा आदमी) मिला उससे उन्हें थोड़ी चिन्ता हो गई ।

काण दर्शनम्—

काणस्यदर्शनं यात्रादौ वामे च शिवा निनदं चापि ।
शोभनं न कथितं गणितज्ञैर्विधवाजनदर्शनकं वापि ॥३॥

काण दर्शन—शिवा (शृगाली) का बाँई ओर शब्द करना, विधवा दर्शन शकुन शास्त्र के विशेषज्ञों ने ठीक नहीं माने ।

चिन्तयन् दोषपरिहारार्थं सस्मार गोकुलाधिपपादम् ।
हे कृष्ण ! कृष्ण ! इतितन्नाम व्याहरन् मुदा स सस्वादम् ॥४॥

उन्होंने भगवान् गोकुलाधीशजी का स्मरण किया और कृष्ण-कृष्ण नाम का उच्चारण किया ।

आगच्छति गोस्वामी विपिने द्वारकाधीशमन्दिरमाप्तुम् ।
दारापुत्रैर्मुदितश्चित्तो भाग्योदयपूत फलं चाप्तुम् ॥५॥

श्री गोस्वामी जी द्वारकाधीश मन्दिर लेने अपने परिवार सहित मथुरा पधार रहे थे, भाग्योदय का पवित्र फल लेने की सोच रहे थे ।

जबलपुर समीपे सिंहाक्रमण-वर्णनम्—

जबलपुरनामकेऽरण्ये सरिता विरलाआसीत् भरिता ।
नायिकेव रन्तुमुद्युक्ता प्रावृट् समये पद्मैः सहिता ॥६॥

(म० प्र०) जबलपुर नामक स्थान में वे एक नदी के तट पर रात्री में रुके, वहाँ एक नदी सुन्दर नायिका जैसी चाल से वह रही थी ।

वसतिस्म च तत्रैकः सिंहो गिरिकन्दरमध्यगतः क्रूरः ।
वन हस्ति-कुम्भभेदनकुशली संग्रामे वापि महाशूरः ॥७॥

वहीं एक कन्दरा में सिंह रहता था, वह बड़ा ही क्रूर था, वनैले हाथियों के कपोल विदीर्ण करने में कुशल था, उनसे युद्ध भी करता था ।

धावन्सेवको यदायाति निजप्रभुं समाचारं दातुम् ।
तावत् स गर्जनं सिंहस्तं मारयामास रक्तंपातुम् ॥८॥

जब तक एक सेवक गोस्वामीजी को सावधान करने आता है तब तक सिंह ने रक्तपान की इच्छा से उन्हें समाप्त कर दिया ।

जातस्तदैवहाहाकारो दिक्षु क्रन्दन-शब्दश्च ततः ।
हा नाथ ! विभो ! हे गोस्वामिन् ! इतिध्वनिभिर्भरितः समन्ततः ॥९॥

चारों ओर हा हाकार छा गया और क्रन्दन शब्द से हा नाथ, हा गोस्वामी आदि से वन भर गया ।

सर्वे भयसंत्रस्ता प्रोच्चैर्हाहाकारध्वनि-पूर्ण-मुखाः ।
वृक्षे गिरिशिखरे नद्यां च गुप्ताजाताश्च सुहृत्प्रमुखाः ॥१०॥

सब लोग हा हाकार करने लगे तथा और लोग अपनी रक्षा के लिये वृक्षों पर चढ़ गये कुछ शिखर की ओर दौड़कर छिपने लगे ।

एकेन मल्ल सम शूरेण यष्टिकाप्रहारैः सिंहस्य ।
प्राणान्नेतुं यत्नोऽपि कृतः युक्त्या पापस्य च हिंस्रस्य ॥११॥

एक पहलवान से व्यक्ति ने लाठी प्रहार से सिंह को मारने का यत्न भी किया किन्तु वह सब व्यर्थ हो गया । सिंह घायल हो गया था ।

गोस्वामिनो गोलोक प्राप्तिः-

हत्वा गोस्वामि महाभागं सिंहो ममार विपिने गत्वा ।
परिजना गताः सर्वे नगरे मथुरा गमने चाशां त्यक्त्वा ॥१२॥

वन में जाकर वह सिंह भी मर गया किन्तु गोस्वामीजी के परिवार के सभी लोग अपने नगर लौट गये, मन्दिर की आशा तो छूट ही गई थी।

श्रुत्वा मथुरा नगरीमध्ये वृत्तान्तममुंसन्तापकरम् ।
पारिखवंश्या दुःखिताश्चिन्तयामासुररं गोस्वामि वरम् ॥१३॥

मथुरा नगर में जैसे ही यह वृत्तान्त सुनने को मिला तो श्री पारिखजी के परिवार के लोग दुःखी हो गये।

मथुरानगरीमध्ये विरलो मानवोऽवसत्निजकं भवनम् ।
गोस्वामि-मृत्यु वचनं श्रुत्वा शीघ्रं चकार यो नो गमनम् ॥१४॥

मथुरा नगरी में विरला ही मानव होगा जिसने इस वृत्तान्त को सुनकर शोक प्रकट न किया हो।

द्वारकाधीश सेवासक्तो ह्यनुरक्तो वल्लभ-चर्चायाम् ।
मन्दिरमानन्दमना धीरो निर्माप्य गतः प्रभु सेवायाम् ॥१५॥

श्री पारिखजी तो द्वारकाधीशजी की भक्ति और श्री वल्लभाचार्यजी की चर्चा में अनुरक्त रहकर दिवंगत हो गये।

सेठ लक्ष्मीचन्द्रस्य विचित्राकथा—

तत्पुत्रसमो मनिरामोवणिक् वैकुण्ठं गतो धरां त्यक्त्वा ।
लक्ष्मीचन्द्रं-राधाकृष्णं-गोविन्ददासं स्वत्वं दत्त्वा ॥१६॥

श्री मनीराम सेठ भी परलोक चले गये और अपने समस्त अधिकार व सम्पत्ति सेठ लक्ष्मीचन्द्र-राधाकृष्ण और गोविन्ददासजी को दे गये।

घटनैका तत्र सु संजाता श्रोतव्या मननीया सभ्यैः ।
निखिले देशे प्रसारणीया मथुरानिवासशीलैरम्यैः ॥१७॥

घटना—इस बीच एक घटना घटी जो मथुरा के गौरव को बढ़ाने वाली है।

लक्ष्मीचन्द्रः कलिकाताख्ये नगरे जगाम धनमादाय ।
मन्दिरसेवायै समर्पयत् तत्राप्तं वित्तं चादाय ॥१८॥

एक बार श्री लक्ष्मीचन्द्र सेठ बहुत सा धन लेकर कलकत्ता नगर में व्यापार करने गये।

अश्वद्वययाने तत्रत्या गन्तुं योग्या नियम आसीत् ।
प्रतिकूलाचरणेदण्डयास्ते मुद्रा शतद्वयेनेत्याज्ञासीत् ।।१६।।

वहाँ उस समय केवल दो घोड़ों की बग्गी में बैठकर भारतवासी घूमते थे (अधिक घोड़ों की में नहीं) आज्ञा के उल्लङ्घन करने पर २०० रु० दण्ड देना होता था ।

गतवानथलक्ष्मीचन्द्रोऽसौ चतुरश्वरथं समुपातिष्ठन् ।
निकटस्थे चतुष्पथे चारैर्दण्डितो वणिक् गृहमागच्छन् ।।२०।।

सेठ लक्ष्मीचन्द्र बड़े विनोदी और उदार थे, एक बार वे चार घोड़े की बग्गी में बैठकर हवा खाने निकले और चौराहे पर उन्हें जब रोका गया तो दण्ड की धन राशि दे दी और घर आ गये ।

अपरस्मिन् रविवारे द्विगुणं त्रिगुणं तथैव सप्ताहान्ते ।
प्रददौ मुद्रा राजती: शुभा धनिकप्रवरो ननु मासान्ते ।।२१।।

दूसरे रविवार को ८ घोड़े की बग्गी में, और फिर तो प्रत्येक बार दुगनी संख्या के घोड़े जोड़ते और नियमानुसार दण्ड की धन राशि देते ।

गौराङ्ग-संवाद:—

आयातो लार्ड-पदासीनो गौराङ्गो निज 'लंदन' देशात् ।
अतएव राजमार्गो रुद्धो नगराधीशस्य समादेशात् ।।२२।।

एक बार 'लार्ड पद वाच्य' अंगरेज शासक लंदन देश से आया उसके सम्मानार्थ समस्तमार्ग बन्द कर दिये गये थे ।

लक्ष्मीचन्द्रश्च जगाम द्रुतं श्रुत्वाऽऽदेशं त्वति मानहरम् ।
हयशतकेनाञ्चितसद्याने स्थित्वा शिक्षयितुं चांग्लवरम् ।।२३।।

सेठ लक्ष्मीचन्द्र १०० घोड़े की बग्गी में बैठकर उस दिन निकल पड़े वे पाठ पढ़ाना चाहते थे कि भारतवासी कैसे निर्भय हैं ।

भारतमातु: पुत्रा हीना हा हा विदेशि-जनताधीना: ।
दत्वा दंडं तदभीष्टमहं विज्ञापयामि नहि भो दीना: ।।२४।।

हा भारतवासी विदेशियों के आधीन हैं इसका उन्हें बड़ा क्षोभ था—किन्तु उन्होंने संकल्प कर लिया कितना भी दण्ड क्यों न देना पड़े अवश्य दूँगा, पर बग्गी लेकर जाऊँगा ।

गच्छता राजमार्गे तेन चूर्णितो मदो गौराङ्गानाम् ।
होरापादावधि तद्यानं त्ववरुद्धं बणिजा दुष्टानाम् ।।२५।।

राजमार्ग पहुँचकर उन्होंने गोरे शासकों का मद चूर्ण कर दिया और ३० मिनट तक मार्ग अवरुद्ध रहा ।

क्रुद्धोबभूव नगराधीशो गौराङ्गश्चापि मनसि खिन्नः ।
लक्षाधिक मुद्रामानेतुं प्राहाति रुषा त्वाशा छिन्नः ।।२६।।

नगराधीश अँग्रेज बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और सेठजी पर लाख रुपया नगद का दण्ड दे दिया ।

अङ्गीकृतवचाः कोटपालो धावन् यानं निकषा स गतः ।
लक्ष्मीचन्द्रं संबोध्य आह रे मनुजाधम ! क्व समागतः ।।२७।।

जिलाधीश के आदेश से कोतवाल ने जाकर सन्देश दिया और कहा आप कहाँ से आये हैं ।

जानासि न शासन काठिन्यं जानासि न कोऽहं का शक्तिः ।
जानासि न वैभवमांग्लानां वद रे ! शठ ! कुत्रगता भक्तिः ।।२८।।

वह बोला कि आप यह नहीं जानते कि शासन की क्या आज्ञा है ? किसका राज्य है ? और मैं कौन हूँ ? मेरी क्या शक्ति है ?

श्रुत्वा त्वपमानकरं वचनं लक्ष्मीचन्द्रःप्रोवाच स्वयम् ।
मथुरा-वासी लक्ष्मीचन्द्रो मे नाम श्रृणुस्त्वं न मे भयम् ।।२९।।

सेठ श्री लक्ष्मीचन्द्र ने कहा कि मैं लक्ष्मीचन्द्र सेठ हूँ और मथुरा का रहने वाला हूँ ।

जानामि न चाहं कोऽत्र प्रभुर्नच शासनमद्य विदेशानाम् ।
अहमस्मि भारतीयो नूनं याचे नहि कृपां विलासानाम् ।।३०।।

मैं नहीं जानता यहाँ किसका शासन है और यहाँ क्या आदेश है, मैं भारतीय हूं, विलासियों की कृपा का इच्छुक नहीं ।

श्रुत्वा लक्ष्मीचन्द्रस्य वचस्तूच्चैराहांग्लवपुः क्रूरः ।
दण्ड्यस्त्वंलक्षक मुद्राभिस्त्वधुनैव दीयतां यदि शूरः ।।३१।।

लक्ष्मीचन्द्र सेठ के वचन सुनकर वह अँग्रेज बड़ा हँसा और कहा कि आपको एक लाख रुपया दण्ड अभी यहीं देना होगा ।

यानादुत्थाप्य लक्षमुद्राः प्राक्षिपत्तस्य मनुजस्य पुरः ।
यानं चादाय चचाल द्रुतं मन्दस्मितमुखो न मान परः ।।३२।।

सेठ लक्ष्मीचन्द्र ने रुपयों की थैली फेंक दी और मुस्कराते हुए आगे बढ गये ।

'सर लार्डख्यो' लंदनवासी साहसमवलोक्य नृशूरस्य ।
'ओ गोड' कीदृशोऽयं पुरुषो वित्तस्य शक्तिरति धीरस्य ।।३३।।

लंदनवासी लार्ड ने साहसी व्यक्ति को देख 'ओ गोड' कहकर आश्चर्य व्यक्त किया ।

कोऽयं कस्याऽयं वा तनुजो हिन्दुर्या मुस्लिम ज्ञातीयः ।
कस्मिन् ग्रामे नगरे देशे निवसत्यथवा नो जातीयः ।।३४।।

शासक ने कहा – यह कौन है ? किस स्थान व देश का वासी हैं ? हिन्दु-मुस्लिम में है या हमारा ही कोई हितैषी है ।

कलिकाता नगर प्रभुः प्राह नो ज्ञातीयो न च नगरस्थः ।
मथुरातः समागतः कोऽपि श्रेष्ठी विप्रो वा कायस्थः ।।३५।।

स्थानीय अधिकारी ने कहा—मथुरा नगर का रहने वाला कोई धनी वणिक् है ब्राह्मण है या कायस्थादि है कुछ पता नहीं ।

सादरं तस्य सविधे गत्वा यानं त्यक्त्वा बहिरागत्य ।
हस्तौ निजहस्ताभ्यामाप्य हृष्टोऽभूद् वृत्तं त्ववगत्य ।।३६।।

शासक, सेठ की बग्गी के पास आया और हाथ मिलाकर प्रसन्नता व्यक्त की ।

तुष्टोऽहं मित्रं भव मे त्वं शूरस्त्वंराजासन-योग्यः ।
आगच्छतु मे भवनं भूयो दिवसान्ते वा संप्रति सद्यः ।।३७।।

यह भी कहा—आपवीर हैं और राज्याधिकारी पद के योग्य हैं आप मुझसे सायंकाल मिलियेगा ।

रूप्यक राशिं न च संस्पृश्य दीयतामहो नीतं वित्तम् ।
निखिलं यल्लब्धं दण्डेन मित्रं मे, तुष्टं मे चित्तम् ।।३८।।

उसने जितने रुपये लिये वे सब दे दिये और मित्रता मानी ।

गतवानथ यानगतो भवने लक्ष्मीचन्द्रोऽपि यथायातः ।
हृष्टो बभूव वार्तया तथा पंकजं विभाति यथाप्रातः ।।३९।।

लक्ष्मीचन्द्र प्रसन्नता से घर लौटे, प्रातः पंकज की श्री की भाँति उनका मुख प्रसन्न था ।

कुण्डलिया—

व्यापारे कुर्वन् रतिं हानिं त्वथ सम्प्राप्य
भूयो भूयः कलकता मध्य वासमथ प्राप्य ।
मध्यवासमथ प्राप्य संचितं नष्टं वित्तम्
मनुते द्रव्यं विना स्वमानो गो गतवित्तम् ।
सम्प्राप्तं धनमद्भुतं च कृपया असुरारेः
द्यूतवित्तमिव गतं रक्षितं यद् व्यापारे ।।४०।।

वे व्यापार करते थे, कई बार घाटा भी पड़ा, कई वार राजाधिराज की सम्पत्ति भी ली परन्तु जुए में आये धन की भाँति वह नष्ट हो गई ।

एतस्मिन्नन्तरे राधाकृष्णस्तस्यानुजोत्तमः ।
चिन्तयामास दीक्षार्थं गुरुं वैष्णव-भूषणम् ।।४१।।

इस मध्य लक्ष्मी चन्द्र के अनुज श्री राधाकृष्ण सेठ ने दीक्षा लेने का विचार किया और गुरु का अन्वेषण किया ।

रायजी पारिखभ्राता तस्याज्ञामवलम्ब्य हि ।
कुरुतेऽहर्निशं सेवां राधाकृष्ण उदारधीः ।।४२।।

पारिखजी के एक भाई थे उनका नाम था 'रायजी' उन्हीं की आज्ञा से राधाकृष्ण मन्दिर की सेवा करते थे ।

कुण्डलिया--

राधा कृष्ण उदारधीरतिशयनिष्ठावान्
लक्ष्मीचन्द्र इवापरो बलशाली विद्वान् ।
बलशाली विद्वान् धर्म संसेवी योगी
मथुरा नगर विभूषणं च दानी संभोगी ।
कल्पद्रुम इव नृणां निकटे यस्य न बाधा
श्रेष्ठि प्रवरः पुण्यनाम कृष्णोत्तर राधा ।।४३।।

सेठ राधाकृष्णजी उदार बुद्धि के निष्ठावान् व्यक्ति और लक्ष्मीचन्द्र के समान ही बलशाली, विद्वान, धर्मसेवी और मथुरा नगर के आभूषण थे, वे दोनों के लिये कल्पवृक्ष के समान थे।

रायजी व्यवहारेणखिन्नो भूत्वा स वै वणिक्।
द्रुतं चक्रे शुभां यात्रां ब्रजक्षेत्रे विशेषतः ॥४४॥

'श्री रायजी के व्यवहार से वे खिन्न हो गये थे अतः वे ब्रज यात्रा करने निकले।

एकदा नापितः प्राह क्रियतां चान्यमन्दिरम्।
येन सर्वाधिकारास्ते भवेयुरिति मन्मतम् ॥४५॥

एक दिन एक नापित (नाई) ने परामर्श दिया कि आप एक नया मन्दिर बनवायें और उसकी सेवा-पूजा अपने मन से करें।

राधाकृष्णस्य दीक्षा-वर्णनम्-

राधाकृष्णो जगामाशु श्रीवल्लभगुरोर्गृहे।
दीक्षार्थं विट्ठलेशस्य सविधे तस्य सद्मनि ॥४६॥

सेठ राधाकृष्ण श्री वल्लभाचार्य के वंशज श्री विठ्ठलनाथजी के समीप गये उस समय वे गौ सेवा में लगे थे।

स गोसेवाव्रती प्राह गम्यतां मे न रोचते।
समीपेमन्दिरे चास्ति भ्राता श्रीपुरुषोत्तमः ॥४७॥

गाय की सेवा त्यगकर वे सेठजी से मिलने न आये और कहा कि समीप के मन्दिर में मेरे भाई गो० पुरुषोत्तम है उनसे दीक्षा ग्रहण कर लो।

राधाकृष्णस्ततो खिन्नः सेवकेन प्रबोधितः।
गोवर्धनगिरौ रम्ये जगाम रङ्गपीठके ॥४८॥

सेठजी की श्रद्धा पुरुषोत्तमजी में नहीं थी। अतः सेवक की प्रेरणा से वे गोवर्धन के रामानुज गद्दी के आचार्य के पास पहुंच गये।

रंगाचार्यस्य शिष्योऽभूद् राधाकृष्णो महामतिः।
तदाज्ञयाऽकरोद्यो हि सुन्दरं मन्दिरं वने ॥४९॥

तत्कालीन श्री रंगाचार्य के शिष्य बन गये और उन्ही की आज्ञा से वृन्दावन में सुन्दर रंग मन्दिर का निर्माण किया।

रंग मन्दिर निर्माण-वर्णनम्—

अक्षिखाङ्केन्दुवर्षे (१६०२) च शुभारम्भं तथाऽकरोत् ।
श्रीरंगमन्दिरस्यापि राधाकृष्णो-महाशयः ॥५०॥

विक्रम सं० १६ २ में रंग मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ हुआ ।

वृन्दावने च तत्पूर्णं षड्भिर्वर्षैश्च मन्दिरम् ।
उत्थापिता शिलास्तत्र लक्ष्मीचन्द्रेण धीमता ॥५१॥

छः वर्ष में मन्दिर तैयार हो गया अर्थात् विक्रम सं० १६०८ में, इस मन्दिर के गोपुर की शिला चढाने में सेठ लक्ष्मीचन्द्र का भी सहयोग है वे प्रथमवार ही बाहर से आये और शिला न उठती देख स्वयं ने सहारा लगाया था ।

एवं पारिखवंश्यैश्च वैष्णवाब्धि सुधांशुभिः ।
कारितं दर्शनं भक्त्या द्वारकाधीश-रङ्गयोः ॥५२॥

इस प्रकार पारिखजी के बान्धवों ने वैष्णवों को आनन्दित किया और श्री द्वारकाधीश तथा रंगजी के दर्शनों का लाभ व्रज को दिया ।

कालान्तरे गतौ तौ च भ्रातरौ स्वेष्ट-सन्निधौ ।
दक्षिणोत्तरयोर्भेदमपहाय कृतश्रमौ ॥५३॥

कालान्तर में प्रथम सेठ लक्ष्मीचन्द्र और तदनन्तर राधाकृष्ण परलोकवासी हो गये और दक्षिण-उत्तर के भेद को दूर कर गये ।

वंशावली-वर्णनम्-

राधाकृष्ण सुतः श्रेष्ठी लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ।
तत्सुतो द्वारकादासो गोपालश्च ततोऽभवत् ॥५४॥

सेठ राधाकृष्ण के पुत्र लक्ष्मणदास हुए उनके द्वारकादास और उनके निज पुत्र गोपालदास हुए ।

श्री भगवानदासाख्यः श्रेष्ठिवर्योऽद्य राजते ।
यत्सुतो विजयो नामा सात्मजश्च विराजते ॥५५॥

सेठ गोपालदास के दत्तक पुत्र भगवानदास विद्यमान हैं इनके पुत्र विजय कुमार भी सपुत्र विराजित हैं ।

दामोदर इतिव्यातो लक्ष्मणस्य कनिष्ठक: ।
यत्सुतो मथुरादासो जातो नगर मानभाक् ।।५६।।

लक्ष्मणदास के भ्राता का नाम दामोदर दास था, उनके मथुरादास उत्पन्न हुए ।

श्रेष्ठी गोविन्द दासाख्यो यथानाम तथा गुण: ।
मन्दिरं द्वारकाधीशं ददौ पारिख हार्दवित् ।।५७।।

सेठ लक्ष्मीचन्द्र के लघु भ्राता सेठ गोविन्ददास यथा नाम तथा गुण थे उन्होंने ही यह मन्दिर (द्वारकाधीशजी का) श्री पारिखजी के हृदय की भावना को करने के लिये वल्लभ कुल में काँकरोली वालों को सुपुर्द किया था ।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि सूनु-डा॰वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचिते॰ श्रीद्वारकाधीश महाकाव्ये श्रेष्ठी राधाकृष्णस्य रंगमन्दिर निर्माण वर्णनं नाम एकोनविंश: सर्ग: समाप्तम् ।

इति श्री श्रीवरशास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा॰ वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद विरचित श्री द्वारकाधीश-महाकाव्य में एकोनविंश सर्ग पूर्ण हुआ ।



अथ विंशः सर्गः

मन्दिर प्रदानम्-

गोविन्दः श्रेष्ठिवर्यो रघुपति-शरणो लक्ष्मणस्तस्य भ्राता
निश्चित्यात्मानुरूपां व्रजभुवि विततां कीर्तिमत्युच्च-भावाम् ।
योग्यं श्री काँकरौलीश्वर गिरिधरकं बन्हि-पीठासनस्थम्
निश्चित्य श्रेष्ठपात्रं चलधन सहितं चार्पयामासुरस्मै ।।१।।

सेठ गोविन्ददास ने रघुनाथदास (लक्ष्मीचन्द्र के पुत्र) के साथ विचार विमर्श करके अपनी कीर्ति की रक्षा हेतु काँकरौली नरेश तृतीय पीठाधीश गोस्वामी श्री गिरिधर लालजी को मन्दिर समर्पित किया।

प्रासादं चाप्तुकामः सकलपरिजनैः शिष्यवृन्दैः समेतः
श्रेष्ठी गोविन्दमान्यो गिरिधर-भवने मासि वैशाख संज्ञे ।
स्थित्वा श्रुत्वा प्रतिज्ञां "किमपि न लिखिते न्यून वृद्धिक्षमस्त्वं
खिन्नो भूत्वा स्वचित्ते चलमचलधनं कामयामास नेषत् ।।२।।

मन्दिर को विधिवत् ग्रहण करने के लिये गो.स्वामीजी जब अपने शिष्यों सेवकों सहित मथुरा पधारे तो वैशाखमास में गिरिधर भवन में वे विराजमान हुए थे, गोविन्ददास जी का लिखा रजिस्ट्री-पत्र उन्हें सुनाया गया उसमें कमी-वेषी करने का अधिकार नहीं था, गोस्वामीजी ने उसे अस्वीकार कर दिया।

नाहं गृह्णामि द्रव्यं चरणकमलयोरर्पितां रत्न राशिं
नास्ति स्वान्ते व्यथा मे मधुरिपु नगरी-हापने तत्र याने ।
चैकं दन्दह्यते मां लिखितमु वचनं वृद्धिकर्माक्षमस्त्वं
येन प्रेष्ठेश्वरस्य प्रबल सुखमयं सेवनं याति दूरे ।।३।।

उन्होंने कहा कि मैं प्रभु चरणों में रक्षित रत्नराशि को ग्रहण नहीं करूँगा, इससे तो मेरे चित्त में कोई व्यथा नहीं है, परन्तु इसमें जो लिखा है कि 'आप वृद्धि भी नहीं कर सकते' यह उचित नहीं है अतः उन्होंने मन्दिर लेने की अनिच्छा व्यक्त की।

ज्ञात्वा गोस्वामि-हार्दं सकलनरवरै वैंष्णवैश्चापि गीतं
श्रेष्ठी गोविन्ददासः पुलकित वदनः साश्रुकण्ठो बभाषे ।
स्वामिल्लोकेऽखिलेऽस्मिन् कनक-विषयिणी वृत्तिरत्यन्ततीव्रा
येनाऽस्माभिः प्रपत्रे लिखितमनुचितं क्षम्यतां नः खलत्वम् ॥४॥

श्री गोस्वामीजी के हृदय की भावना को जानकर कि ये वृद्धि करना चाहते हैं, सेठ गोविन्ददास पुलकित हो गये और उनका गला भर आया वे बोले— गोस्वामीजी ! इस लोक में सुवर्ण की चकाचौंध ने सबकी मति दूषित कर दी है अतः जो अनुचित लिखा गया उसे आप क्षमा करें हम आपका भाव नहीं जान पाये थे ।

द्रव्यं सिंहासनस्थं कनकगिरिसमं भूषणागारमेतत्
कोष्ठं पात्रैश्च पूर्णं रजत-मणिमयैः सेवनार्थं विचित्रैः ।
मुद्राकोशो विशालो विलसति भवने मन्दिरे वर्तमाने
तत्सर्वं गृह्यतां हे ! चरणकमलयोः श्रद्धया चार्पितं ते ॥५॥

सिंहासनस्थ धन, पर्वताकार सुवर्णराशि, रजत-स्वर्णमय पात्र, विशाल धन-राशि जो कुछ है वह सब आप स्वीकार करें ।

कालिन्द्याः पूर्व भागे विलसति विपिने शस्य युक्ताधराऽपि
"नौझोलाख्ये" प्रदेशे बहुतरमखिले 'माट' संज्ञे च ग्रामे ।
सर्वे तत्राधिकारा नगर-भवनगाः स्थापिता ते कराब्जे
स्वामिन् ! गृह्णातुपत्रं भवतु नियमतो येन सर्वा व्यवस्था ॥६॥

यमुना के पूर्व में नौझील नामक ग्राम में, मांट में बहुतसी जमीन है वह भी मन्दिर की सेवार्थ स्वीकार करें । नगर के और भवन के जितने भी अधिकार हैं वे सब आप अपने आधीन करें जिससे सेवा कार्य निर्बाध रूप से चले ।

नीत्वा गोस्वामिवर्यो वचनरचनया श्रेष्ठिनः श्रद्धया च
पत्र प्रोवाच नम्रो विकसितवदनः श्रेष्ठि-गोविन्ददासम् ।
भो श्रेष्ठिन् ! यादृशी ते भुवनवशकरी कीर्तिरप्यस्ति वन्द्या
बुद्धिस्ते तादृशी वै विलसति सरसा प्राज्ञसम्माननीया ॥७॥

गोस्वामीजी ने वह पत्र लिया और अति प्रसन्न हुए और कहा—सेठजी जैसी आपकी कीर्ति है तदनुरूप माननीया बुद्धि भी है ।

नाहं वाञ्छामि वित्तं न च भवनगतंविक्रयस्याधिकारं
सम्पत्तौ चाऽचलायां प्रभुरिह निखिलान्रक्षतु स्वाधिकारान् ।
वंश्यानां मेऽधिकारो भवतु च सकलो भोजनादौ सदैव
मासान्ते गुर्जरादौ त्रिशतपरिमितं-रूप्यकं प्रेषणीयम् ॥८॥

मैं धन का इच्छुक हूँ न भवनगत वस्तुओं के क्रय-विक्रय का ही अधिकारी हूँ अचल सम्पत्ति के स्वामी तो ठाकुर श्री द्वारकाधीश ही हैं, मेरे वशजों को भोग-राग भोजन व्यवस्था इससे चलती रहे, अतः गुजरात में या जहाँ भी मैं रहूँ स्वतन्त्र हूँ ३००) रु० मासिक प्राप्त होता रहेगा ।

इत्थं पत्रे विलिख्य प्रतिलिपि करणे लब्धपूर्णाधिकारः
श्रेष्ठी गोविन्ददासो लिपिक-नरयुतो न्यायपीठे जगाम ।
पंजी कार्यालयेऽपि प्रभुदित-मनसा व्याजहार प्रसन्नः
साक्ष्यस्थैः प्रेमपूर्वं निगदितमखिलंसाक्ष्यवृत्तं तथैव ॥९॥

इस प्रकार लिखापढ़ी हुई सेठजी कचहरी गये और रजिस्ट्री की कार्यवाही साक्षियों के हस्ताक्षर सहित परिपूर्ण की गई ।

पुष्टि सेवा विधि-वर्णनम्-

पुष्टौ सेवाप्रकारं जगति बहुतरं श्लाघनीयं समन्तात्
विज्ञायैश्वर्यशाली सुविदित महिमा प्राज्ञगोस्वामि वर्यः ।
वेदोक्तां रीतिमीड्यां निजमतसरसि प्राप्य नव्यांप्रकुर्वन्
मान्यं नारायणंवै निजगृह शिशुवत् पोषयामास नित्यम् ॥१०॥

पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली का सर्वत्र मान बढ़ रहा था अतः वेदोक्त रीति को मानते हुए भी वे निज गृह शिशु की भांति ठाकुरजी की सेवा करने लगे ।

खाग्न्यंकेन्दु (१९३० वि०) प्रसंख्ये हरिदिवस तिथौ वैक्रमेऽब्द ज्येष्ठमासे
शुल्केपक्षे प्रभूणां सकलनियमकाः पुष्टिमार्गे प्रवृत्ताः ।
जाता येनाद्य देशे मधुरिपुनगरी पूर्ण सौभाग्ययुक्ता
सेवा शास्त्रेऽग्रगण्या वितरतिनिजकं नाम राष्ट्रेऽधुनाऽपि ॥११॥

सम्वत् १९३० ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी से पुष्टि सेवा का प्रचलन हो गया जिससे इस मन्दिर की ख्याति और भी देश में बढ़ गई ।

श्रीमद्गोस्वामिवर्य्यै-र्गिरिधरपदगा कीर्तिराप्ता विमाना
यैर्देशे वर्तमाना नृपतिकुल महा-वैभवैः प्रार्च्यमाना ।
सेवादेवस्य प्रेम्णाविविध विधिमयी चोद्धृता प्रार्थ्यमाना
दृष्ट्वा यां सम्बभूवुः प्रमुदित हृदया वैष्णवाः स्तूयमानाः ॥१२॥

गोस्वामीजी ने इस कार्य से सर्वत्र अत्यन्त मान प्राप्त किया। भगवान् द्वारका-धीशजी की सेवा बड़े स्नेह से आरम्भ की जिससे वैष्णव प्रसन्न हुए ।

नित्यंब्राह्मे मुहूर्ते मनुज कृत जयैस्त्यक्त निद्राश्चलोकाः
स्नानं कृत्वा च नार्यो विविध कुसुम स्रङ्. नीत हस्ता विनीताः ।
आकार्यात्म-प्रिया वै भजन-रसगताश्चेलुरित्थं प्रभूणां
मूर्ति द्रष्टुं नगर्याममर कुल वधू शोभि लावण्य-शीलाः ॥१३॥

ब्रह्ममुहूर्त में जयघोष से लोक निद्रा त्यागते, स्नान करके नारी भी पुष्पमाल लेकर अपनी प्रिय सखियों को साथ लेकर भजन गाती हुई दर्शन को जाती थीं । वे देवियों के समान रूप-शील युक्त थीं ।

गायत्युच्चस्वरेण प्रहसितवदना कापि गोविन्द लीलां
काचिद्दीर्घस्वरेण प्रचलनसमये पूतना मोक्ष लीलाम् ।
काचित्कान्तार लीलां गिरिवरधरणस्योत्तमां वापि लीलां
एवंमाधुर्य-गीतैः सरसमधुपुरी माधुरीमाप पूर्वाम् ॥१४॥

कोई गोविन्द की लीलाओं का गान करती कोई पूतनावध लीला गाती तो कोई गोवर्धन लीला गाती जिससे मथुरा नगरी रसमयी बन जाती थी ।

विविध दर्शन-वर्णनम्-

स्नानान्ते मङ्गलाख्ये पटह-मुरलिका-वाद्य वृन्दानि रेजु-
र्येषां नादस्य शब्दास्तपन-तनु-भवा तीरपारं प्रयाताः ।
आयाता देव पार्श्वे पुनरपि तरसा शब्दनादाश्च भूय
एवं हृद्यैर्निनादैः सकलमधुपुरी नादपूर्णा बभूव ॥१५॥

मंगला के दर्शनों के समय बड़ा नगाड़ा बजाया जाता पींगरी साथ बजती थी । उन वाद्यों की आवाज यमुना पार के क्षेत्रों तक जाती थी और प्रतिध्वनित होकर यहाँ सुनाई देती थी, इस प्रकार विभिन्न वाद्यों से मथुरा नगर भर जाता रात्री ११ बजे से १२ बजे तक नगाड़ा बजता था ।

शृङ्गारे दर्शने वै भवति च सततं झल्लरी वाद्य-शब्दो
ग्वालान्ते दर्शने वैसरस-रसवती भोग रीतिः प्रकृष्टा ।
यस्यां राजाधिराजः सकलसखिवृतोह्यत्ति नानापदार्थान्
तत्राप्यन्नादिकूटे विविध रसमये भोग आयाति भव्यः ।।१६।।

शृंगार के दर्शनों के समय झल्लरी वाद्य की ध्वनि होती, ग्वाल के दर्शनों के उपरान्त राजभोग की तैयारी होती जिसमें ध्यान किया जाता कि राजाधिराज सकल ग्वाल सखाओं से परिवृत होकर भोग लगाते हैं । अन्नकूट आदि भोगों की तो बात ही क्या थी ।

भाषायाम्-व्यञ्जन-वर्णनम्—

मोतीचूरो जलेबी खुरचन रबड़ी रेबड़ी गन्धयुक्ता
मेवाबाटी सुगन्धा सिखरन विशदा बालुसाई विशाला ।
लच्छाघीया गिदौरा गजक इमरती रासगुल्ला बसौंदी
मेसूपागो बतासा तिनगिनि हलुआ भोग भुंक्ते मुरारिः ।।१७।।

लड्डू मोतीचूर, जलेबी, खुरचन, रबड़ी गन्धयुक्त रेवड़ी, मेवाबाटी, सिखरन बालूसाई, घीया के लच्छा, गिदौड़ा, गजक, इमरती, रसगुल्ला, बासौंदी, मेसू, तिनगिनि, हलुआ आदि भोग लगाये जाते ।

उत्थानं चापरान्हे भवतिप्रतिदिनं भोग-संदर्शनं च
सन्ध्या नीराजनान्ते भवति च शयनं शंखनादेन युक्तम् ।
रात्रौ ढक्का निनादैः सुमधुर-मुरजैर्वाद्यवृन्दैश्च नित्यं
ऐधिष्ट प्रत्यहं वै मुरपति तिलकस्यार्चनं मंगलाढ्यम् ।।१८।।

सायं उत्थापन के दर्शन, भोग के दर्शन खुलते सन्ध्या के दर्शनों के पश्चात् शयन के दर्शन होते जिसमें शंखादि विविध वाद्य बजाये जाते, रात्री को नगाड़ा बजाया जाता था इस प्रकार नित नूतन उत्कर्ष मन्दिर का बढ़ने लगा था ।

नानाऽलंकार-सेवां विविध मणिचितां स्वर्णवस्त्रादि-युक्तां
कृत्वा सर्वांव्यवस्थां गिरिधरविबुधो काँकरौलीं प्रयातः ।
भूताग्न्यंकेन्दु वर्षे ऽसितदल नभसि द्राक्द्वितीयातिथौ वै
लीला धाम्नि प्रविष्टो नरपतितिलको वैष्णवानां च मान्यः ।।१९।।

अनेक प्रकार के वस्त्र बनवाये जाते थे और अनेक रत्न इनमें लगाये जाते थे और नवीन अलंकार पहनाये जाते, इस प्रकार सेवा की पूर्ण व्यवस्था करके गोस्वामी जी काँकरौली गये ओर कुछ कालोपरान्त लीलाधाम में प्रविष्ट हो गये।

गो० बालकृष्ण-वर्णनम्–

श्रीमद्गोस्वामिवर्ये मधुरिपु महिते दिव्य धाम्नि प्रयाते
श्रीमत् कल्याणसूनुर्मधुरिपुनगरात्तत्रपीठे निषण्णः ।
श्रीलः श्रीबालकृष्णः सकलकलकलाधारको विज्ञवर्यः
हित्वा श्रीकाँकरौलीं कतिपयदिवसैर्माथुरं प्राप धीरः ॥२०॥

श्री गिरिधरलालजी के पधारने के उपरान्त मथुरा के कल्याणरायजी के पुत्र तथा श्री गिरिधरलालजी के दत्तक पुत्र श्री बालकृष्णलालजी गद्दी पर तिलकायित हुए और काँकरौली को छोड़कर मथुरा पधारे।

दृष्ट्वा श्रीद्वारकेशं विपुल धनयुतं चन्दिरंमन्दिरं तत्
हृष्टोऽभूद्यो हि चित्तो धनिकवरनुतो बालकृष्णाख्यलालः ।
द्रव्योत्कर्ष प्रयासे प्रतिदिनमचलां वृत्तिमास्थाय शूरो–
नानादेशाञ्जगाम प्रभुपदरसिको द्वारकाधीशभक्तः ॥२१॥

श्रीद्वारकाधीश के वैभव को देखकर वे अति प्रसन्न हुए, धन वृद्धि के विविध उपाय करके उन्होंने फिर अनेक देशों का भ्रमण प्रारम्भ कर दिया।

शुद्धाद्वै त प्रचारं सकलवसुमतौ योऽकरोत् वाक्प्रसारैः
काश्यां वैदुष्ययुक्तान् कविकुलरसिकान्माननीयांस्तथाऽन्यान् ।
संगीतज्ञाँश्च लोकान् सुमुदित विभवान् पूजयामास नित्यं
स श्रीबालादिकृष्णो बहुविध सरसः पूजनीयोबभूव ॥२२॥

श्री बालकृष्णलालजी ने सम्पूर्ण पृथ्वी में शुद्धाद्वैत का प्रचार किया, काशी में व्रजभाषा की प्रतिष्ठा की, संगीतज्ञों का सम्मान किया और प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

आसीद् यस्य प्रभावोऽप्यहमद नगरे मुम्बई-कच्छदेशे
सौराष्ट्रे सूरते वै विकसित वदनस्तत्रपूजामवाप ।
मेवातेऽरण्य-भूमावुदयपुर-महावीरदेशे तथैव
सम्मानं मानवानांहृदय-कमलजंप्रापगोस्वामिबालः ॥२३॥

अहमदाबाद, बम्बई, कच्छ सौराष्ट्र, सूरत, प्रभृति अञ्चलों में आपका प्रभाव बढ़ता गया, मेवाड़, उदयपुर में लोग इनके परम भक्त बन गये।

श्रीबालकृष्ण-वैभव-वर्णनम्—

श्रीमद्वल्लभवंश भूधरमणिः श्रीकाँकरौलीपती
राजस्थान-नृपार्चिताङ्घ्रिकम : श्रीबालकृष्णभिधः।
विद्यादानमहत्त्वचिन्तनपरः संस्थाप्य विद्यालयं
कायं कीर्तिमयं विधाय मथुराधीश-स्वरूपंगतः ॥२४॥

श्री बालकृष्णलालजी वल्लभवंश के तिलक काँकरौली के अधिपति और राजस्थान के अनेक राजाओं के पूज्य बन गये थे, मथुरा में १२-१२-१९११ ई० को विद्यादान परम्परा में इसी द्वारकाधीश मन्दिर में श्री द्वारकेश संस्कृत पाठशाला की स्थापना की और यहीं प्रभु के स्वरूप को प्राप्त कर लिया।

संसार गर्तपतितानवलोक्य जीवान्
मार्गप्रदर्शनपरौ च बभूवतुर्यौ।
श्रीवल्लभार्य्यकुलपङ्कज-चित्रभानू
श्रीबालकृष्णचरणौ शरणं भवेताम् ॥२५॥

संसार गर्त में पड़े जीवों को जो पथ प्रदर्शक हुए उन वल्लभार्य कुलपङ्कज भानु श्री बालकृष्णजी गो० के चरणों को प्रणाम करता हूँ।

श्रीमत्पावकं वंश शेखरमणिं सत्यैकजीवातुकं
वन्दारु प्रणतोर्विलोक्य सहसा तत्काम संपूरकम्।
श्रीगोविन्दपदार-विन्द मधुपं हृत्ताप शान्तौ शशिं
विद्वन्मण्डल-मण्डनं गुरुवरं श्रीबालकृष्णं भजे ॥२६॥

जो अग्निकुल (वल्लभ-कुल) के मणि, दीनों के आश्रयदाता, भगवान् गोविन्द के पदारविन्द के मधुकर, हृदयस्थताप निवारक शशि, विद्वन्मण्डल के मण्डल पूज्य श्री बालकृष्णजी को प्रणाम करता हूँ।

तत्पुत्र-पौत्र-वर्णनम्—

चत्वारस्तस्य पुत्रा विमलमति युता सम्बभूवुः पृथिव्यां
विद्येते द्वौ पृथिव्यां बुधपति तिलकौ रामकृष्णविवाऽच्यौं।
ज्येष्ठो गोस्वामिवर्य्यः सकलनृपतिभिः पूज्यमानो य आसीत्
तत्पुत्रश्च व्रजेशो विलसतिसततं भ्रातृभिः प्रीयमाणः ॥२७॥

उन श्री बालकृष्णलालजी के चार पुत्र हुए उनमें दो पृथ्वी में विराजमान हैं (श्री व्रजभूषणलालजी श्री विट्ठलनाथजी) रामकृष्ण के समान जोड़ी है। ज्येष्ठ श्री व्रजभूषणलालजी हैं और उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र श्री व्रजेश कुमार जी विराजमान हैं।

गो० श्रीव्रजभूषणलाल-वर्णनम्—

श्रीमद्वल्लभवंश पद्म तरणि: श्रीबालकृष्णात्मज:
शुद्धाद्वैतमताब्धि-शीतकिरणो वादीभ पञ्चानन:।
सच्छास्त्रज्ञ विशारदैश्च सुजनै: संसेवित: शुद्धधो–
र्गोस्वामी व्रजभूषणो विजयते श्रीकाँकरौलीपति: ॥२८॥

वल्लभकुल कमल दिवाकर श्री बालकृष्णलालजी महाराज के पुत्र श्री व्रजभूषणलालजी महाराज हैं जो शास्त्रार्थ में वादि गजयूथ को मृगेन्द्र के तुल्य हैं, शास्त्रों के विचारक पोषक तथा प्रकाशक हैं वे काँकरौली नरेश शोभायमान हैं।

धन्या श्रीयमुना कलिन्दतनया वैवस्वतस्य स्वसा
दु:खोच्छेद करी सदाति-सरलातीर्थै: सदा वन्दिता।
आजन्माचरिताघपापदहने सामर्थ्ययुक्ता शुभा
प्राज्ञं श्रीव्रजभूषणं गुरुवरं पायात्तृतीयाधिपम् ॥२६॥

कलिन्द गिरिनन्दिनी यमानुजा धन्या यमुना, जो सदा दु:खों का उच्छेद करने में समर्थ है तीर्थों द्वारा वन्दिता है आजन्म आचरित पापों का विनाश करने में सक्षम है, वे श्री व्रजभूषणलालजी की रक्षा करें।

वेदान्ताद्यनवद्य शास्त्रविहितै: पुण्योपदेशै: स्वकै:
पुष्टेर्मार्गवरं निजं श्रुतिमतं विस्तारयन् सर्वत:।
सद्वाक्यामृतवर्षवर्षि विदुषो मानादिभि: पोषयन्
श्रीमान् श्रीव्रजभूषण: स जयतात् गोस्वामि वंशार्यमा ॥३०॥

वेदान्त आदि शास्त्रों के बतलाये मार्ग से चलने वाले पुष्टि मार्ग के प्रसारक सुन्दर प्रवचनों द्वारा विद्वानों को आनन्दित करने वाले व्रजभूषणलालजी महाराज विजय प्राप्त करें।

कीर्तेर्यस्य विभा विभातिकृतिनां सर्वत्र कल्याणदा
वन्द्य: श्रीचरणाम्बुजार्चनमहो कामान् ददातीप्सितान्।
सद्धर्मस्य सनातनस्य च विधौ जीवातुरेव स्वयं
स श्रीमान् जयताज्जगद्गुरुवर: श्रीभूषणो भूषण: ॥३१॥

जिनकी कीर्ति की विभा से विदेश भी विभासित हैं जो वन्दनीय चरण अनेक कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं और जो सद्धर्म और सनातन धर्म के जीवन-दाता हैं ऐसे भूषण के समान व्रजभूषणजी विजयश्री प्राप्त करते रहें।

मासे-मासे नवीना परम सुखकरी यस्य शोभा विचित्रा
ख्याता लोके समस्ते त्रिभुवनमखिलं पूरयन्ती सुधाभिः।
गोस्वामि प्रार्थिताघ्रिः प्रचुर सुखकरो भ्राजते दिव्य भूमौ
सोऽयं राजाधिराजो विलसति सततं भक्त कल्पद्रुमोऽच्छः ॥३२॥

प्रत्येक मास में जिनकी विचित्र शोभा होती है, समस्त लोक को आनन्दप्रद जो मानी जाती हैं, गोस्वामीजी द्वारा संसेव्य चरण श्री द्वारकाधीशजी महाराज भक्तों को कल्पवृक्ष नित्य नवीन लीला से भक्तों को सुख दे रहे हैं।

धन्यो लोके महात्मा हरिभजनपरः पारिखोगोकुलाख्यो–
धन्यो गोस्वामिपादोगिरधर इति यो विट्ठलेशान्वयोऽर्कः।
धन्यः श्रीबालकृष्णो बुधवर महितः काँकरौलीपतिर्यो–
धन्यो विद्या-निधिर्यस्त्वतिशय विदितो भूषणंनो व्रजस्य ॥३३॥

धन्य हुए गोकुलदास पारिख, धन्य श्री गिरिधरलालजी गोस्वामी जो विट्ठलेश प्रभु के वंश में सूर्य हुए थे, श्री वालकृष्णलाल काँकरौली नरेश धन्य और गो॰ व्रजभूषणलालजी धन्य हैं जो हमारे व्रज के भूषण हैं।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा॰ वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये काँकरौली गृहाधिकार वर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद के पुत्र डा॰ वासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचित द्वारकाधीश-महाकाव्य में विंश सर्ग पूर्ण हुआ।



१ श्री गोस्वामी जी गतवर्ष परमधाम पधार गये।

एक विंशतितमः सर्गः

कविवंश-वर्णनम्-

केवल (केई चौवे) नामा पूर्व पुरुषः-

श्रीमाथुरान्वय-सरोज दिवाकरोऽभूत्
विप्रोत्तमो बुधवरो भुवि केवलाख्यः ।
आसीच्च यस्य नगरी मथुराऽभिधाना
पुण्यप्रदा-तिसुखदा शुभदा जनानाम् ।।१।।

परम पुण्यदायिनी सुखदायिनी मथुरा नगरी में माथुर चतुर्वेद ब्राह्मण कुल में केईराम (केवलराम) नामक विप्र उ पन्न हुए।

यास्ते सदैव विबुधैरपि पूजनीया
भक्त ध्रुवस्य सकलेष्ट-करार्चनीया ।
भक्ताऽम्बरीष नृपतेरपि वन्दनीया
देवी विभाति मथुरा सुर-शंसनीया ।।२।।

मथुरा नगरी देवपूज्या है, ध्रुव को भगवान् ने यहीं दर्शन दिये थे, अम्बरीष राजा ने यहीं निवास कर इच्छा पूर्ण की थी।

आक्रमणकाले केवलस्य हथकांद ग्रामे गमनम्-

तत्रैकदा सकल माथुर-नाशकाले
श्रीकेवलोऽथ गतवान् सकुटुम्बको वै ।
कान्तारकेषु विचरन् हथकांद ग्रामे
वासं विधाय शनकैः प्रययौ 'इटावाम्' ।।३।।

एक बार यवनों के भीषण आक्रमण ने मथुरा का पुनः विनाश किया तब केवलराम चौबे जंगलों में विचरण करते 'हथकाँद' नामक ग्राम में गये वहाँ से इटावा जाकर बस गये ।

अन्येऽपि माथुर बुधाः परिवार युक्ता
वासं व्यधुश्च मिलिता नृपतेः प्रपूज्याः ।
पौरोहिताय करणाय निमंत्रितोऽसौ
श्रीकेवलोऽपि कृतवान् भवनं "छिपैट्याम्" ॥४॥

अन्य माथुर परिवार भी भागकर इटावा गये और वहाँ बस गये उन्होंने केवलरामजी को अपना पुरोहित बना लिया। इटावा के छिपैटी मुहल्ले में वे रहने लगे थे।

तत्पुत्रस्य घनश्यामस्य-वर्णनम्—

कालान्तरे समभवत्तनयो महात्मा
श्याम स्वरूप इव विज्ञ-नरोत्तमश्च ।
नाम्ना शुभेन घनश्याम इति प्रसिद्धं
श्रैष्ठ्यं जगाम मथुरास्थ कुलेषु धीमान् ॥५॥

कालान्तर में उनके मेघ के से वर्ण वाला एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। पुत्र का नाम घनश्याम रखा गया।

तत्पुत्रस्य बन्ना पण्डितस्य वर्णनम्–

वैदेशिकैर्निजलिपेः पठनात् प्रमुग्धै–
र्यो दक्ष 'जेलर' पदे सहसा नियुक्तः ।
बन्नाभिधं सुतवरं च प्रदायलोके
लोकान्तरातिथि पदं च जगाम शीघ्रम् ॥६॥

अँग्रेजी-फारसी पढ़ने के कारण श्री घनश्यामजी की नियुक्ति 'जेलर' पद पर कर दी गई थी इनके पुत्र श्री बन्ना पण्डित प्रसिद्ध हुए।

एकाकिनं भवनगं च विलोक्य हौला
दौलाऽनुजोऽति कुपितो प्रजहास चित्तो ।
रात्रौ प्रविश्य सहसाऽऽत्मज वच्चबन्ना-
मुत्थाप्य चाह वद रे! क्वधनं पितुस्ते ॥७॥

एक बार पं० बन्नाजी को मकान में इकला देखकर 'हौला-दौला' नामक बान्धवों ने घेर लिया और धन माँगा।

वित्तं ततश्च निजहस्तगतं हि कृत्वा
आभूषणानि विविधानि च वस्त्रकाणि ।
संगोऽडतश्च प्रददौ कुटिलाय तस्मै
पश्चात् सहाय-रहितः प्रचचाल बन्नाः ॥८॥

प० बन्नाजी ने सब धन जो गढ़ा हुआ भी था मार के भय से बतला दिया और समस्त गहने उन्हें दे दिये।

बन्नापण्डितस्य मथुराऽऽगमन वर्णनम्-

रूप्यद्वयेन सहितो मथुरा नगर्यां
संप्राप वैश्य 'तिलकं बुध पूजकं च ।
विज्ञायवृत्तमखिलं स परं-तपस्वी
प्रोवाच गच्छ भवने सह मे वसत्वम् ॥६॥

पं० बन्नाजी के पास चांदी के दो रुपया मात्र बचे थे उन्हें लेकर वे मथुरा आये, यहाँ एक वैश्य से उनकी भेंट हुई। वह वैश्य उन्हें अपने घर ले गया।

'गतश्रमटीला' नामक स्थाने निवास वर्णनम्-

दृष्ट्वा गतश्रम प्रभुं निकषा सु सद्म
पार्श्वे च मन्दिरमहो जगदम्बिकायाः ।
सद्विप्रवन्द्य वसतिं च विलोक्य धीरो
हर्षान्वितः समभवत् हृदये स्वकीये ॥१०॥

गतश्रम नारायण मन्दिर के समीप गतश्रम टीला नामक स्थान है, भीतर महाविद्या देवी का मन्दिर है अनेक विज्ञ ब्राह्मणों की वहाँ भूयसी संख्या है।

करौली यात्रा वर्णनम्-

कालाऽन्तरेऽथ गतवान् स करौलिराज्ये
मातामहस्य भवने बहु प्रार्थनाभिः ।
व्यायामकैः सुपठनैश्च निनाय बाल्यं
बन्ना गुरु-विपुल कीर्ति-युतो बभूव ॥११॥

कालान्तर में पं० बन्नाजी करौली रियासत में अपने नाना चिन्तामणिजी के पास चले गये वे वहाँ मल्ल क्रिया करते थे, और (ज्योतिष भी पढ़ते थे)।

मल्लक्रिया-वर्णनम्-

आस्वादने च विपणौ घृत-मण्डिकायां
सेटाऽर्धकं परिमितं घृतकं चखाद।
मल्लक्रियां सु मनसाऽहरहः प्रकुर्वन्
मल्लो बभूव नितरां जनता-प्रशस्यः ॥१२॥

घी मण्डी में घी चाखने में आधा किलो घी नित्य मिल जाता उससे ही वे व्यायाम बढ़ाते ओर अच्छे मल्लकिशोर हो गये।

मातामह चिन्तामणि वर्णनम्-

दौहित्रकस्य यशसा ननु हर्षितोऽभूत्
चिन्तामणिः स्वहृदये नगरे स्वकीये।
कस्यापि ब्राह्मण गुरोस्तनयां विलोक्य
बन्ना विवाह करणाय मुदा ययाचे ॥१३॥

मथुरा के एक ब्राह्मण की कन्या के साथ नाना चिन्तामणिजी ने उनका सम्बन्ध तय किया।

मथुरायां विवाह वर्णनम्-

स्वीकृत्य चात्मतनया सह बन्धनं तत्
दत्तात्मजा मधुपुरे विबुधेन तेन।
मातामहोऽपि च विधाय विवाह कर्म
तुष्टो बभूव हृदये सह बान्धवैश्च ॥१४॥

मथुरा में उनका विवाह सम्पन्न हुआ जिससे अनाथ बालक के संरक्षक 'नाना' चिन्तामणिजी अति प्रसन्न हुए।

'पितामही-भिनिया' वर्णनम्-

बाल्ये बभूव भिनिया जनकस्य लक्ष्मीः
सेवागता पतिगृहे धनधान्य कर्त्री।
बन्नागुरोः सकलशोक कुयोग हर्त्री
सत्पुत्र पौत्रक कुलस्य सदैव धर्त्री ॥१५॥

उनकी पत्नी का नाम 'भिनिया' था वैसे लक्ष्मी नाम रखा गया था। उन्होंने पण्डित बन्नाजी के वंश की वृद्धि की, वस्तुतः वे लक्ष्मी स्वरूपा ही थीं।

दण्डी विरजानन्द सकाशादध्ययन वर्णनम्-

दण्डी गुरोश्च निकटे स जगाम भाग्याद्-
विद्यारतो मतिमतां कुशलस्तपस्वी ।
ज्ञात्वाच शास्त्रमखिलं त्वथ पाणिनीयं
विज्ञो बभूव मथुरा जन-वन्दनीयः ॥१६॥

मथुरा में सुप्रसिद्ध दण्डी विरजानन्दजी (महर्षि दयानन्द के गुरु) के समीप उन्होंने अष्टाध्यायी महाभाष्य का अध्ययन किया। मथुरा में वे अपने समय के श्रेष्ठ कथावाचक बन गये थे।

श्रीमद्भागवतीवार्त्ता 'कुना' विप्रस्य मन्दिरे
श्राविता धीर कण्ठेन तुष्टा जाता हि भावुकाः ॥१७॥

ककोर श्री कुनाजी चौबे के मन्दिर (गतश्रम टीला) में वे प्रतिदिन श्रीमद्-भागवत की कथा बाँचते थे उससे भावुक जन बड़े सन्तुष्ट हुए,

सर्वेषां च प्रियोजातः पण्डितेषु महामतिः
स्वल्पकाले च सम्प्राप्ते संपदं चोत्तमां त्विह ॥१८॥

उन्होंने थोड़े ही समय में अपनी मधुर वक्तृत्व शक्ति से पण्डितों को भी प्रसन्न किया और अच्छा धन संग्रह भी कर लिया था।

श्रीचतुर्भुज पुत्र वर्णनम्-

ज्येष्ठश्चतुर्भुज इति प्रथितः पृथिव्यां
पुत्रो बभूव मथुरा नगरेऽद्वितीयः ।
शिक्षा-विवर्धन परस्तदुपासकश्च
विद्यारतेषु प्रथमं कथयन्ति विज्ञाः ॥१९॥

उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री चतुर्भुजजी थे उन्होंने अंग्रेजी की तत्कालीन उच्च परीक्षा पास की थी अतः पढ़े लिखे समाज में उनका नाम सादर लिया जाता था।

श्रीतदनुज चक्रपाणि वर्णनम्-

कृत्वा विवाहमगमत्तरुणोऽपि नाके
भार्या च तस्य प्रथमं रुजयाऽभिभूता ।
श्रीचक्रपाणिरनुजोऽपि ययौ ततश्च
विद्या निधान पितरं तमसि प्रपात्य ।।२०।।

वे युवावस्था में ही (लगभग ३० वर्ष की अवस्था में) स्वर्ग सिधारे गये, पत्नी भी स्वर्ग गई और इनके अनुज श्री चक्रपाणि जी भी युवावस्था में स्वर्ग चले गये ।

मध्यमा च समुत्तीर्णा क्विंस कालेज चालिता ।
वाराणस्यां सु विख्याता-आगरा मध्यकेन्द्रके ।।२१।।

श्री चक्रपाणिजी ने तत्कालीन क्विंस कालेज "राजकीय संस्कृत पाठशाला" वाराणसी से मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की थी । उनका केन्द्र आगरा था ।

'मुट्टोकाकी' वर्णनम्—

मुट्टोदेवी च तत्पत्नी सुन्दरी सुकुलोद्भवा ।
सद्यो वैधव्यकं प्राप विवाहानन्तरं ततः ।।२२।।

उनकी पत्नी श्रीमुट्टो 'देवी थीं, बड़ी सुन्दरी और चतुर्वेदी मुकद्दम परिवार में उत्पन्न हुई थीं । वे शीघ्र ही वैधव्य के कष्ट में पड़ गई ।

सम्यक् संलालितः प्रेम्णा वात्सल्येन च देव्यया ।
साक्षाद् दयापरा यासीत् छत्रछाया समा मम ।।२३।।

उन्होंने ही मेरा बाल्यावस्था में पालन किया स्नेह दिया ।

मद्वार्तारता नित्यं मद् रक्षापरा सदा ।
ममाभीष्ट प्रदा नित्यं "मुट्टोकाकी" दिवंगता ।।२४।।

उन्हें मेरी बात बड़ी अच्छी लगती और मैं उन्हें "भूओ" कहा करता था ।

सर्वत्र नेदृशी दृष्टा धर्म कर्मरता ऽबला ।
पुराणशास्त्र मर्मज्ञा "मुट्टोकाकी" यथा मम ।।२५।।

ऐसी विरली ही स्त्री देखने में आती हैं वे पुराण शास्त्र की अच्छी श्रोता थीं।

"वाडली" पदमुच्चार्य आह्वयन्ती सदैव मां ।
हसन्ती सा कृपावारा पारावार समा ऽभवत् ।।२६।।

वे मुझसे 'वाउली' कहा करती थीं । उनकी हँसने की मुद्रा बड़ी शोभनीय थी ।

पितृव्य हरिहरस्य-वर्णनम्—

वैदेशिकीमथ पपाठ हरीहराख्यो
यस्य तृतीय तनयो नर पुङ्गवस्य ।
जित्रीति संज्ञक बभूव यदीयपत्नी
"काकी" ममाति सरला विधवा हि दृष्टा ।।२७।।

उनके छोटे श्री हरीहरजी ने भी अँग्रेजी भाषा पढ़ी थी, उनकी पत्नी 'जित्री' थीं वे भी शीघ्र विधवा हो गईं ।

अध्यापनं वर्णनम्-

यस्यप्रसादमतुलं समवाप्य वैश्या
विद्यालये कृतधियो ह्यभवंश्च तुष्टाः ।
शिष्या बभूवुरखिले नगरे यदीया
वृन्दावनादिफलगू-प्रभुमीतलाद्याः ।।२८।।

उनके परिश्रम से मथुरा में एक अग्रवाल पाठशाला की स्थापना की गई और उसमें बाबू वृन्दावनदास बाबू फल्गुप्रसाद वकील, बाबू प्रभुदयाल मीतल जैसे शिष्य पढ़े ।

साहायकं च व्यदधात् वनमालि विज्ञा
विद्यालये मम पितृव्य-वरस्य तत्र ।
चम्पाग्रवाल पदभाग् विलसत्यहोऽद्य
रूपान्तरे परिणतस्तद्वुवर्धमानः ।।२९।।

उस **विद्यालय में** पं० वनमाली जी उनके सहयोगी थे। वही पाठशाला आज परिवर्तित होकर **चम्पा** अग्रवाल इण्टर कालेज के रूप में विद्यमान है एसा सुना है ।

चतुर्वेद विद्यालयेऽध्यापन कर्म वर्णनम्—

कालान्तरे स गतवान् गणितज्ञ शूरः
श्रीवैजनाथ विबुधस्य महाग्रहैश्च ।
अध्यापनाय निजवंश विवृद्धि-हेतोः
संस्थापिते च भवने स्वसुखं विहाय ॥३०॥

श्रीमाथुर चतुर्वेद विद्यालय में वि० १९७५ में इन्होंने गणित अँग्रेजी विषयों का अध्यापन किया था, वे समाज की वृद्धि चाहते थे ।

गोलोक वर्णनम्—

भूलोकं स परित्यज्य गतो देवेन्द्र सद्मनि ।
तारुण्ये तेन कष्टेन मृता मातापि तद्दिने ॥३१॥

वे युवावस्था में ही चैं० सु० ९ को स्वर्ग सिधार गये और उस कष्ट से इनकी माता भी स्वर्ग सिधार गईं ।

यमुना प्रवेशः-

जातं जलोदरं रोगं श्रुत्वा ज्ञात्वा च तद्दिने ।
चैत्रे सितेऽष्टमी रात्रौ निमग्ना यमुनाऽन्तरे ॥३२॥

जलोदर रोग की असाध्यता देखकर चैत्र सुदी अष्टमी को वे मथुरा यमुनाजी में निमग्न हो गईं । वे दुःख नहीं देख सकीं क्योंकि कि उनके दो पुत्र और वधू भी अकाल में काल कवलित हो चुके थे ।

पितृचरण-वर्णनम्—

श्रो श्रीवरो मम गुरुस्तु कनिष्ठकोऽसौ
शिष्टश्चतुर्षु सहसाधिक-कष्टभोगी ।
ज्येष्ठा मृता गतवती जननी यदीया
शोकेन तेन कृशतां समवाप तीव्राम् ॥३३॥

मेरे गुरुवर और पितृ चरण पं० श्रीवर जी शास्त्री सबसे छोटे थे, इन्होंने अपने बड़े तीन भाई, भावज और वहिन गोमती (पत्नी श्री तीन कौड़ा सरदारजी) के भी वियोग सहे, माता भी चल वसी थीं । अतः इनका शरीर कृश हो गया था।

मातृचरण वर्णनम्-

खौनीति नाम विदिता जननी मदीया
नूनं कुटुम्ब-तिलका प्रथिता नगर्याम् ।
पंचात्मजैः परिवृता सुतया प्रसन्ना
पौत्र-प्रपौत्र-मुखदर्शन-कारिणी वै ॥३४॥

मेरी पू०माताजी 'खौनी देवी' स्वः पं०गोवर्धननाथजी की पुत्री हैं, परिवार में इनकी प्रतिष्ठा है इनके ५ पुत्र एक कन्या है और कुल में सर्व प्रथम प्रपौत्र मुख दर्शन किया है।

तत्सन्तति वर्णनम्-

पञ्च पुत्रा अजायन्त कन्यैका चापि सद्गृहे ।
गोपालो-वासुदेवश्च-प्रकाशो-रामकृष्णकः ॥३५॥
रमाशंकर नामा च राधा चैव स्वसा तथा ।
मध्यमो लेखकस्यास्य विद्यते तेषु पुण्यभाक् ॥३६॥

पाँच पुत्र हैं, गोपालकृष्ण-वासुदेवकृष्ण, प्रकाशचन्द्र-रामकृष्ण-रमाशंकर और राधा नामक एक कन्या है जिसके पति हैं (श्री गोपीनाथ चतुर्वेदी महाप्रवन्धक आर्डिनेन्स फैक्ट्री शाहजहाँपुर) इनमें काव्य लेखक मध्यम पुत्र है।

ममाध्ययन-वर्णनम्-

पित्राहं पालितः सम्यक् पाठितश्च सदैव हि ।
नव्यव्याकरणं शास्त्रं न्याय शास्त्रं स धर्मकम् ॥३७॥

पूज्य पिताजी ने पालन पोषण भी किया और मुझे विद्याध्ययन की ओर बलात् प्रवृत्त करके नव्यव्याकरणाचार्य तक पढाया (पुराणेतिहासाचार्य के भी दो खण्ड उनके चरणों में बैठकर वाराणसी वि० वि० से उत्तीर्ण किये,) साथ में न्याय शास्त्र, धर्म शास्त्र की शिक्षा भी प्राप्त की।

श्रीमद्भागवतं चैव पौरोहित्यं यथाविधिः ।
ज्योतिष शास्त्रं च वेदान्ताः साङ्गोपाङ्गाश्च पाठिताः ॥३८॥

श्री मद्भागवत शास्त्र को खूब पढाया और साथ रखकर उसे पिलाया, भी, उसी प्रकार उनके साथ रहने से पौरोहित्य कार्य संपादन में भी दक्षता मिली और ज्योतिषशास्त्र तथा सांगोपांग वेदान्त शास्त्र भी उनसे पढ़े।

श्रीद्वारकाधीशमन्दिर विद्यालयेऽध्ययन-वर्णनम्-

अध्ययनं मयाऽकारि द्वारकाधीश मन्दिरे ।
पितुः स्थाने यथा पूर्वं पाठनं च तथा पुनः ॥३९॥

प्रथमा परीक्षा (१९४७ ई.) में उत्तीर्ण कर १९५७में व्याकरणाचार्य परीक्षा-पर्यन्त समग्र विषयों का अध्ययन श्री द्वारकाधीश जी के मन्दिर में विद्यमान श्री द्वारकेश संस्कृत पाठशाला में ही किया था ।

यहीं पितृचरण ने भी पं० गयादत्तजी शास्त्री चतुर्वेदी जी से विद्याध्ययन किया था । (१२ दिसम्बर १९११ ई० को इस पाठशाला की स्थापना गो०बालकृष्ण लाल जी महाराज ने की थी) ।

गुरु श्रीपरमानन्दशास्त्रि-वर्णनम्-

अत्रैवपरमानन्द शास्त्रिणां च कृपावशात् ।
गुरूणां प्रेरणादानात् कविताशक्तिरुद्गता ॥४०॥

यहीं के पुरातन छात्र पं०परमानन्दजी आगे सहायक अध्यापकहो गये थे और जीवन पर्यन्त उन्होंने पढ़ाया था, उनके चरणों में भी बैठ कर मैंने प्रारम्भिक अध्ययन किया और कविता करना भी सीखा ।

गुरुभिर्यत्कृपा पूर्वं दत्तं ज्ञानंमहात्मभिः ।
बुधम्मन्यतया चात्र प्रभु तुष्ट्यैसमर्प्यते ॥४१॥

गुरुजनों की कृपा से जो कुछ मुझे मिला अपने को आज कवि कहने का स्वाभिमान हुआ और जो कुछ बन पड़ा प्रभु की तुष्टि के लिये उन्हें ही समर्पित किया है ।

पितृ-वियोग वर्णनम्-

ताता गताः परम दारुणरोग ग्रस्ताः
षट् षष्टि बर्ष परमायुषि मां विहाय ।
प्राचार्य विश्रुत पदे च निधाय शीघ्रं
तारुण्यके वयसि हा ननु वज्रपातः ॥४२॥

६६ वर्ष की अवस्था में श्रावण शुक्ल प्रतिपदा सं० २०१६ [८-८-१९५९] ई० को वे परमधाम पधारे और मेरी नियुक्ति प्राचार्य पद पर करगये, तरुणावस्था में ही मुझ पर वज्रपात हो गया ।

तात्कालीनादशा वर्णनम्-

तत्रोत्थिता रिपुगणा मथुरा नगर्यां
ज्ञातं मया विविध दारुण-दुःखमाप्य ।
विद्यालयेऽपि जनतादलमध्य वर्गे
श्रो श्रीगुरोः परम धामगतेऽथकाले ॥४३॥

उस समय न जाने क्यों अकारण ही मेरे शत्रु निकल पड़े और मुझे विविध प्रकार से भयभीत करने लगे, विद्यालय में भी और नगर में भी अनेक झंझटों से मैं उद्विग्न रहा ।

शास्त्रार्थ वर्णनम्-

श्री श्रीगुरोश्चरण-पुण्य-लवप्रसादात्
शास्त्रार्थके विजय लब्धयशोनगर्याम् ।
ख्यातिगतोऽथसहसा व्रजधाम भूमौ
देशे शनैरतितता हि मम प्रतिष्ठा ॥४४॥

धीरे धीरे मैं जब जम गया मेरा एक प्रवल शास्त्रार्थ भी मथुरा नगर में एक ज्योतिषाचार्य से हुआ । विषय था सिंह राशि के सूर्य में नैऋर्त्य कोण में खात होता है या नहीं । इसमें मुझे विद्वानों से सम्पर्क करना पड़ा । मेरे पक्ष मेंबड़े २ विद्वानों ने लिखित समर्थन दिया इस कारण मेरी ख्याति व्रज क्षेत्र में बढ़ गई ।

अध्यापन वर्णनम्-

श्रीद्वारकेश भवने परमप्रमोदात्
सम्पाठिता विविध भूसुर-वैश्य-बालाः ।
आचार्यतामधिगता बहवः सुशिष्या-
स्तेनेष्टताप्तिरभवत् मम तत्र नूनम् ॥४५॥

श्री द्वारकेश सं० महाविद्यालय में मैंने अनेक गोस्वामि बालकों को अध्यापन कराकेयश प्राप्त किया (पू० श्रीव्रजेशकुमार जी ने भी यहीं से वाराणसी की परीक्षाऐं उत्तीर्ण की हैं) ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य सभी वर्ग के छात्रों ने आचार्य परीक्षा यहाँ मेरी सन्निधि में उत्तीर्ण की ।

भागवत कथावाचन वर्णनम्–

पारायणञ्च बहु भागवतस्य जातं
श्रीमाथुरे भुवनविश्रुतगे सुपूज्ये ।
तत्रार्जितं प्रमुखमासनकं विशालं
चाष्टोत्तरेषु विबुधेषु गुरोः प्रसादात् ॥४६॥

श्री मद्भागवत कथा वांचना परम्परा से प्राप्त हुआ था अतः सर्व प्रथम विश्राम घाट मथुरा में १०८ सप्ताह पारायण का प्रधान व्यास बनाया गया और फिर तो अनेक बार प्रधान व्यास पद मिला। वह सब पूज्य गुरु चरणों का प्रसाद ही है।

श्रीभक्ति हृदय वनमहाराज निमंत्रणेन वृन्दावने गमनम्

कालान्तरे प्रवचनेन बभूव तुष्टो–
भक्ताभिधो वन बुधो विपिनस्यस्वामी ।
नीत्वा जगाम निज मन्दिर मध्य विद्या–
केन्द्रे स्वतः प्रमुखमासनमानदायी ॥ ७॥

एक बार मेरा संस्कृत भाषण किशोरी रमण कालेज मथुरा में स्वामी भक्ति हृदय वन महाराज जी ने सुना और वे मुझे प्रसन्न होकर वृन्दावन में एम० ए० संस्कृत के अध्यक्ष पद के लिये आमन्त्रित कर ले गये। १९६४ ई० से वहाँ कालेज खुला और मैं इसमें प्रथम संस्कृत का अध्यक्ष बना आगरा विश्वविद्यालय से उसे मान्यता मिली थी। (बी. ए. कक्षाएँ १९६५ से प्रारम्भ हुई)

'बस' शकटिमध्ये वर्षमध्ये काव्य निर्माण वर्णनम्–

तत्र स्थितेन मयका ननु वर्ष मध्ये
यात्रागतेन शकटीमधि-तिष्ठितेन ।
श्रीद्वारकेश कृपया महता श्रमेण
काव्य प्रसूनमथ तस्य करेऽर्पितञ्च ॥४८॥

वहाँ निरन्तर अध्यापन सेवा करते हुए [कालेज की बस चालू हो गई थी जो मथुरा बस स्टेन्ड से कालेज तक जाती थी] उसमें बैठे-बैठे यातायात के समय श्री द्वारकाधीश जी के कृपा प्रसाद रूप में बहुत दिनों से अभिलषित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य' का प्रणयन हुआ और उन्हीं को यह समर्पित है।

श्रीमच्छ्री वनमालिदास कविभिः स्वीकृत्य संशोधनं
दृष्टंकाव्यमहो कृपा-परवशैर्विद्याप्रदानोत्सुकैः ।
सर्वत्रैव विचार्य काव्य सुषमां स्वर्गाश्रमे संस्थितै-
स्तेषामङ्घ्रि सरोरुहेषु सततं सन्तु प्रणामा भृशम् ॥४९॥

संशोधक, कालिदास पुरस्कार विजेता आशुकवि श्री वनमालिदास जी के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ।

काव्ये कर्मणि सन्ति पण्डितवराः सक्ताः स्वदेशे भृशं
तत्रैके निजलाभ-दृष्टि-निरताश्चैके न स्वस्थाः स्वयम् ।
अन्येषां रचनासु दत्त-समयास्तत्रापि हर्षोन्मुखाः
सन्ति क्वापि यदोदृशाः कविवरास्तेष्वग्रगण्या इमे ॥५०॥

काव्य लिखने वाले देश में अनेक पण्डित हैं उनमें कुछ केवल अपनी ही सत्ता चाहने वाले हैं कुछ उपकार करना चाहते हैं किन्तु वे इतने समर्थ नहीं कि काव्य को सुन्दरतम रूप शीघ्रता में दे सकें, अन्य के रचे काव्य में समय देने वाले और सर्वदा प्रसन्न चित्त यदि कहीं कवि वनाने वाले सज्जन सन्त हैं उनमें श्री वनमालिदासजी अग्रगण्य हैं।

श्रीमत्-श्रीवरपादाब्ज-परागपरिलालित ।
वासुदेवश्चतुर्वेदो महाकाव्यमलीलिखत् ॥५१॥

पं० श्री श्रीवरजी शास्त्री के चरण कमलों के सेवक डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी ने यह महाकाव्य निर्माण कर प्रभु को समर्पित किया है भगवान् श्रीद्वारकाधीश इससे प्रसन्न होवें औरमुझे सुन्दर काव्य लिखने की प्रेरणा तथा शक्ति-प्रतिभा प्रदान करें।

इति श्री श्रीवर शास्त्रि चतुर्वेद सूनु डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद-विरचिते श्रीद्वारकाधीश-महाकाव्ये कविवंश वर्णनं नाम एकविंशः सर्गः

इति १०८ पं० श्रीवरशास्त्री चतुर्वेदी के पुत्र डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी द्वारा विरचित श्री द्वारकाधीश महाकाव्य में "कविवंश वर्णन" नामक इक्कीसवां सर्ग पूर्ण हुआ।

श्रीपारिख जी के अलभ्य दो पद :—

जय द्वारकेश दयाल परम कृपाल वेद बखान हीं
जाकी कृपा तें जगत में महिमा कोई इक जान हीं
रणछोड़ पद रत्नावली जो पठै सुनै अस गावहीं
"पारख" प्रभू अभि लाख पूरण परम भक्ती पावहीं
संवत अठारेबोहोत्तरे सुभ मास सावन मानिये
कृष्णाष्टमो लीलाकरी पारख सूँ प्रीति पिछानिये
बहुबरन भेद सुछंद भ्रंग सुविनय लिखि चितघरो
कहे रसिकनाथ कृपाल ह्वै हरिभक्ति अङ्गीकृत करो ।

पाटोत्सव की बधाई—श्रीद्वारकाधीश की

रामकली

वधाई आज अनूपम बाजी
कोटि कामलावण्य कृपा की मूरत आन विराजी
संवत १८७२ शुभ दिन कृष्णाष्टमी सुभ साजी
शुक्रवार आषाढ मास सुदी गगन दुंदुभी बाजी ॥
वदत वेद पंडित, कवि कीरति करत, समाज समाजी
जै जै श्री रणछोड़ जगत पति यह धुनि उपज अवाजी
यह दास सबको मन मोहत छटा छबीली छाजी
सादे अङ्ग सिङ्गार सुहायो लखि लखि उपमाला जी ॥
सुर तरु कामधेनु चिंतामणि रव निधि सकल निवाजी
भय त्रय ताप और भव भ्रमना दौर दसौ दिसि भाजी
दीनो दरस द्वारका नायक रीझ दास कियो राजी
पूरण पुण्य उदै पारख को भक्ति छाप जग भ्राजी ॥



डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

जन्म—१५ सितम्बर, १९३४

पिता—स्व० पं० श्रीवर जी चतुर्वेदी

माता—श्रीमती खौनीदेवी

योग्यता—सप्ताचार्य-(नव्यव्याकरण, साहित्य, सांख्ययोग, पुराणइतिहास, वल्लभ-वेदान्त, धर्मशास्त्र, ज्योतिष) साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी·एच० डी०, डी० लिट्० ।

प्रकाशितग्रन्थ-श्रीमद्भागवतके टीकाकार, (उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत) अमृततरंगिणी (श्रीमद्भगवद्गीता टीका) नन्दोत्सव, श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्य, श्रीद्वारकाधीशजी का संक्षिप्त इतिहास, श्रीद्वारकाधीशाष्टक, दायभाग, (याज्ञवल्क्यस्मृति) काशिका हिन्दी-टीका, निवन्धनिकुञ्ज, (उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत) संस्कृतसाहित्य का संक्षिप्तइतिहास मित्रसम्प्राप्ति, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कठोपनिषद्, सांख्यकारिका, श्रीमद्भागवत पात्रानुक्रमणिका एवं-स्थानुक्रमणिका, मथुरा एवं माथुरचतुर्वेदी ब्राह्मणपरिचय, इन्दिरा-काव्यम् ।।

राष्ट्रपतिपुरस्कृत, आकाशवाणी के सुप्रसिद्ध वार्ताकार, कवि, कमेन्टर्स, श्रीमद्भागवत के प्रसिद्धवक्ता, ज्योतिष, तन्त्र, कर्मकाण्ड, आदिके मर्मज्ञ, साधक ।

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, प्राच्यदर्शनमहाविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)